श्रीश्री सद्‌गुरुसंग

(द्वितीय भाग – श्रीवृन्दावन लीला)

श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

अनुवादक– अविनाश ब्रह्मचारी

श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ, रघुनाथपुर, जिला– पुरूलिया (प॰ बं॰)

This e-book is the **Hindi** translation of **Shree Shree Sadguru Sanga - Part-2 (Vrindavan Leela)**. The original bengali book is based on the diary of Shree Shree Kuladananda Brahmachari direct disciple and companion/ attendant of Shree Shree Bijoy Krishna Goswami.

This e-book is translated by **Sri Avinash Bhramachari** of Shree Shree Bijoy Krishna Bhakt Sangh Ashram, Raghunathpur (Purulia), West Bengal.

'श्रीश्री गुरुदेवाय नमः'

भूमिका

परमहंस रामकृष्णदेव के समकालीन, उन्नीसवीं शताब्दी में अवतरित सद्गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के आश्रित शिष्य ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी ने अपने जीवन की आध्यात्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, व्यावहारिक, शारीरिक उन्नति-अवनति का एवं अपने आन्तरिक उतार–चढ़ाव की अवस्था का दैनिक विवरण अपनी डायरी में खुलकर लिखा है। इसमें सन् 1886 ई॰ में गोस्वामीजी के सान्निध्य में आने के बाद से गोस्वामीजी के देह त्याग करने तक अर्थात् सन् 1899 ई॰ तक, चौदह वर्षों की अद्भुत घटनावली का वर्णन है; किन्तु इस डायरी का जो सर्वप्रथम प्रकाशन 'श्रीश्री सद्गुरु संग' के नाम से बंगला भाषा में हुआ है, उसमें गोस्वामीजी जब सन् 1893 ई॰ में प्रयाग कुम्भ मेले में गए थे तब तक का अर्थात् आठ वर्षों का वर्णन ही मिलता है। बंगला भाषा में इसे ही पाँच भागों में प्रकाशित किया गया है। इन्हीं पाँच भागों का अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ है। अन्य छः वर्षों का विवरण प्राप्त करने का प्रयास किया गया, किन्तु निराशा ही हाथ लगी।

ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी जब यह डायरी लिख रहे थे तब श्रीश्री गोस्वामीजी ने कहा था– " **ब्रह्मचारी जो लिख रहे हैं, सौ साल बाद वह देश का शास्त्र होगा।**" वास्तव में, अब सौ साल बाद देखा जा रहा है इस ग्रन्थ का हिन्दी, मराठी, गुजराती, अँग्रेजी, कन्नड एवं अन्य भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो गया है और हो रहा है; देश-विदेश में इसका प्रचार हो रहा है।

ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में सन् 1886 ई॰ से 1890 ई॰ तक का विवरण, द्वितीय खण्ड में सन् 1890 ई॰ से 1891 ई॰ तक गोस्वामीजी की श्रीवृन्दावन लीला का विवरण, तृतीय खण्ड में सन् 1891 ई॰ से 1892 ई॰ तक का विवरण, चतुर्थ खण्ड में सन् 1892 ई॰ से 1893 ई॰ तक का विवरण तथा पंचम खण्ड में सन् 1893 ई॰ से 1894 ई॰ तक कुम्भ मेले आदि का वर्णन है।

श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने लगभग एक वर्ष श्रीवृन्दावनधाम में निवास किया था। 'श्रीश्री सद्गुरु संग' ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में उनकी श्रीवृन्दावन लीला का वर्णन है जो कि सन् 1890 ई॰ से सन् 1891 ई॰ के मध्य हुई थी। अप्राकृतिक धाम श्रीवृन्दावन में गोस्वामीजी के साथ रहते समय ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी ने जो-जो प्रत्यक्ष किया एवं उनकी अनुपस्थिति में वहाँ

जो-जो अलौकिक व अन्य घटनाएँ हुईं, उसे बाद में वे स्वयं गोस्वामीजी के मुख से सुनकर अथवा अन्य गुरुभाई-बहिन, जो कि गोस्वामीजी के समक्ष उस समय उपस्थित थे, उनसे प्राप्त कर अपनी डायरी में लिखकर रख लेते थे।

'श्रीश्री सद्‌गुरु संग' जैसे वृहत् ग्रन्थ का सम्पूर्ण उल्लेख यहाँ संभव नहीं है, इसलिए केवल द्वितीय खण्ड, जिसमें **'श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी की श्रीवृन्दावन लीला'** एवं गोस्वामीजी से दूर रहते समय ब्रह्मचारीजी की जो अवस्था-दुरावस्था हुई थी, उसका वर्णन है, उसे ही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। यह बंगला भाषा के मूल ग्रन्थ का ही हिन्दी में अनुवाद है जिसे स्वामी आलोकानन्द सरस्वतीजी एवं अमित ब्रह्मचारीजी की प्रेरणा से, इंटरनेट में देने के उद्देश्य से किया गया है। अनुवाद के समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि यह दैनिक डायरी है; इसलिए इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है, यथासंभव यथावत् रखने का प्रयास किया गया है। लगभग पचास वर्ष पूर्व श्री लल्ली प्रसाद पाण्डेय जी ने 'श्रीश्री सद्‌गुरु संग' का हिन्दी अनुवाद सर्वप्रथम पाँच खण्डों में किया था, किन्तु उस समय की क्षेत्रिय हिन्दी भाषा को वर्तमान समय में समझ पाना कुछ कठिन अनुभव हुआ। अतः इस बात को ध्यान में रखकर पुनः मूल ग्रन्थ से ही श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी की श्रीवृन्दावन लीला अर्थात् द्वितीय खण्ड का हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। भक्त-पाठकगण इसका रसपान कर जीवन का मार्ग आलोकित करेंगे, यही विनम्र अपेक्षा है।

फाल्गुन पूर्णिमा
16 मार्च, 2014

ब्रह्मचारी अविनाश
श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ
रघुनाथपुर, जिला– पुरूलिया (प॰ बं॰)

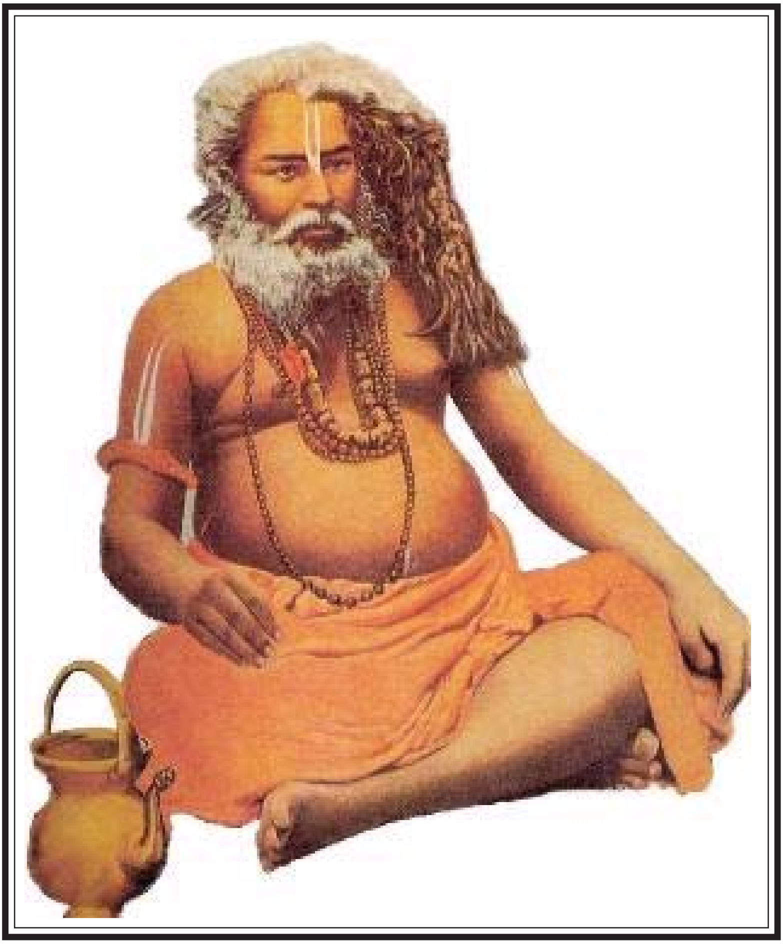

सद्‌गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी

श्रीश्री माता योगमाया देवी

श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

‘श्रीश्री गुरुदेवाय नमः’

निवेदन

मेरे परम् आराध्य गुरुदेव भगवान् श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी इस देश (बंगाल) में सुपरिचित हैं। उन्होंने सन् 1841 ई० की झूलन (राखी) पूर्णिमा में, श्रीधाम शान्तिपुर के विशुद्ध अद्वैत वंश में परम् भागवत् पण्डित प्रवर श्रीमत् आनन्द किशोर गोस्वामीजी के पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया था।

बाल्यकाल से ही उनके जिन समस्त स्वाभाविक सद्‌गुण और अद्‌भुत क्रिया-कलाप को देखकर उनके आत्मीय-स्वजन और शान्तिपुरवासी एक समय विस्मित हुए थे, उससे सर्वसाधारण को अवगत कराना मेरे इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है।

यौवनकाल में सरल विश्वास से ब्राह्मधर्म अवलम्बन करके, परदुःख से कातर होकर तात्कालिक दुर्नीति-दुराचार दूर रहने के लिए एवं समयोचित धर्म की स्थापना के लिए विषम अत्याचार-उत्पीडन भोग करके भी जिस प्रकार उन्होंने अदम्य उत्साह से देश के पुनरुथान के लिए कार्य किया था, ठाकुर के उस समय के जीवन की सब घटनाओं का अनुसन्धान करके प्रचार करना भी मेरे इस पुस्तक का अभिप्राय नहीं है।

केवल निर्दोष, विशुद्ध धर्ममत एवं अनादि, अनन्त सत्यस्वरूप परमेश्वर के अस्तित्व मात्र के ध्यान से परितुष्ट न होकर प्रत्यक्ष रूप से जीवन में उसी परम् वस्तु को प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार उन्होंने विभिन्न धर्म-सम्प्रदाय की उपासना प्रणाली का अवलम्बन करके तीव्र तपस्या और कठोर साधन-भजन किया था एवं उससे भी अपने लक्ष्य, भगवान् को साक्षात् रूप से प्राप्त न कर सकने के कारण जिस अवस्था में दुर्गम पहाड़ों और जँगलों में अनाहार रहकर, जागते हुए सद्‌गुरु के अनुसन्धान में उन्मत्त की तरह दौड़-धूप की थी, उन सब विवरण को उनके ही श्रीमुख से सुनकर अवाक् हो गया था, इसलिए लिख रखा हूँ।

अन्त में उनकी प्रौढ़ अवस्था में अद्‌भुत रूप से गया धाम के पहाड़ पर मानससरोवर निवासी श्रीश्री ब्रह्मानन्द परमहंसजी अकस्मात् आविर्भूत होकर उनको शक्ति-संचारपूर्वक दीक्षा प्रदान करके क्षणभर में अन्तर्धान हो गए। उसी समय से उन्होंने अपनी चिरअभिलषित वस्तु सच्चिदानन्द-स्वरूप भगवान् को साक्षात्‌रूप में प्राप्त करके, जिस अवस्था में अवशिष्ट दिन यापन किया था, प्रायः

तेरह-चौदह वर्षों तक उनके मधुर सान्निध्य से उसे प्रत्यक्ष करके समय-समय पर मुग्ध और स्तम्भित हुआ हूँ। हाय, कुछ दिन पहले उसी चित्त-विमोहन, परम् मनोरम छबि मात्र व्यवहार के लिए हमारे सम्मुख छोड़कर, सन् 1899 ई॰ के दु:सह ज्येष्ठ महीने में श्रीश्री नीलाचल (पुरीधाम) में नीलसागर के समीप आश्रित भक्तों के प्राणों को शोभित करने वाला, हम लोगों का वही शीतल दीप्तिमान तत्त्व-ज्ञान की ज्योति स्वरूप चन्द्रमा अकस्मात् अस्त हो गया। घोर कृष्णा द्वादशी के अन्धकार में अभागे भक्तगण के मस्तक के ऊपर इस प्रकार हठात् बिजली गिर पड़ी। उसी भीषण दुर्दिन के हृदय विदारक दृश्य को अंकित करके ही अपनी डायरी का अन्तिम पृष्ठ चिरकाल के लिए समाप्त कर रखा हूँ।

बाल्यकाल में, प्रायः दस वर्ष की अवस्था से मेरा डायरी लिखने का अभ्यास था। अतः ठाकुर का आश्रय ग्रहण करने के बाद से उनके चिर समाधि ग्रहण करने के समय तक मेरी डायरी लिखी रखी है। ठाकुर के निकट सर्वदा किसी एक का रहना आवश्यक होने पर, यह कार्य मेरे ही ऊपर अर्पित था। मैं आहार-निद्रा के समय के अतिरिक्त प्रायः सर्वदा उनके ही सम्मुख बैठे रहता था। ठाकुर के पास से साधना प्राप्त कर लगभग तेरह-चौदह वर्ष उनका सतत संग प्राप्त किया। इस समय में उनकी कथावार्ता, आचार-व्यवहार, क्रिया-कलाप जिस दिन जिस समय देखा और सुना, अपने साध्यानुसार यथावत् एवं विस्तारित रूप से उसी-उसी तरीख में वह सब मैंने लिखकर रखा है। मेरी डायरी में विशेषकर मेरे ही जीवन की नाना प्रकार की दुरावस्था और आकस्मिक दुर्दशा में ठाकुर का अनुशासन, उपदेश, दया और सहानभूति के साथ-साथ उनके अपार्थिव जीवन की अद्भुत घटनावली का निदर्शन– जिसका उन्होंने समय-समय पर प्रकाश किया, जैसे-जैसे प्राप्त होता था, उसे सरल भाव एवं अकपट रूप से लिख रखता था। फिर सर्वदा एक साथ रहने के कारण ठाकुर के उस-उस समय के नित्यसंगी मेरे श्रद्धेय गुरुभाइयों की तात्कालिक कोई-कोई घटना के साथ मेरा विशेष सम्बन्ध रहने पर एवं उन सबके साथ ठाकुर के आदेश, उपदेश और व्यवहार का समागम विशेष रूप से होने के कारण वे सभी मेरी डायरी के अन्तर्गत आ गए हैं। हम सब यदि सत्पुरुष, शान्त, जितेन्द्रिय, निष्कलंक जीवन लेकर ठाकुर का आश्रय ग्रहण करके रहते तो फिर उनकी कृपा और महिमा का पूर्ण निदर्शन किस प्रकार पाते? उनकी पतित-पावनता ही किस प्रकार पूर्णतः प्रस्फुटित होती? एक ओर उत्पीड़न के आधिक्य का प्रकाश हुए बिना दूसरी ओर क्षमा की विशेषता समझी नहीं जाती। एक ओर जिस प्रकार अत्याचार और

अबाध्यता है, दूसरी ओर उसी प्रकार धैर्य और सहिष्णुता है; एक ओर हीनता और अधोगति है, दूसरी ओर दया और सहानुभूति है। इसलिए ठाकुर की असाधारण कृपा और उनके अद्भुत जीवन का बिन्दुमात्र परिचय स्मृति में रखने के अभिप्राय से मैंने तत्सामयिक नित्य संगी गुरुभाइयों के साधारण व्यवहार एवं विशेष रूप से अपने निज जीवन की गलतियाँ जिस दिन जिस प्रकार हुईं, इस डायरी में लिख रखी हैं।

मेरे द्वारा डायरी लिखने की बात अनेक गुरुभाई लोग जानते हैं, इसलिए सैकड़ों गुरुभाई ठाकुर के अन्तर्धान होने के बाद से अब तक ठाकुर का एक जीवन-चरित लिखने के लिए मुझसे अनुरोध कर रहे हैं; किन्तु ठाकुर के साथ इन तेरह-चौदह वर्ष रहकर उनके जिन सब कार्यों को देखा है, उससे उनका जीवन-चरित लिखना अथवा उस विषय में प्रयास करना भी नितान्त असम्भव ही लगता है। मेरा सहज विश्वास है, उनकी सम्पूर्ण जीवनी नहीं हो सकती। भाषा से जिसको व्यक्त नहीं किया जा सकता, उनके जीवन की वही सब अतीन्द्रिय तत्त्वानुभूति की बात को लक्ष्य करके मैं यह नहीं कह रहा हूँ। अति निम्न स्तर के योगैश्वर्य से प्राप्त शक्तिपुँज की जिन सब क्रिया और फलानुभूति को उनके पंचभौतिक देह में सर्वदा ही होते देखता हूँ एवं देवता और सिद्ध महापुरुषगण से सम्बन्धित सर्वसाधारण के विश्वास के अतीत जिन सब अलौकिक घटनावली को सर्वदा ही प्रत्यक्ष किया हूँ, उन सबका विचार करके भी मैं यह बात नहीं कर रहा हूँ। मेरी यह स्पष्ट धारणा है कि ठाकुर के जीवन में साधारण लोगों के विश्वास योग्य एवं बोधगम्य ऐसी कितनी ही घटनाएँ नाना स्थानों में, नाना अवस्था में, साधारण लोकदृष्टि के अगोचर घटित हुई हैं कि उसका वे अपने नित्यसंगी शिष्यगण के समक्ष भी प्रकाश करने का अवसर नहीं पाए; फिर कभी किसी घटना को बात-ही-बात में अन्य लोगों के समक्ष प्रकाश भी किये हैं। इसलिए, यह सब जान-सुनकर उनकी एक स्थूल जीवनी प्रकाशित करना मेरे लिए कितना दुःसाहस का कार्य है, सभी समझ लेंगे। इन सब कारणों से मेरी ऐसी धारणा है कि ठाकुर के सम्बन्ध में जितनी ही बातें क्यों न लिखूँ, उसके द्वारा उनका सम्यक् परिचय प्रदान करना असम्भव है। इस कारण ठाकुर के अन्तर्धान के बाद से अब तक मैं इस विषय में कोई प्रयास ही नहीं किया, क्योंकि उनकी प्रेरणा के बिना उनकी जीवनी को संकलित करने का मेरा साहस नहीं होता। भविष्य में उनकी प्रेरणा और सहायता प्राप्त करने से उस विषय में प्रवृत्त हो सकूँगा।

गत बंगला सन् 1320 (1913 ई॰) में जब मैं हैजा से बिल्कुल मरणासन्न हो गया था, तब मेरे जीवन के विषय में सभी हताश हो गए थे। मेरी डायरी प्रकाशित नहीं होगी, सोचकर उस समय बहुत-से लोगों ने आशंका व्यक्त की थी। ठाकुर की कृपा से मेरे स्वस्थ होने के बाद मेरे श्रद्धेय गुरुभाइयों का सस्नेह अनुरोध एवं हठ फिर से मेरे ऊपर हावी होने लगा। मैं उसे अग्राह्य न कर सका और अपनी इस विस्तृत चौदह वर्षों की डायरी को प्रकाशित करने का संकल्प किया।

मैं जिस अवस्था में रहकर, जिस घटनाक्रम में पड़कर ठाकुर का आश्रय प्राप्त किया एवं उसके बाद उनके निरन्तर संग प्राप्ति के प्रतिकूल जो सब श्रृंखलाबद्ध आपद्-विपद् उस समय मेरे साथ घटित हुए थे, वह सब उनकी ही कृपा लगती है।

इति–

जटिया बाबा समाधि,
पुरी।

कुलदानन्द ब्रह्मचारी

'श्रीश्री गुरुदेवाय नमः'

श्रीश्री सद्गुरुसंग (द्वितीय भाग)

असह्य रोग-यन्त्रणा। जीवन में वितृष्णा; परोक्ष में गुरुदेव का आह्वान

{बंगला सन् 1297, आषाढ़ का प्रथम सप्ताह। **(14–20 जून, ई॰ सन् 1890)**}

दिन-रात लगातार पित्तशूल वेदना की असह्य यन्त्रणा से मेरी आत्महत्या करने की प्रवृत्ति हुई। क्रमशः यन्त्रणा की तीव्रता के साथ-साथ इस प्रकार का संकल्प मेरे अन्तर मन में दृढ़ हो गया। सुना हूँ गुरुदेव इस समय श्रीवृन्दावन में हैं। निश्चय किया– उनकी पापनाशन मनमोहन मूर्ति चिरकाल के लिए एक बार देखकर, उनकी स्नेहमयी शीतल दृष्टि अन्तर में रखकर, पवित्र यमुना के जल में इस पाप देह को विसर्जन करूँगा। किन्तु, जीर्ण शरीर में अब और चलने-फिरने का भी सामर्थ्य नहीं है; फिर भी श्रीवृन्दावन जाने के लिए अस्थिर हो गया। इस समय बिछौने से हिलने-डुलने के लिए भी कोई मुझे उत्साह नहीं देता। फिर श्रीवृन्दावन जाने का खर्च आदि भी किससे मिलेगा? इस समय बार-बार मन में ऐसा आने लगा कि गुरुदेव के दया करने पर ही असंभव संभव होगा। शीघ्र ही जिस किसी प्रकार से मेरे जाने का जुगाड़ होगा– इस भरोसे में व्याकुल होकर उनको ही प्राण की आकांक्षा से अवगत कराने लगा। आश्चर्य है गुरुदेव की दया का! आश्चर्यजनक रूप से मेरे श्रीवृन्दावन जाने की व्यवस्था हो गई। जय गुरुदेव! जय गुरुदेव!

श्रीयुत् मथुर श्रीयुत् बाबू के ज्येष्ठ पुत्र, श्रीमान सुरेन्द्र विलायत जाएँगे, इसलिए हैदराबाद में अपने चाचा श्रीयुत् अघोरनाथ चट्टोपाध्याय जी के पास पढ़ाई-लिखाई कर रहे थे। किसी कारणवश अपने पिता के पास आना आवश्यक होने से, द्वितीय श्रेणी का आने-जाने का (रिटर्न) टिकिट करके इस समय भागलपुर आए हुए हैं। मेरी श्रीवृन्दावन जाने की तीव्र आकांक्षा से अवगत होकर, उन्होंने गोपनीय रूप से मुझे टिकिट देकर कहा– "अब और मेरा हैदराबाद जाना होगा नहीं। मामा, आप यह टिकिट लीजिए। इससे आप इलाहाबाद तक जा सकेंगे।" मैं टिकिट पाकर, एक प्रकार से इसे गुरुदेव का ही स्नेह आह्वान सोचकर रो पड़ा। तुरन्त ही श्रीवृन्दावन जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। इस समय मुझे बाधा देना विफल समझकर, श्रीयुत् मथुर बाबू दस रुपये और महाविष्णु बाबू

तीन रुपये दिये। मैं दो जोड़ी जीर्ण वस्त्र, गमछा, एक लोटा एवं डायरी लिखने का साज-समान और एक हरिवंश (ग्रन्थ) झोला में बांधकर प्रस्तुत हुआ।

मेरी स्वर्गीया बहिन के शिशु पुत्र-कन्या के पालन-पोषण का भार इतने समय से मेरे ऊपर ही था। आज उन्हें छोड़कर जा रहा हूँ; बड़ा ही कष्ट होने लगा।

श्रीवृन्दावन–यात्रा

{बंगला सन् 1297, आषाढ़ 18, मंगलवार। **(1 जुलाई, ई॰ सन् 1890)**}

उत्साहित मन से सारा दिन बिताकर, संध्या के कुछ पहले, गाड़ी का समय जानकर स्टेशन रवाना हुआ। गुरुदेव का स्मरण करके कदम बढ़ाते ही वही निरुपम काला रूप बहुत समय बाद झिलमिलाता हुआ प्रकाशित हुआ। चार-पाँच हाथ के अन्तर में, शून्य में स्थित यह ज्योतिर्मय-रूप समान गति से मेरे आगे चलने लगा। देखकर आनन्द से मेरा चित्त प्रफुल्लित हो उठा। यथा समय स्टेशन पहुँचा। खाली बदन, कम्बल लेकर, भिखारी वेश में, फटा झोला हाथ में लेकर, द्वितीय श्रेणी की गाड़ी में चढ़कर बैठ गया। पता नहीं सभी मुझे क्या समझकर, अवाक् होकर मेरी ओर एकदृष्टि से देखने लगे। कुछ समय बाद एक व्यक्ति ने आकर टिकिट माँगा एवं टिकिट देखकर, मुझे सलाम करके चला गया। कुछ-ही देर बाद गाड़ी छूट गई। थका हुआ था; अल्प क्षण के मध्य ही मुझे नींद ने घेर लिया। इसी समय वही काली मूर्ति धीरे-धीरे अन्तर्हित हो गई। रात आज बड़े ही आराम से बिताई।

प्रयागधाम के प्रभाव की अनुभूति

{बंगला सन् 1297, आषाढ़ 19, बुधवार। **(2 जुलाई, ई॰ सन् 1890)**}

स्थिर होकर नाम-जप कर रहा हूँ, गाड़ी प्रयागधाम के कुछ दूरी पर पूर्व की ओर एक विशाल मैदान के मध्य आ पहुँची। मैदान की ओर देखते ही मेरा सारा शरीर सिहर उठा, उदासीनता ने मेरे मन को अवसन्न कर दिया। भीतर से अपने-आप स्पष्ट रूप से 'अगस्त्य'-'अगस्त्य' शब्द उठने लगा। भारद्वाज, वशिष्ठादि महातपस्वी ऋषिगण एक समय इस स्थान में ही थे, इस प्रकार का भाव मन में उदित होने से, उन लोगों के प्रति शोक आ पड़ा। यह शोक धीरे-धीरे मुझे इतना अभिभूत कर गया कि मैं किसी प्रकार से भी रोने से अपने को रोक नहीं पाया। खाली गाड़ी में सुविधा पाकर, ऋषियों का नाम लेकर कितनी ही देर रोया! मन में ऐसा लगा, जैसे ऋषिगण इस स्थान में रहकर मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। मैं

कातर भाव से उन लोगों के चरणों के उद्देश्य से बारम्बार प्रणाम करके प्रार्थना करने लगा— "हे आर्य ऋषिगण, आज तुम लोगों ने मुझ पर इस प्रकार क्यों इतनी कृपा की? आज अकस्मात् तुम लोगों की बात मन में आने से, तुम लोगों के लिए मेरा मन इस प्रकार क्यों रो उठा? मैं तो इस जीवन में कभी तुम लोगों के विषय में एक बार सोचा भी नहीं। तुम लोगों का स्मरण करके मस्तक झुकाया नहीं। लगता है, यह जंगल भी तुम लोगों के पुण्य आश्रम से परिपूर्ण था; इसीलिए तुम लोग इस स्थान का त्याग नहीं किये। जगत् के अनन्त अद्भुत स्तर के किसी एक सूक्ष्म स्तर में— इस प्रयाग में तुम लोगों की परम् आदर की वस्तु, साधन के फल की लगातार रक्षा करके अदृश्य शरीर में अवस्थानपूर्वक लगता है, इस स्थान में ही उसका उपभोग कर रहे हो। तुम लोगों के इस अभिलषित पुण्य साधन क्षेत्र में आज श्रद्धाशून्य हृदय से अज्ञात में प्रवेश करते ही मेरे प्रति तुम लोगों ने कृपादृष्टि करके, दया करके मेरे चित्त में अपनी स्मृति उदित कर दिये। आज मैं चिरकाल के लिए धन्य हो गया। हे मूर्तिमान् दयारूपी ऋषिगण! दया करके यह आशीर्वाद दो, जिससे तुम लोगों के अनुगत हो सकूँ; अविचलित मन से तुम लोगों के सनातन निर्मल पथ का अनुसरण कर सकूँ; हृदय के ठाकुर गुरुदेव के श्रीचरणों में एकनिष्ठ होकर अवशिष्ट जीवन अतिवाहित करूँ। और कुछ नहीं चाहता। इस शुभ मुहूर्त में तुम लोगों की कृपा से शुभ मति होने से, अपना अविनीत, उग्र मस्तक तुम लोगों के चरणरज में विलुण्ठित करता हूँ— मेरी आकांक्षा पूर्ण करो।" भावुकता हो या कल्पना ही हो, मुझे ऐसा लगा मानो ऋषिगण प्रसन्न होकर मुझको आशीर्वाद दिये। मैं भी स्थिर होकर नाम-जप करने लगा। कुछ देर बाद ही ट्रेन प्रयागधाम पहुँची।

इसके बाद गाड़ी से उतरकर स्टेशन से कुछ दूरी पर एक बड़े वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गया। वहाँ पर आसन लगाकर अपने मन में नाम-जप करते-करते आश्चर्यजनक रूप से मेरे भीतर एक भाव का स्रोत उमड़ पड़ा। मैं विचार करने लगा— "अहा! आज मैं कहाँ हूँ? यह वही प्रयागधाम है। एक समय इस स्थान पर कितना कुछ हुआ था! कितने त्यागी, कितने ऋषि एक समय इस क्षेत्र में प्रकांड कुंड में अग्नि प्रज्वलित रखकर दीर्घकाल-व्यापी याग-यज्ञ का अनुष्ठान किये थे। कितने सहस्र-सहस्र ऋषि-मुनि-तपस्वी एक समय में इस स्थान पर ध्यान-धारणा-समाधि से विमल आनन्द उपभोग करके, युग-युगान्त काल अतिवाहित किये थे। तीव्र तपस्या और एकान्त साधन-भजन द्वारा अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के साथ संयोग हेतु असीम शक्ति प्राप्त करके कितने दीर्घतपस्वी योगी-ऋषि इस पुण्य भूमि में सुदीर्घकाल निवास किये थे। उन लोगों की असाधारण साधन-शक्ति इस स्थान में संचारित होकर यहाँ के प्रत्येक अणु-परमाणु को जीवन्त शक्तिशाली कर रखी है। इस पवित्र क्षेत्र के संस्पर्श से, लगता है

ऋषियों की असाधारण साधन-शक्ति का बीज अलक्षित भाव से जीव के अन्तर में प्रविष्ट होता है; एवं उसी अमोघ शक्ति के अंकुरण से जीव का किसी-न-किसी काल में उद्धार हो जाता है। इसीलिए ऋषियों ने इस भूमि को मुक्तिधाम कहा है। हे देवर्षि ब्रह्मर्षिगण की अप्राकृत साधन-शक्ति के खण्डित भण्डार तीर्थराज प्रयाग, मैं अनुभव करूँ या न करूँ, तुम्हारे इस आनन्द का विस्तार करने वाले धूलिकण को स्पर्श करके आज मैं धन्य हुआ। तीर्थराज, आशीर्वाद दीजिए, आज तक तुम्हारे सान्निध्य में जो लोग आए हैं उन सभी की पदधूलि मेरे मस्तक पर पड़े। इस भाव से अभिभूत होकर, भूमि पर गिरकर प्रयागधाम को साष्टांग प्रणाम किया। इस प्रकार भावावेश की एक प्रबल तरंग कुछ क्षण के लिए मेरे भीतर बह गई। मैं स्थिर होकर नाम-जप करने लगा।

इसी समय एक सभ्य प्रयागवासी मुझे अपने घर ले गया। वहाँ मैं स्नान कर कुछ जलपान करके यथा समय स्टेशन आ गया। तृतीय श्रेणी का एक टिकिट लेकर वृन्दावन की यात्रा की। गाड़ी में मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ; बड़े आराम से गया। जय गुरुदेव!

ज्योतिर्मय श्रीवृन्दावन में उपस्थित, गुरुदेव की दया

{बंगला सन् 1297, आषाढ़ 20, बृहस्पतिवार। **(3 जुलाई, ई० सन् 1890)**}

प्रातःकाल हाथ-मुँह धोकर गाड़ी के एक कोने में बैठा रहा। श्रीश्री गुरुदेव के चरणों का स्मरण कर बारम्बार प्रणाम करके खूब उत्साह के साथ नाम-जप करने लगा। जितना मथुरा व वृन्दावन के समीप आने लगा, दोनों ओर विस्तृत मैदान व घने वन को देखकर उतना ही मेरा प्राण मानो कैसा होने लगा! जिस श्रीकृष्ण को देखने की आकांक्षा से, नितान्त शैशवावस्था में, अकेला, मैदान में, निर्जन स्थान में व्याकुल होकर कितना रोता फिरा हूँ; उनका निवास-स्थल सुनकर, लोगों के साथ इस स्थान में आने के लिए कितनी खुशामद की है– आज अपने बाल्यावस्था की मानस कल्पना के उसी श्रीवृन्दावन में आया हूँ; यह विचार करते ही मुझे रोना आ गया। इसी समय देखा, दोनों ओर वन और मैदान में अति उज्ज्वल, नीली, घने कृष्णवर्ण की ज्योति का समूह असंख्य विद्युत के समान क्षण-क्षण में प्रकाशित होकर सुस्निग्ध शीतल प्रकाश फैलाकर, क्षणभर में फिर विलुप्त होने लगा। उस नयनाभिराम, मनमोहन, कृष्णवर्ण की तुलना जगत् में और नहीं है। वह इतनी सुन्दर, मनोमोहन है कि उसको व्यक्त करने के लिए भाषा ही नहीं है। उस विचित्र ज्योति का बारम्बार दर्शन करके भी, अन्तर्धान के बाद फिर किसी भी प्रकार से उसको स्मरण में नहीं लाया जा सका। इस अनुपम दिव्य ज्योति का खेल देखते-देखते मैं क्रमशः श्रीवृन्दावन आ पहुँचा।

दिन में लगभग एक बजे वृन्दावन-स्टेशन में पहुँचा। रास्ते में अनाहार व अनिद्रा से मेरा शरीर बिल्कुल अवसन्न हो गया था; हृदय की वेदना भी खूब बढ़ गई थी। मध्याह्न की प्रखर धूप के उत्ताप से अधिक दूर तक चल न सका; एक-दो मिनट चलकर ही रास्ते के किनारे छाया देखकर बैठ जाता। इसी समय चलती गाड़ी से एक सभ्य व्यक्ति ने मुझे बुलाकर कहा– "महाशय, कहाँ जाएँगे?" मैंने कहा– "गोपीनाथ के बाग में।" यह सुनकर उसने गाड़ी रोककर कहा– "आइये, आप इस गाड़ी में चढ़िए, मैं भी उसी ओर जाऊँगा।" मैं गाड़ी में बैठ गया। कुछ देर बाद ही हमारी गाड़ी गोपीनाथ के बाग में आकर रुकी। मैं तुरन्त उतर गया। ठीक इसी समय एक व्रजवासी वृद्ध ब्राह्मण मुझसे पूछने लगा– "क्या बाबू, गोसाँईजी के पास जाओगे? चलो, हम भी वहीं जा रहे हैं।" मैं ब्राह्मण के पीछे-पीछे चलने लगा। व्यस्ततावश उनका परिचय लेने की भी मति नहीं हुई। एक गली के मध्य कुछ दूर जाकर, एक घर दिखलाकर ब्राह्मण ने कहा, "जाओ उसी कुंज में गोसाँईजी हैं।" यह कहकर ब्राह्मण अन्यत्र चला गया। कुछ कदम अग्रसर होते ही मैंने देखा, मेरे गुरुदेव कुंज के द्वार पर खड़े हुए हैं। मेरे देख पाने के पहले ही उन्होंने मुझे पुकारकर कहा– "क्यों कुलदा आ गए? अच्छा, अच्छा! आओ। झोला लेकर सीधे ऊपर आओ।"

मैं गुरुदेव के पीछे-पीछे चलकर दो तल्ले में पहुँचा। झोला रखकर गुरुदेव के श्रीचरणों में गिरकर साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा– "शरीर अस्वस्थ है; थोड़ा विश्राम करो। बाद में, यमुना में जाकर स्नान कर आना। हम सभी लोगों का भोजन हो गया है। तुम्हारे लिए प्रसाद रखा है।" यह कहकर गुरुदेव आसन पर शान्त भाव से बैठे रहे। मैं उनके देह की अवस्था देखकर, अवाक् रह गया। देखा ठाकुर की अब वह आकृति नहीं रही। सुविशाल देह सूखकर अद्भुत लम्बा दिख रहा है। सुन्दर कान्ति अब अस्थि चर्म रहकर, अतिशय शीर्ण हो गई है। जगह-जगह शरीर के चर्म ढीले होकर झूल पड़े हैं। सुगोल, सुन्दर मुखमंडल मांस के अभाव से पिचककर लम्बा हो गया है। पहले का वह उज्ज्वल वर्ण भी अब नहीं रहा; बिल्कुल साँवला हो गया है। मस्तक के लम्बे केश को एक गैरिक वस्त्र द्वारा लपेटकर बाँध रखे हैं। ललाट में ऊर्ध्वपुंड्र तिलक और कण्ठ में तुलसी, पद्मबीज व रूद्राक्ष की माला धारण किये हैं। उनके देह की दुर्बलता देखकर मुझे बड़ा ही क्लेश होने लगा, मैं रो पड़ा एवं अवाक् होकर ठाकुर के नवीन वेश और शीर्ण शरीर की ओर देखता रहा। ठाकुर के देह की ऐसी दुर्दशा और कभी मैंने देखी नहीं। कुछ देर बाद गोसाँईजी, कुंज के अधिकारी दामोदर पुजारी को बुलाकर कहा– "इसको यमुना में स्नान कराकर ले आओ। बाद में, भोजन जो है दे देना।"

मैं झोला, आसन-कम्बलादि पास के कमरे में रखकर स्नान करने गया। ग्यारह रुपये थे; उसे खुले कमरे में अलग-से रखकर जाने में भरोसा नहीं हुआ; अंटी में बाँधकर रख लिया। यमुना के शीतल निर्मल जल में स्नान करके बड़ा आराम मिला। मेरे पास जो रुपये हैं उसे दामोदर ने देख लिया। वे मेरे कमर की ओर अंटी में रुपये के प्रति लोलुप दृष्टि से देखने लगे। मैंने सोचा, "ये तो एक अच्छा उत्पात हुआ। जब तक यह कुछ रुपये मेरी पूँजी रहेगी, नाना प्रकार के अभाव बतलाकर ये उतने दिन तक मुझे परेशान करेंगे। इसलिए इस आपद से छुटकारा पाना ही अच्छा है। मुझे तो अभी कुछ दिन यहाँ रहना ही होगा; इसलिए यह ग्यारह रुपये इन्हें देकर यदि अपने खाने-पीने का थोड़ा पक्का बन्दोबस्त कर लूँ, तब तो अच्छा निश्चिन्त होकर रह सकूँगा।" इस मतलब से, मैंने अंटी से रुपये निकाल लिया; एवं दामोदर के हाथ में देकर नमस्कार करके कहा, "पुजारीजी, आप यह कुछ रुपये लीजिए। ठाकुर की सेवा में लगा दीजिए; और जितने दिन मैं यहाँ रहूँगा, मुझे एक मुट्ठा प्रसाद दीजिएगा। मेरे पास अब एक भी पैसा नहीं है।" रुपये पाकर पुजारीजी खूब खुश हुए; एवं मेरे माथे में हाथ फेरते-फेरते कहने लगे, "अरे, तू तो बड़ा भगत है। सब दे दिया! जितने दिन मन हो, रहो। खूब अच्छा-अच्छा खिलाऊँगा। तेरे ऊपर राधारानी की बहुत कृपा है।" मैं थोड़ा हँसा। इसके बाद, हम लोग कुंज में आ गए।

दाऊजी के मन्दिर से संलग्न रसोईघर में दामोदर ने मुझे बैठाया। फिर एक शाल के पत्ते में सजा हुआ दाल, भात, रोटी मेरे सम्मुख रखकर कहा, "गोसाँई बाबा ने प्रसाद पाते-पाते इतना सब उठाकर रख दिया था।" सुनकर मेरी आँखों में पानी आ गया। अहा, ठाकुर की इतनी दया! आज ही मैं यथार्थ प्रसाद पाया। यह प्रसाद मेरे लिए अधिक होने पर भी, खूब आनन्द के साथ रुचिपूर्वक पूरा खा लिया।

दण्डाघात

भोजन के बाद गोसाँईजी के पास जाकर बैठ गया। उन्होंने पूछा– **तुम्हारे भैया कैसे हैं? उनका वह मित्र देवेन्द्र अभी कहाँ है?**

मैंने कहा– भैया अच्छे हैं। तब से देवेन्द्र के साथ भैया का साक्षात्कार नहीं हुआ। आपके द्वारा दण्डाघात न करने से लगता है भैया को देवेन्द्र मार ही डालता।

गोसाँईजी– **ओफ! क्या भयानक आदमी है! और कुछ दिन रह पाने से वह विषम विपद् ही करता, तुम्हारे भैया को बिल्कुल शेष कर देता। वह जघन्य मतलब साधने के लिए वहाँ पर था। तुम्हारे भैया इस पृथ्वी**

के आदमी नहीं हैं; संसार से कोई लगाव रखते नहीं; वे इस युग के हैं ही नहीं; सत्ययुग के व्यक्ति हैं। देवेन्द्र के साथ तुम्हारे भैया का कोई झगड़ा तो नहीं हुआ?

मैं– झगड़ा कुछ भी हुआ नहीं। भैया के पास से आपके चले आने के बाद नागा बाबा और पतितदास बाबा ने भैया को देवेन्द्र का संग त्याग करने के लिए कहा था। किन्तु, देवेन्द्र के गुण से भैया इतने मुग्ध हो गए थे, उसकी धार्मिकता देखकर इतने मुग्ध हो गए थे कि महात्मा लोगों के आदेश प्रतिपालन में भी भैया की प्रवृत्ति नहीं हुई। देवेन्द्र का वशीकरण विद्या में खूब अभ्यास था; इसी से, लगता है, भैया को बिल्कुल अपनी मुट्ठी में कर लिया था। बाद में, आपने जिस दिन कानपुर से उसके ऊपर दण्डाघात किया, उस दिन से ही देवेन्द्र अकस्मात् न जाने कैसा हो गया; बिल्कुल ही निस्तेज और शक्तिहीन हो गया। उसके भीतर क्या हुआ था वह कोई भी नहीं जानता। वह भैया से भी बिना कुछ कहे उसी समय भाग गया। सुना हूँ वह फैजाबाद से पाँच-छह कोस दूर में, यमुना के किनारे एक ग्राम में जाकर ठहरा था। वहाँ उसको दुःसह रोग हुआ, अत्यन्त क्लेश पाया। बाद में कदाचित् उन्माद होने से कहीं चला गया। अभी वह मर गया है या बचा है, पता नहीं। कोई-कोई कहता है, बचा नहीं। रोग के समय इच्छा होने से भी तो वह भैया के पास आ सकता था; किन्तु आश्चर्य है कि वह मति भी उसकी हुई नहीं। धर्म का ढोंग कर हजारों रुपये भैया से ठग लिया है। यहाँ तक कि, हम लोग भैया के जीवन के लिए भी शंकित हो गए थे।

भैया के सम्बन्ध में गोसाँईजी ने बहुत-देर तक कहा। कुछ देर बाद मैं नीचे जाकर देखा, दाऊजी के मन्दिर के सम्मुख गुरुभाई लोग बैठकर भैया के विषय में ही बात कर रहे हैं। वह सब विषय मेरा पहले से जाना हुआ था; अब पुनः सबके मुख से सुना। गोसाँईजी फैजाबाद से श्रीवृन्दावन आते समय कानपुर में श्रीयुत् मन्मथनाथ मुखोपाध्याय जी के निवास में कुछ दिन रुके थे। एक दिन प्रातः चाय पीने के बाद सब गुरुभाई गोसाँईजी के पास बैठे थे, कुछ गुरुभाइयों को एक भयंकर दृश्य दिखलाई पड़ा। उन्होंने देखा, सर्प द्वारा मेंढक को निगलने की तरह, एक पिशाच धीरे-धीरे भैया को पाँव से कमर तक ग्रस लिया, और भी ग्रास करने की चेष्टा करने लगा। यह दृश्य देखकर वे लोग अस्थिर हो गए। स्वामीजी (हरिमोहन) ने तुरन्त गोसाँईजी का पैर पकड़कर व्याकुलता के साथ कहा– "दया करके रक्षा कीजिये। हरकान्त को पिशाच ने ग्रस लिया है।" गोस्वामीजी एक ही अवस्था में स्थिर भाव से रहकर मन्द-मन्द थोड़ा हँसे। फिर बोले– **"अच्छा, मेरा दण्ड लाओ तो!"** एक गुरुभाई ने तुरन्त दण्ड लाकर गोसाँईजी के सम्मुख रख दिया। गोसाँईजी ने दण्ड हाथ में लेकर, भूमि में एक बार थोड़ा आघात करके

कहा— "जा निश्चिन्त हुआ।" ठीक उसी दिन, उसी समय ही देवेन्द्र हठात् विषहीन सर्प की तरह बिल्कुल निर्जीव हो गया। भैया ने लिखा था, उसी समय देवेन्द्र को कैसी एक आन्तरिक असह्य यन्त्रणा हुई थी। वह क्लेश का कारण मेरे सामने प्रकट न करके पागल की तरह भागकर कहीं चला गया। लगता है गोस्वामीजी की इच्छा से ही देवेन्द्र की समस्त शक्ति नष्ट हो गई थी। तभी वह फिर आया नहीं। इत्यादि।

मेरा उभय संकट

गुरुभाइयों ने मुझसे कहा— "भाई, श्रीवृन्दावन आए हो, बड़े ही आनन्द की बात है। अब कुछ दिन यहाँ रह सको तो अच्छा है। जिनके पास आए हो, जिनके साथ रहना है, वे अब पहले की तरह नहीं हैं; गोसाँईजी अब वैसे नहीं रहे; वे अब अन्य प्रकार के हो गए हैं। सदैव ही विषम उग्रभाव धारण करके बैठे हैं। कुछ कहो या न कहो, उनके बैठने का और देखने का ढंग देखकर ही हम लोगों का हृदय कम्प होने लगता है। दिनभर में एक बार भी उनके पास फटक नहीं सकते, पास बैठ नहीं सकते। यदि कभी हम लोगों में से किसी भी को पुकारें— पुकार सुनते ही चौंक उठते। एक बार पीछे और एक बार सामने ताककर, अन्त में धीरे-धीरे, सिर खुजलाते-खुजलाते जाकर उपस्थित होते। उसके बाद कैसा क्या होगा समझ नहीं आता; उनके साथ जो भी बात क्यों न हो, अन्त में खूब धमकी खाकर लौटते हैं। किसी की एक सामान्य त्रुटि देख लें, फिर उसकी कोई रक्षा नहीं— भयानक दण्ड देते हैं, कभी-कभी कुंज से निकल जाने को कहते। इसीलिए भय से हम लोग प्रयोजन के अनुसार कुंज में रहकर, अवशिष्ट समय बाहर-बाहर घूमते हैं। भाई, तुम थोड़ा सावधान रहना। गोसाँईजी की उग्र मूर्ति देखकर हम लोग सदैव सशंकित रहते हैं। बाद में धक्का खाकर शीघ्र ही तुमको खिसकना न पड़े, इसी कारण यह सब बता दे रहे हैं।" मैंने कहा— "क्यों? तुम लोग गोसाँईजी का शान्त रूप क्या कभी देखे नहीं?" श्रीधर ने कहा— "वह क्यों नहीं देखेंगे? शान्त भाव में जब रहते हैं तब फिर इतने गंभीर होते हैं कि, किसका सामर्थ्य है पास जाए? अत्यन्त संकोच बोध होता है। दोनों भाव ही अत्यधिक हैं। पहले कभी भी गोसाँईजी को ऐसी अवस्था में रहते देखा नहीं। इसीलिए कहता हूँ— सावधान!"

गुरुभाइयों की बात सुनकर बड़े ही उद्वेग में पड़ गया। मुझे वेदना का रोग है, उनकी तरह बाहर-बाहर घूमने का मेरा सामर्थ्य नहीं है; चेष्टा करने जाने पर ही शय्यागत हो पड़ूँगा। इसलिए वैसा करना मेरे लिए बिल्कुल भी संभव नहीं है। सोचा—

न जाने से वध करे राजा, जाने से डसे भुजंग।
रावण के साथ जैसे मारीच कुरंग (हिरण)।

मेरी दशा भी ऐसी ही हो गई, मैं उभय संकट में पड़ गया। जो भी हो, मैं गोसाँईजी के आसन के पास जाकर बैठ गया। उसी समय दामोदर पुजारी ने आकर हाथ जोड़कर गोसाँईजी को प्रणाम करके कहा– "बाबा, आपका वचन सिद्ध है। आपने सबेरे जैसा कहा, वैसा ही हमें मिल गया। यह बाबू बड़ा भगत है, बड़ा सुपात्र है– हमको ग्यारह रुपया दिया।" गोसाँईजी ने कहा– **दाऊजी बड़े दयालु हैं! अच्छा से, प्राण भरके उनकी सेवा करो, देखना वे तुम्हारा कोई अभाव नहीं रखेंगे। वैसा नहीं करने से ही मुश्किल है।**

सुना है, आज प्रातःकाल में दामोदर पुजारी ने गुरुदेव से कहा था– "बाबा, भण्डार खाली है, आज दाऊजी का भोग किस प्रकार होगा?" गोसाँईजी ने तब कहा था– **अच्छा थोड़ा प्रतीक्षा करो, घबराओ मत हो; आज तुम कुछ पाओगे।**

श्रीवृन्दावन वास की विधि

संध्या के कुछ पहले ठाकुर अपने-आप मुझसे कहने लगे– **"श्रीवृन्दावन में आए हो, अच्छा हुआ। यहाँ तो कोई काम-काज नहीं है। अब सारा दिन खूब साधन-भजन करो। रात में आहार के बाद तीन-चार घण्टे नींद लो; बाद में, गहरी रात में उठकर नाम-जप करो। गहरी रात में साधन-भजन का एक विशेषत्व सर्वत्र ही अनुभव किया जाता है। इस स्थान की तो बात ही नहीं है। कुछ दिन नियम के अनुसार बैठने से ही समझ पाओगे, यह स्थान पृथ्वी के अन्य स्थानों की तरह नहीं है– इसको अप्राकृत धाम कहते हैं। इस धाम का अद्भुत माहात्म्य समझने के लिए, इस स्थान के लिए जो सब विधि व्यवस्था है, उसका पालन करके चलना होगा। किसी तीर्थ में वास करने से भी उस स्थान के लिए जो सब विशेष-विशेष विधि-निषेध हैं, उसका प्रतिपालन करके न चलने से स्थान का यथार्थ माहात्म्य समझ नहीं आता। इस स्थान में वास करने के लिए (1) हिंसा का त्याग करना होता है, (2) परनिन्दा विषवत् त्याग करनी होती है, (3) वृथा समय व्यतीत न करना, (4) अनिवेदित वस्तु कभी न खाना, (5) सर्वदा साधन-भजन में लगे रहना होता है। इन नियमों का पालन करके कुछ समय चलने से ही, ये धाम क्या है, धीरे-धीरे उसका आभास पाओगे। दो-पाँच दिन यहाँ रहकर जो लोग**

चले जाते हैं, वे और किस प्रकार इस स्थान का माहात्म्य समझेंगे? गर्भवती स्त्री जैसे स्वस्थ शरीर में नियम से रहकर दस मास बाद सन्तान प्रसव करती है, इन स्थानों में भी उसी प्रकार दीर्घकाल रहना होता है। अन्ततः एक वर्ष भी नियम के अनुसार रहने से धाम का थोड़ा प्रभाव समझ सकते हैं। मैं तो यह सब कुछ भी नहीं जानता था। परमहंसजी के आदेशानुसार कुछ समय यहाँ वास करने से ही अब दिनोदिन स्थान का अद्‌भुत माहात्म्य प्रत्यक्ष करके अवाक् हूँ। नियमानुसार खूब साधना करो– विशेष उपकार पाओगे। इस धाम का प्रभाव बड़ा ही चमत्कारी है।" मैंने पूछा– "गर्भधारण करके स्वस्थ शरीर में रहकर दस मास बाद जिस प्रकार सन्तान प्रसव होता है, तीर्थ के नियम यथारीति प्रतिपालन करके दीर्घकाल तीर्थवास करने से, तीर्थ देवता भी क्या पुत्र रूप में प्रकाशित होते हैं?"

ठाकुर ने कहा– **पुत्र रूप की बात नहीं है; अपने रूप में ही वे प्रकाशित होते हैं। गर्भधारण की तरह नियम धारण करके तीर्थवास करें तब तो!**

ब्रह्मचारीजी का आक्षेप और अन्तिम कथा

बारदी के ब्रह्मचारीजी के अकस्मात् देहत्याग की बात सुनकर बड़ा ही कष्ट हुआ। गोसाँईजी से पूछा– 'ब्रह्मचारीजी ने और एक सौ वर्ष रहने की बात कही थी। इतने शीघ्र उन्होंने देहत्याग क्यों किया? किस रोग से उनकी मृत्यु हुई?'

गोसाँईजी– **मृत्यु क्या कभी महापुरुषों की होती है? रोग– वह भी थोड़ा दिखाने के लिए। इच्छा करके ही उन्होंने देह छोड़ी है। कहा कि अब उनके और रहने का कोई प्रयोजन नहीं है। उनके रहने से बल्कि लोगों को और भी क्षति होगी।**

मैंने कहा– 'इच्छा करके क्यों देह छोड़े? देहत्याग के पूर्व क्या आपसे कुछ कहा था?'

गोसाँईजी– **हाँ, बहुत कुछ कहा था। देह त्याग करने के पूर्व रात्रि में वे यहीं थे। सारी रात मेरे साथ उनका झगड़ा हुआ। मुझसे बार-बार जिद करके कहने लगे– "तू मेरे आसन पर जाकर बैठ; मैं अब देह में नहीं रहूँगा।" मैंने कहा– 'एक वर्ष यहाँ रहूँगा संकल्प करके मैंने आसन रखा है; मेरे लिए यह धाम छोड़कर जाने का उपाय नहीं है।' उन्होंने कहा– "तो मैं यह देह छोड़ दूँ?" मैंने कहा– 'आपकी जो इच्छा करिये। आपके देह के प्रति मुझे थोड़ी-भी माया नहीं है।'**

मैंने गोसाँईजी की बात सुनकर कहा– 'आपके साथ किस विषय को लेकर झगड़ा हुआ?'

गोसाँईजी– **और कुछ नहीं, तुम लोगों का ही विषय लेकर। ब्रह्मचारी के पास जाकर उनकी बातचीत सुनकर तुम लोगों के मध्य किसी-किसी का भयानक अनिष्ट हुआ है। इसीलिए उनसे कहा कि, आपने अद्वैतवाद की शिक्षा देकर किसी-किसी को अदृष्ट प्रारब्ध कह-कहकर, उनका मन बिगाड़ दिया है। वे साधन-भजन छोड़कर अन्य प्रकार के हो गए हैं। अब उनका संशोधन होना कठिन है। लोगों का तो ऐसा ही उपकार कर रहे हैं! उन्होंने कहा– "अरे, जिसका जैसा संस्कार है, वह मेरी बात वैसा ही समझता है। मैं क्या करूँ? एक-एक व्यक्ति मुझे एक-एक प्रकार का कहता है। किन्तु, मुझको कोई समझा नहीं, पहचाना नहीं। मेरा स्वयं का तो कोई प्रयोजन नहीं है, उनके लिए ही तो हूँ। वे ही जब मुझको पहचाने नहीं, मेरे द्वारा उनका कोई उपकार भी अब होगा नहीं, तब और रहकर क्या लाभ? मैं देह छोड़ दूँगा।" मैंने देखा, इस बार वास्तव में ही अब उनके द्वारा किसी का कोई उपकार होगा नहीं। उनकी बात सच में ही लोग समझते नहीं; उनका भाव और भाषा अन्य प्रकार की है। इसीलिए उनसे रहने के लिए फिर अनुरोध नहीं किया।**

मैं– अच्छा, ब्रह्मचारीजी का भाव हम लोग नहीं समझ पाते– क्या बात भी नहीं समझते?

गोसाँईजी– **समझते कहाँ हो? एक व्यक्ति ने ब्रह्मचारी के पास जाकर कहा, 'महाशय, शास्त्र-विधि के अनुसार स्त्रीसंग करने को कहा था, वह तो मैं कर नहीं पाता। मेरा काम-भाव अत्यन्त अधिक है। अब मैं क्या करूँ?' ब्रह्मचारी ने उनसे कहा, "यदि वैसा नहीं कर सकते, फिर क्या करोगे? जाकर वेश्यागमन करो, व्यभिचार करो।" वह व्यक्ति मेरे पास आकर कहा– 'महाशय, ब्रह्मचारीजी मुझसे वेश्यागमन करने को कहा है। महापुरुष के कथानुसार काम करने से तो कभी पाप होगा नहीं!' उसकी बात सुनकर मुझे सन्देह हुआ– 'ब्रह्मचारी क्या कभी ऐसी बात कह सकते हैं? ब्रह्मचारी की बात का वैसा आशय कभी नहीं है।' मेरे ऐसा कहने पर वह सभ्य व्यक्ति बार-बार जिद करके कहने लगा– 'महाशय, मैं असत्य नहीं कह रहा हूँ। उन्होंने स्पष्ट कहा है, जाकर वेश्यागमन कर।' ब्रह्मचारी के साथ साक्षात् होने पर मैंने उनसे कहा, "आप ये सब क्या कर रहे हैं? आपके उपदेश से तो लोगों का सर्वनाश**

होगा, धर्म-कर्म में सब जलांजली देंगे; स्वेच्छाचार, व्यभिचार से समाज उखड़ जाएगा। 'जाकर वेश्यागमन कर' 'जाकर व्यभिचार कर' 'घूस लो', आपकी ये सब बातें लेकर लोग तो विषम काण्ड करेंगे!" सुनकर ब्रह्मचारी ने मुझसे कहा, "अरे, तू क्या बोलता है? वो साले लोग मेरे पास आते क्यों हैं? मेरी बात समझते नहीं, मुझसे पूछते क्यों हैं? विधि के अनुसार जो लोग स्त्रीसंग कर नहीं सकते, उनको ही कह देता हूँ– 'जाकर व्यभिचार कर', 'जाकर वेश्यागमन कर'। इसका मतलब क्या अन्य स्त्री का संग करने को कहा है, या बाजार जाकर वेश्यागमन करने को कहा है? शास्त्र-विरुद्ध आचार ही तो व्यभिचार है; शास्त्र-विधि का लंघन करके अपनी स्त्री का संग करना भी वेश्यागमन है। मैंने तो इस प्रकार व्यभिचार, ऐसे वेश्यागमन की ही बात कही है।" एक बार एक ब्राह्म ने, ब्रह्मचारी के पास जाकर, ईश्वर साकार है कि निराकार है इस सम्बन्ध में आलोचना की। ब्रह्मचारी ने उनकी सब बातें सुनकर कहा, "ईश्वर के मुँह में मैं हगता हूँ, उन्हीं के मुँह में मैं मूतता हूँ।" यह बात सुनकर ब्राह्म तो अत्यन्त विरक्त होकर चले गए। दस लोगों के सामने कहने लगे, 'ब्रह्मचारी भीषण पाखण्डी है, वह नास्तिक है। ईश्वर के मुँह में हगता हूँ, मूतता हूँ इस प्रकार की बात वे कहते हैं।' ब्रह्मचारी से यह बात पूछने पर उन्होंने कहा, "अरे वे तो स्वयं ही खूब उच्च अवस्था की बात कहे थे। तो फिर मेरी वो बात सुनकर विरक्त क्यों हुआ? उन्होंने कहा, 'ईश्वर सर्वव्यापी हैं।' मैंने कहा, उसी ईश्वर के मुँह में मैं हगता हूँ, मैं मूतता हूँ। ईश्वर सर्वव्यापी होने से मैं हगूँ मूतूँ कहाँ, तुम्हीं बोलो ना?" ब्रह्मचारी की सब बातें ही इस प्रकार की थी। उनकी बातें लोगों को समझ में न आने से बहुत गड़बड़ हुई है।

मैं– उन्होंने मुझे कितना भरोसा दिया था। वे, रहने से वह सब तो करते!

गोसाँईजी– **उसके लिए इतना क्या सोचना? मैं किसलिए हूँ? तुम लोगों को जो कहा है, करते जाओ। तुम लोगों के लिए जो करना है, मैं तो करूँगा। उसके लिए और किसी के ऊपर तुम लोगों को भरोसा करना नहीं होगा। तुम लोगों को कुछ भी अभाव नहीं रहेगा। समय में सभी पूर्ण होगा।**

मैंने पूछा– ब्रह्मचारीजी क्या फिर से जन्म ग्रहण करेंगे?

गोसाँईजी– **हाँ, उनका काम है। वे शीघ्र ही बुद्धदेव की तरह पूर्ण ज्ञान के साथ जन्म ग्रहण करेंगे।**

गुरुदेव के साथ बहुत देर तक ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में और भी बातचीत हुई। इससे यही समझा, मानो गोस्वामीजी ने ब्रह्मचारीजी को हटा दिया। एक बार भी यदि ठाकुर उनको इस संसार में रहने के लिए कहते, तो फिर वे इतने शीघ्र देहत्याग कभी नहीं करते।

अन्त में गोसाँईजी ने कहा– **अनेक लोग उनके भाव और भाषा न समझकर भ्रमित हुए हैं। मैंने ब्रह्मचारीजी से कहा था, "जिस भाव से, जिस प्रकार की बात कहने से साधारण लोग आपका यथार्थ भाव समझ सकें, उसी प्रकार उन्हें क्यों नहीं कहते?" इस पर ब्रह्मचारी ने कहा– "अच्छा, अब मैं उनकी भाषा सीखने जाऊँगा ना? वे लोग मेरे पास आते क्यों हैं? मैं तो किसी को बुलाकर लाता नहीं।"**

सद्‌गुरु की कृपा के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर

गुरुदेव ने हमारे जीवन की अनन्त उन्नति का समस्त भार ग्रहण किया है, एवं उसी पथ पर वे स्वयं ही हम लोगों को ले जाएँगे, यह बात उनके मुख से सुनकर बड़ा ही आश्वस्त हुआ। ब्रह्मचारीजी के ऊपर जो निर्भर हुआ था, उसके लिए मुझे यथार्थ ही लज्जा होने लगी। गोसाँईजी से और कुछ न पूछकर मैं अपने मन में नाम-जप करने लगा। किन्तु, धीरे-धीरे मेरे मन में फिर से एक आन्दोलन उपस्थित हुआ। सोचने लगा, "समस्त अभाव यदि गोसाँईजी ही पूर्ण कर सकते हैं, तो फिर इतना क्यों भोग रहा हूँ? जिनकी इतनी दया है, वे क्या कभी अन्य का क्लेश दूर करने में सामर्थ्य होने पर भी उसे न करके स्थिर रह सकते हैं? गोसाँईजी से ये सब बातें पूछने के लिए अवसर खोजने लगा; इसी समय एक बार मेरी ओर ताककर अपने-आप वे कहने लगे, **खूब साधना करते जाओ। अभी फलाफल की ओर मन मत दो। समय पर फल पाओगे। असमय तो कुछ भी होता नहीं। सबका ही एक निर्दिष्ट समय है। देखो, पेड़ में जो फूल होता है, फल होता है, उसका एक समय है। किसान लोग जो खेती करते हैं, उसका भी एक समय है; काल अतिक्रम करके कोई कुछ करता नहीं। देखते तो हो– किसान बीज बोने के पूर्व कितना कुछ करते हैं? समय के अनुसार हल चलाकर खेत से घास-फूस सब साफ कर देते हैं; बाद में बीज बोते हैं। बीज जब अंकुरित होता है, तब फिर अच्छे से अनावश्यक घासादि निकाल देते हैं। तभी सब पौधे बढ़ते हैं, फसल भी खूब अच्छी होती है। जो किसान पहले खेत साफ नहीं करते हैं, विभिन्न प्रकार के जंगली घास लगकर उनके खेत की फसल को नष्ट करते हैं।**

तब घास निकालते-निकालते किसानों के तो प्राण निकलने लगते हैं, और उन पौधों में फसल भी अच्छी नहीं होती; किसानों की दुर्दशा का तो अन्त नहीं, फसल भी काम की नहीं रहती। सभी इसी प्रकार समझो। यथासमय ही किसान लोग सब कर लेते हैं; असमय कुछ करने पर वैसा फल नहीं होता। जैसा कहा जाए, करते जाओ। अभाव कुछ भी नहीं रहेगा— समय पर सब होगा। खूब नाम-जप करो।

गोसाँईजी की बात सुनकर मैं सोचने लगा— तो फिर लोग सद्गुरु का आश्रय क्यों लेते हैं? मैंने पूछा— "समय पर जिसका जो होना है वह तो होगा ही। इसके लिए प्रयास करें या न करें, गुरु सहायक हो या न हो, स्वाभाविक होगा। वो होने से फिर सद्गुरु का आश्रय लेकर क्या लाभ हुआ? सद्गुरु कृपा करके किसी भी समय क्या थोड़ी अवस्था खोल नहीं सकते? समय पर ही सब होता है तब फिर 'कृपा' शब्द का अर्थ क्या है?"

गोसाँईजी ने कहा— **सद्गुरु की कृपा से सब हो सकता है; और गुरु जब इच्छा हो तभी सब कर सकतें हैं— यह बात सत्य है। किन्तु, उससे क्या लाभ? एक वस्तु का मूल्य न जानने से यदि वह सहज में प्राप्त होती है, तो फिर उसका जतन नहीं होता। जिस वस्तु के लिए जितना अभाव बोघ होता है, वह प्राप्त होने पर उससे उतना ही लगाव होता है; जिस वस्तु के अभाव से जितना क्लेश होता है, उस वस्तु की प्राप्ति से उतना ही आनन्द होता है। गुरु द्वारा हठात् एक अवस्था प्रदान करने से फिर उसकी तो मर्यादा समझी नहीं जाती! इसलिए साधन-भजन करके चेष्टा करके, जब लोग समझें कि एक अवस्था प्राप्त करना कितना कठिन है, कितना दुर्लभ है, तब गुरु कृपा करके ये अवस्था प्रदान करते हैं। गुरु वस्तु का मूल्य समझाकर ही वह शिष्य को देते हैं— यही नियम है।**

मैंने कहा— "वस्तु की मर्यादा न कर पाने से, वस्तु की मर्यादा न समझने से माना वह मुझे नहीं मिलती। जिस वस्तु को पाकर फिर खोना होगा, वह भी मैं नहीं चाहता। मेरे भीतर की सब बुराइयाँ दूर कर दीजिए, वह होने से ही बच जाऊँगा। गुरु कृपा से जब सभी होगा तब मेरे और कुछ करने के लिए क्या रहा?"

गुरुदेव मेरी बात सुनकर कुछ देर स्थिर रहे। बाद में, खूब स्नेहपूर्वक मेरी ओर देखकर कहने लगे— **"जो कहा है वही करते जाओ। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने की खूब चेष्टा करो। नाम-साधना की तरह इतना उत्तम और कुछ भी नहीं है। अपने स्वयं के जीवन में नाम-साधना का फल**

पाया हूँ। एक बार उस प्रकार से नाम-साधन करके देखो, देखता हूँ, कैसे फल नहीं मिलता! पहले-पहले नाम-जप करने से अत्यन्त विरक्ति बोध होता है; किन्तु इसके बाद भी उसे छोड़ना नहीं। विरक्ति बोध होता है, होने से क्या हुआ? उससे कोई हानि नहीं! खूब नाम-जप करते जाओ। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने में बड़ा उपकार है; श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने से प्रारब्ध धीरे-धीरे कट जाता है। तब अच्छी-अच्छी अवस्था भी प्राप्त होती रहती है। प्रारब्ध क्षय का इतना उत्तम उपाय और नहीं है।" यह कहकर ठाकुर ने आँख बन्द कर ली। मैं भी धीरे-धीरे नीचे आकर, दाऊजी के मन्दिर के बरामदे में जाकर बैठ गया। कुछ देर बाद दाऊजी की आरती आरम्भ हुई; मुझे अच्छा न लगा। मैं फिर से ऊपर जाकर बैठ गया। वेदना के कारण खूब कष्ट होने लगा।

गोपीनाथजी के मन्दिर में महोत्सव, ठाकुर का नृत्य

श्रीवृन्दावन में आकर, कुंज से अभी तक बाहर नहीं गया। सुना हूँ, आज श्रीगोपीनाथजी के मन्दिर में संकीर्तन-महोत्सव होगा। श्रीवृन्दावन के समस्त वैष्णव-समाज उसी उत्सव में सम्मिलित होंगे। थोड़ा दिन-चढ़ने पर, गुरुदेव के साथ हम लोग मन्दिर की ओर निकल पड़े। रास्ते में देखा एक विशाल संकीर्तन-मंडली आ रही है। गोसाँईजी, संकीर्तन के उद्देश्य से साष्टांग प्रणाम करके, विस्तृत मार्ग के बीच में खड़े हो गए। हाथ-जोड़कर, सतृष्ण नयन से कीर्तन की ओर देखते रहे। उनका सारा शरीर थर-थर काँपने लगा। देखते-देखते मृदंग-करताल की ध्वनि से चारों दिशा को कम्पित करके कीर्तन गोसाँईजी के सम्मुख आ गया। वैष्णवगण गोसाँईजी का दर्शन करके, दुगुने उत्साह के साथ गान करने लगे। वे लोग गोसाँईजी की परिक्रमा करते हुए बड़े उल्लास के साथ उन्मत्त होकर नृत्य करना आरम्भ कर दिये। गोसाँईजी तब दोनों हाथ सामने की ओर उठाकर, उच्च स्वर में– **"जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन"** बोलते-बोलते गिर पड़े। चारों ओर से संकीर्तन के बड़े-बड़े पृथक दल एक साथ मिलकर बड़े उत्साह से गोसाँईजी को घेरकर उच्च स्वर में गान करने लगे। इस समय गोसाँईजी व्रज की रज में बार-बार लोटकर, धूल भरे अंग से, अचानक उठकर खड़े हो गए। फिर मृदंग-करताल के ताल के साथ दो-चार कदम बढ़कर बिल्कुल उछल पड़े। **"जय हे! जय हे!"** बोलकर दाहिना हाथ ऊपर उछालते हुए उद्दण्ड नृत्य आरम्भ कर दिये। देखते-ही-देखते वे मल्ल वेश में नृत्य करके उसी भीड़ में, विशाल राजमार्ग में, विद्युत की तरह दौड़ा-दौड़ी करने लगे। पता नहीं, किस प्रकार

से इतनी भीड़ में निर्बाध गति से गोसाँईजी का वही विशाल शरीर मानो हवा में उड़ने लगा। दायें-बायें, आगे-पीछे जहाँ-तहाँ गोसाँईजी दौड़ने लगे, भाव की उमंग का प्रबल तूफान उठकर वह सब दिशा को आन्दोलित करने लगा। गोसाँईजी की प्रचंड हुँकार व बारम्बार हरिध्वनि सुनकर सभी मानो सुध-बुध खो बैठे। जगह-जगह वैष्णवगण भावावेश में बेहोश हो पड़े। इसी समय गोसाँईजी कीर्तन स्थल में सर्वत्र दौड़-दौड़कर, जगह-जगह एक-एक बार घबराए हुए की तरह खड़े होकर, तुरन्त ही सामने की ओर दोनों हाथ फैलाकर, **"जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन!"** बोलते-बोलते भूमि में गिरकर लोटने लगे। व्रज की रज सारे अंग में मलकर तुरन्त ही फिर से उछल पड़े; एवं उत्साह के साथ हरिध्वनि करके नृत्य करना आरम्भ कर दिये। भाव में उन्मत्त श्रीधर खूब उछलते-उछलते ओढ़ने का कम्बल को उड़ाकर गोसाँईजी के आगे-आगे चलने लगे। उनकी हुँकार और अद्‌भुत उछल-कूद से वैष्णव बाबाजी लोग भी उन्मत्त हो उठे। उन लोगों के विचित्र भाव के वेग को सहन नहीं कर पाने से मैं पीछे की ओर खिसक गया। इसी समय अपने पीछे की ओर मुड़कर देखा, गोसाँईजी के पुत्र श्रीमत् योगजीवन दौड़ते हुए आ रहे हैं। योगजीवन ढाका के गेण्डारिया-आश्रम में हैं, यही जानता हूँ; अचानक उनको इस समय कीर्तन स्थल में उपस्थित देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। संकीर्तन स्थल में गोसाँईजी को देखकर योगजीवन उन्मत्त हो उठा। बड़ी दूर से ही ठाकुर को पकड़ने के लिए दोनों हाथ फैलाकर बारम्बार अग्रसर होने के लिए प्रयास करने लगे; किन्तु मतवाले की तरह लड़खड़ाते-लड़खड़ाते चलकर दायें-बायें गिरने लगे। मैंने योगजीवन को पकड़ लिया। इसी समय गोसाँईजी अचानक पीछे की ओर मुख फेरकर खड़े हो गए एवं योगजीवन की ओर क्षणभर के लिए स्थिर भाव से देखकर उच्च स्वर में हरिध्वनि करने लगे। योगजीवन मतवाली आँखों से गोसाँईजी की ओर देखते ही अचेत हो पड़े।

गोसाँईजी ने संकीर्तन के साथ-साथ गोपीनाथ मन्दिर में प्रवेश किया। भावाभिभूत योगजीवन को लेकर कुछ देर बाद मैं भी वहाँ पहुँचा। मन्दिर के आँगन में जाकर श्रीश्री गोपीनाथजी को साष्टांग प्रणाम करते ही गोसाँईजी समाधिस्थ हो पड़े। दिन के तीन बजे तक गोसाँईजी को बाह्यज्ञान नहीं हुआ। समाधि भंग होने के बाद हम सभी कुंज में आ गए।

माता ठाकुरानी का श्रीवृन्दावन में आगमन; दाऊजी का मन्दिर

श्रीमत् योगजीवन गोस्वामी अपनी छोटी बहिन कुतुबुड़ी (श्रीमती प्रेमसखी) और माता श्रीयुक्तेश्वरी योगमाया देवी को लेकर आज ही श्रीवृन्दावन में आए हैं।

कुंज में प्रवेश करते ही उन लोगों को देखा। माता ठाकुरानी को देखकर हम सभी खूब आनन्दित हुए। माँ ने भी हम सभी का खूब आदर किया। गोसाँईजी ने किन्तु माता ठाकुरानी के साथ उस प्रकार से कोई भी बातचीत नहीं की। सामान्य रूप से दो-चार बातें गेण्डारिया आश्रम के सम्बन्ध में पूछकर, अपने आसन पर शान्त बैठे रहे। सुना हूँ, माता ठाकुरानी इस बार गोसाँईजी को किसी प्रकार की सूचना दिये बिना ही यहाँ आई हैं। गोसाँईजी के शरीर की दुरावस्था के सम्बन्ध में माता ठाकुरानी विशेष रूप से अवगत होकर अस्थिर हो पड़ी थीं। उनकी अनुपस्थिति से गेण्डारिया-आश्रम में बहुत असुविधा होगी जानकर भी, उस ओर दृष्टि न देकर चले आईं। माता ठाकुरानी गोसाँईजी के देह की ओर स्थिर दृष्टि से बहुत देर तक अवाक् होकर देखती रहीं।

इस छोटे से मकान में हम लोगों के रहने की सुव्यवस्था गोसाँईजी ने स्वयं कर दी है। नीचे हम लोगों के रहने का स्थान नहीं है। मकान बहुत छोटा है। पूरे मकान में लगभग पाँच-छह कट्ठा जमीन है। इस मकान के पूर्व की ओर मुख्य दरवाजा है। इस दरवाजे से प्रवेश करने से सामने ही दश-बारह हाथ के अन्तर में पूर्व की ओर द्वार वाला दाऊजी ठाकुर का मन्दिर है। सामने एक बरामदा है। मन्दिर से संलग्न दक्षिण की ओर नीचे मात्र दो कमरे हैं। एक कमरा अपेक्षाकृत कुछ बड़ा है; वहीं भोग की रसोई बनती है व प्रसाद पाते हैं। पीछे की ओर दूसरे छोटे कमरे में एक ब्रह्मचारी रहते हैं। इसी कमरे के पास से ही ऊपर जाने के लिए सीढ़ी है। यह सीढ़ी ऊपर लम्बे बरामदे के पश्चिम की ओर निकलती है। बरामदे से संलग्न दक्षिण दिशा में पास-पास तीन कमरे हैं। सीढ़ी से जाने पर पहले कमरे में ही गोसाँईजी का आसन है। कोई भी खिड़की न होने से इस कमरे में दिन के समय भी अन्धकार रहता है। इस कमरे के दरवाजे के ठीक पूर्व दिशा के किनारे, उक्त बरामदे में ही गोसाँईजी का आसन सारा दिन बिछा रहता है। उत्तरमुखी होकर गोसाँईजी प्रातः से संध्या तक इसी आसन पर ही स्थिर भाव से बैठे रहते है। मकान के उत्तरी भाग में खुली जमीन पड़े रहने के कारण बरामदे से देखने में कोई बाधा नहीं है। गोसाँईजी के आसन वाले कमरे के पूर्व की ओर, अर्थात् बीच वाले कमरे में, हम लोगों के रहने की व्यवस्था हुई है। पूर्व की ओर के अन्तिम कमरे में कुतुबुड़ी व योगजीवन को लेकर माता ठाकुरानी रहेंगी। हम लोगों के कमरे में भी वैसा उजाला नहीं आता। इसलिए दिन के समय माता ठाकुरानी के कमरे में हम लोग इच्छानुसार रह सकेंगे। माता ठाकुरानी के कमरे के पूर्व में एक बड़ी खिड़की के रहने से कमरा अच्छा उज्ज्वल है। यह कमरा गोसाँईजी के आसन से थोड़ा दूर है इसलिए हम लोगों को बातचीत करने में भी अच्छी सुविधा हो गई।

ठाकुर की कृपा-दृष्टि से उत्कट रोग की शान्ति; नाना प्रकार की बातें।

{बंगला सन् 1297, आषाढ़ 23, रविवार। **(6 जुलाई, ई॰ सन् 1890)**}

श्रीवृन्दावन में आकर मेरे पित्तशूल के रोग से कुछ भी शान्ति मिली है, समझ नहीं रहा हूँ। रात में नींद न होने तक इस विषम यन्त्रणादायक शूल का विराम नहीं है। संध्या के समय गोसाँईजी के पास थोड़ी देर बैठ भी नहीं पाता, बिछौने में पड़ा रहता हूँ। जिस दिन से वृन्दावन आया हूँ उस दिन से यह यन्त्रणा मानो और भी बढ़ रही है। गोसाँईजी मेरे शरीर को बहुत दुर्बल देखकर, अपने पीने के सामान्य परिमाण के दूध में से ही आधा प्रतिदिन मुझे देते हैं। मैंने पूछा, "आपके पीने के सामान्य परिमाण के दूध में से आधा मुझे क्यों देते हैं? मुझे दूध की कोई आवश्यकता नहीं है।"

गोसाँईजी ने कहा– **"बचपन से तुम्हें दूध पीने का अभ्यास है। अब नहीं पीने से अस्वस्थ हो सकते हो।"** मेरे नहीं चाहने पर भी, गोसाँईजी जिद करके प्रतिदिन मुझे दूध देते हैं।

प्रातः यमुना में स्नान करने के बाद गोसाँईजी के पास बैठकर नाम-जप करने लगा। थोड़ा दिन निकलते ही मेरी वेदना बहुत बढ़ गई। यन्त्रणा से मैं अस्थिर हो गया। कहीं गोसाँईजी को पता चल जाएगा इस भय से, अधिक देर तक श्वास रोककर एक-एक बार धीरे-धीरे दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगा। गोसाँईजी समाधिस्थ थे। इस समय अचानक वे दो-तीन बार शरीर को झटके से हिलाकर मानो चौंक उठे। बाद में, स्नेहपूर्वक मेरी ओर देखते हुए अश्रुपूर्ण होकर कहने लगे– **"ओह! तुम इतना कष्ट पा रहे हो! अच्छा, तुम्हें अब भुगतना नहीं होगा।"** इतना ही कहकर वे दो-तीन बार मेरी ओर देखकर फिर आँखें बन्द कर लिए। गोसाँईजी का मुख इस समय लाल होकर फूल गया। वे फिर से समाधिस्थ हो गए।

मेरी वेदना की बात यहाँ कोई नहीं जानता। गोसाँईजी इसे किस प्रकार जान गए? 'अब भुगतना नहीं होगा', ये भी क्यों कहा? यही सब सोचते-सोचते मैं नीचे चला गया।

———————

भोजन के बाद ठाकुर के पास बैठकर नाम-जप कर रहा था, थोड़ा अन्यमनस्क हो गया। इस समय धीरे-धीरे, पता नहीं कब, मेरी वेदना कम हो गई। कुछ देर बाद, वेदना बिल्कुल ही न देखकर चौंक उठा। सोचने लगा 'ये अब क्या

हुआ? इतने समय से जिस असह्य यन्त्रणा को लगातार भुगतता आया हूँ, वह अचानक कहाँ गई?' मैं यह असम्भव संयोग देखकर कुछ समय तक स्तंभित रह गया। मन में सोचा, 'यह मेरे गुरुदेव की ही कृपा है।' जो भी हो, सच में ही वेदना गई है या नहीं, स्पष्ट समझने के लिए रात में अतिरिक्त मात्रा में रोटी व अरहर की दाल एवं अधिक परिमाण में मिर्च व खट्टा खाया। किन्तु, सारी रात मुझे आराम से नींद आई; वेदना का लेशमात्र भी अनुभव नहीं किया।

———

{बंगला सन् 1297, आषाढ़ 24, सोमवार (**7 जुलाई, ई० सन् 1890**)}

आज प्रातः यमुना में स्नान करके आकर देखा, गुरुदेव अपने आसन पर स्थिर भाव से बैठे हुए हैं, किन्तु उनका चेहरा बिल्कुल काला हो गया है। ठाकुर का श्रीमुख देखकर मानो मेरी छाती फट गई। हाथ में रखे वस्त्र छोड़कर चीत्कार करके गिर पड़ा। ठाकुर का पैर पकड़कर रोते-रोते कहा, "मेरा रोग ले लेने से आपका शरीर काला हो गया। मेरा रोग मुझे ही दे दीजिये; उसे मैं ही भोगूँगा।" ठाकुर ने मेरा हाथ छुड़ाकर कहा— **"क्या रे? ऐसा क्यों करते हो? भोग-वोग वह सब कुछ नहीं है। किसका भोग कौन लेगा?"**

केवल इतना कहकर ठाकुर ने आँख बन्द कर ली। मैं फिर कुछ पूछने का अवसर भी नहीं पाया। मन में विचार आने लगा, "आह! ठाकुर मेरे लिए कितनी दुःसह यन्त्रणा भुगत रहे हैं!" ब्रह्मचारीजी ने मुझसे कहा था, "यह रोग प्रारब्ध का है, भुगतकर ही शेष होगा। अभी हाथ फेरकर हटा सकता हूँ; किन्तु ऐसा होने से अन्य जन्म में फिर भुगतना होगा।" आह! तब मैं यदि ब्रह्मचारीजी की बात मान लेता, छाती में हाथ फिरवाने देता, तो फिर अभी मेरे ठाकुर की छाती में यह भयानक भाला नहीं लगता। रोग की अपेक्षा मुझे यह क्लेश अधिक बोध होने लगा। मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा— "ठाकुर, यह आशीर्वाद दो, जिससे तुम्हारी यह दया जीवन में भूलूँ नहीं। मुझे स्वस्थ व शीतल रखने के लिए इस भयंकर रोग को लेकर अपनी छाती में आग लगा लिए, इस बात को स्मरण में रखकर ही मेरा यह जीवन समाप्त हो।"

———

भोजन के बाद कुछ समय गुरुभाइयों के साथ बातचीत में बीत जाता है। प्रतिदिन तीन बजे ठाकुर के पास हरिवंश का पाठ करता हूँ। ठाकुर उसे सुनकर बड़े ही आनन्दित होते हैं। मैं पाठ के समय ठाकुर को बड़ा ही तंग करता हूँ। हरिवंश की यथार्थता मैं कुछ भी नहीं समझता। ठाकुर से आज पूछा— "ये सब कथाएँ तो कुछ भी समझ नहीं आतीं। सीधा-सीधा पढ़ने से क्या लाभ?

ठाकुर ने कहा– **अभी केवल पढ़ते ही जाओ। साधना करने से जब ये सब तत्त्व प्रकाशित होंगे, तब सब समझोगे। एक बार पढ़ लेने से अच्छा है।**

मैं– तत्त्व प्रकाशित होने से ही तो सब जान जाऊँगा। तो फिर अभी क्यों पढ़ना?

ठाकुर ने कहा– **"नहीं, पढ़ लेना अच्छा है। प्रत्यक्ष हो जाने पर ये सब शास्त्र-पुराणों का लिखा देखकर विश्वास और भी दृढ़ होगा।"**

मैं– यदि बीस वर्ष बाद किसी विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, तो फिर उसका प्रमाण किस ग्रन्थ में कहाँ किस अंश में है, वह कैसे स्मरण होगा?

ठाकुर– **एक बार पढ़ा रहने से, प्रत्यक्ष विषय कहाँ पढ़ा हुआ था, बीस वर्ष बाद भी उसका स्मरण होता है।**

ठाकुर से विभिन्न प्रश्न करके बहुत समय बिताया। ठाकुर प्रतिदिन ही संध्या के समय श्रीमद्भागवत का पाठ सुनने के लिए श्रीयुत् नीलमणि गोस्वामी जी के घर जाते हैं। नीलमणि गोस्वामी जी स्वयं ही उसका पाठ करते हैं। हम सब लोग भी ठाकुर के साथ जाते हैं। ऐसा भागवत-पाठ कदाचित् श्रीवृन्दावन में कहीं सुना नहीं। एक-एक श्लोक की व्याख्या में नीलमणि गोस्वामी जी एक घण्टा भी बिता देते हैं। ठाकुर ने कहा– **ग्रन्थ पाठ के समय उनकी व्याख्या में ज्ञान और भक्ति मानो मूर्तिमान् होकर प्रकाशित होते हैं। ऐसी असाम्प्रदायिक व्याख्या आजकल सुनी नहीं जाती।**

श्रीयुत् नीलमणि गोस्वामी जी ठाकुर को 'काका' कहते हैं और उनकी बहुत श्रद्धा करते हैं।

———

प्रसंगवश आज एक बार ठाकुर से पूछा, "सुना हूँ, हम लोगों के विषम मानसिक भोगों को आप ग्रहण करते हैं। प्रारब्ध का तीव्र दैहिक भोग भी क्या आपको भुगतना होता है?"

ठाकुर ने कहा– **"अरे बेटा, सभी भुगतना होता है।"**

गोसाँईजी और माता ठाकुरानी का कलह

{बंगला सन् 1297, आषाढ़ 25, मंगलवार। **(8 जुलाई, ई॰ सन् 1890**)}

गोसाँईजी के शरीर की अवस्था बहुत ही खराब जानकर, अत्यन्त व्यग्र होकर माता ठाकुरानी श्रीवृन्दावन आ गई हैं। गेण्डारिया त्याग करके माता ठाकुरानी इस समय यहाँ न आएं, इसलिए ठाकुर बार-बार पत्र लिखे थे; किन्तु

ठाकुर के निषेध करने के बाद भी, माता ठाकुरानी यहाँ आए बिना स्थिर न रह सकीं। गोसाँईजी के शरीर की अवस्था से अवगत होकर वे अस्थिर हो पड़ीं। किन्तु, यहाँ आने के बाद से माता ठाकुरानी मानो डरी-डरी-सी हैं; गोसाँईजी के पास जाती नहीं, बैठती नहीं। ठाकुर भी माता ठाकुरानी को किसी प्रयोजन से बुलाते नहीं। माता ठाकुरानी सारा दिन अपने कमरे में ही बैठी रहती हैं, हम लोगों के साथ भी वैसा बातचीत नहीं करती। आज रात लगभग ग्यारह बजे माता ठाकुरानी साहस करके गोसाँईजी के आसन के पास जाकर बैठ गईं; एवं धीरे-धीरे गोसाँईजी को हवा करने लगीं। रात के समय गोसाँईजी आसन वाले भीषण गरम कमरे में रह नहीं पाते; दिन के समय जहाँ रहते हैं, उसी बरामदे के आसन पर ही रात व्यतीत करते हैं। मैं भी गरम अन्धकूप कमरे में न रह पाने के कारण बरामदे में ही रहता हूँ। गोसाँईजी के आसन से प्रायः तीन हाथ के अन्तर में मेरा बिछौना है। गोसाँईजी ने ही मुझे इस स्थान पर सोने के लिए कहा है। मैं जितनी देर जागता रहा, ठाकुर समाधिस्थ रहे। रात में प्रायः तीन बजे मेरी नींद टूटी; तब उसी प्रकार बिछौने में लेटे रहकर, गोसाँईजी और माता ठाकुरानी का झगड़ा सुनने लगा। श्रीमती शान्तिसुधा (ठाकुर की बड़ी कन्या) गर्भवती हैं; बूढ़ी ठाकुरानी (गोस्वामीजी की सास) अस्वस्थ है; योगजीवन की पत्नी अभी बहुत छोटी है; इस अवस्था में उन लोगों को गेण्डारिया में छोड़कर माता ठाकुरानी का आना ठीक नहीं हुआ, गोसाँईजी बार-बार यही बात कहने लगे एवं माता ठाकुरानी से तुरन्त ढाका लौट जाने के लिए जिद करने लगे। माता ठाकुरानी ने कहा कि गोसाँईजी का शरीर अभी जिस प्रकार अस्वस्थ और कमजोर हो गया है, उनको उस प्रकार छोड़कर अब किसी भी हालत में कहीं नहीं जाएँगी। वे कोई श्रीवृन्दावन की तीर्थ-यात्रा पर नहीं आई हैं, ठाकुर की सेवा करने ही आई हैं एवं सेवा ही करेंगी। इस प्रकार वाद-विवाद में क्रमशः रात लगभग बीत गई। गोसाँईजी ने तब थोड़ी उग्रता के साथ माता ठाकुरानी से कहा—

मैं जिस आश्रम को ग्रहण किया हूँ तुम मेरे साथ रहोगी तो उस आश्रम की मर्यादा नहीं रहेगी। तुम्हें श्रीवृन्दावन में रहना है, तो और कहीं जाकर रहो। इस कुंज में नहीं रह सकतीं। इसमें यदि तुम जिद करती हो, तो मैं कहीं और चला जाऊँगा, उत्तरकुरु चला जाऊँगा।

गोसाँईजी की अन्तिम बात सुनकर माता ठाकुरानी ने फिर कुछ भी नहीं कहा, स्तब्ध होकर बैठी रहीं। इधर सबेरा भी हो गया। मैं शौच के लिए गया।

माता ठाकुरानी का अलौकिक रूप से अन्तर्धान

{बंगला सन् 1297, आषाढ़ 26, बुधवार। **(9 जुलाई, ई॰ सन् 1890)**}

प्रातःकाल यथासमय ठाकुर उठकर शौच के लिए गए, हम सब लोग भी नीचे आ गए। योगजीवन, सतीश, श्रीधर आदि एक-एक करके सभी स्नान करने गए। मैं भी मुँह धोकर यमुना में जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। इसी समय माता ठाकुरानी नीचे आईं। माता ने मुझे देखकर कहा– "क्या कुलदा, यमुना में जाओगे नहीं?" मैंने कहा– "हाँ जाऊँगा। आप मेरे साथ जाएँगीं? माता ठाकुरानी ने कहा– "मैं जाऊँगी। लेकिन, तुम जाओ ना! तुम्हारा लोटा मुझे दो।" यह कहकर, माताजी मेरे हाथ से लोटा लेकर, आठ-दश हाथ के अन्तर में कुएँ के किनारे में जाकर खड़े हो गईं। फिर कुल्ला करते-करते एक-एक बार मेरी ओर ताकने लगीं। मैं स्नान करने जाऊँगा; पाँच-छह सेकेण्ड के लिए एक बार ठाकुर को वहीं से प्रणाम करके, सिर उठाकर देखा, माता ठाकुरानी नहीं है। कुँए के किनारे केवल लोटा पड़ा हुआ है। माता ठाकुरानी को न देखकर, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ; सोचा– 'इतनी शीघ्र माताजी कहाँ गईं? अभी तो वे यहीं खड़ी थीं। जाने का रास्ता भी तो कहीं और से है नहीं। दीवार से घिरा मकान, चारों ओर कुछ है भी नहीं। मुख्य दरवाजे से जातीं भी तो मेरे पास से होकर ही तो जाएँगी।' मैं लोटा उठाकर यही सब विचार करते-करते यमुना की ओर चला गया। यमुना में स्नान करके कुंज में प्रवेश करते ही योगजीवन ने मुझसे पूछा– "क्यों! तुम माँ को कहाँ छोड़कर आ गए, माँ आईं नहीं।"

मैंने कहा– "कहाँ, माताजी तो मेरे साथ गई नहीं। वे क्या अपने कुंज में नहीं हैं?" योगजीवन 'ना' कहकर, अवाक् होकर मेरी ओर देखते रह गए। तब मैंने रात में हुए कलह का विवरण सबको बतलाया। सभी ने अनुमान लगाया कि ठाकुर के प्रति अप्रसन्न होकर, हो सकता है किसी कुंज में चली गई हैं। कुछ देर प्रतीक्षा करके हम लोगों ने देखा माताजी आई नहीं, तब श्रीधर, सतीश, स्वामीजी, योगजीवन एवं मैं अस्थिर होकर माता ठाकुरानी को खोजने बाहर निकले। प्रातः साढ़े छह बजे से दिन के एक बजे तक वृन्दावन के कुंज-कुंज में, रास्ते में, घाट में, मन्दिर में, बागान में और यमुना के किनारे सभी जगह छान-बीन करके माता ठाकुरानी को तलाश किया; किन्तु कहीं उनका पता नहीं चला। परिचित सभी लोगों से पूछा गया, किन्तु कोई भी कुछ बतला नहीं पाया। एक बजे तक सारे वृन्दावन में दौड़-धूप करके, थककर हम लोग कुंज में लौटे। नीचे बैठकर सभी परामर्श करने लगे, 'अब क्या किया जाए? योगजीवन और श्रीधर बार-बार मुझसे जिद करके कहने लगे– "भाई, तुम जाकर माँ के विषय में गोसाँईजी से बोलो।

आज वे इतने गम्भीर हैं कि, उनके पास जाने का हम लोगों का बिल्कुल भी साहस नहीं होता।" अन्त में और कोई उपाय न देखकर मैं धीरे-धीरे ठाकुर के पास जाकर बैठ गया; कुछ देर बाद ठाकुर ने आँख खोली। मैंने तुरन्त कहा– "माता ठाकुरानी नहीं मिल रही हैं। वे तो अकेली कभी कुंज से कहीं भी जाती नहीं। किन्तु, पता नहीं आज कहाँ चली गईं? सबेरे से अब तक हम लोग उनके संधान में सारा वृन्दावन घूमे; कहीं भी नहीं मिली।" ठाकुर ने बिन्दुमात्र भी व्याकुलता न दिखलाकर, सहज भाव से कहा– **"कहाँ जाएँगी? तलाश करके देखो। यमुना के किनारे पर देखे हो?"**

मैंने कहा– 'कोई स्थान बाकी नहीं रहा। रास्ते के लोगों से भी पूछे हैं।' ठाकुर क्षणभर चुप रहकर, थोड़ा मुस्कुराते हुए बोले– **"उनको खोजने से अब मिलेंगी नहीं। परमहंसजी उनको ले गए हैं।"**

मैंने पूछा– 'परमहंसजी माताजी को क्यों ले गए हैं?'

ठाकुर ने कहा– **"कल जब उनको अन्यत्र रहने के लिए कहा गया, तो मना कर दीं। बहुत समझाकर कहा, किसी प्रकार भी सम्मत नहीं हुईं। तब मैंने परमहंसजी को स्मरण किया। वे तभी मुझसे बोले, 'इसके लिए व्याकुल क्यों हो रहे हो? कोई चिन्ता नहीं है। कल ही मैं उनको अन्यत्र ले जाऊँगा।' वे उनको ले गए हैं; खोज करना बेकार है।"**

मैं– तो क्या यहाँ माताजी के आने की सम्भावना नहीं है?

ठाकुर– **उनकी किसी ओर अब माया नहीं है; केवल कुतु के ऊपर थोड़ा आकर्षण है। इसी से कुतु के लिए आ भी सकती हैं। अभी उस विषय में स्पष्ट कुछ कहा नहीं जा सकता। आना, नहीं आना उनकी इच्छा पर है।**

मैं– परमहंसजी किस प्रकार ले गए? उनको तो वहाँ पर देखा नहीं! माताजी मेरे से मात्र आठ-नौ हाथ के अन्तर में थीं। पाँच-छह सेकेण्ड के लिए केवल एक बार मेरी दृष्टि अन्य ओर थी। मुख फेरकर देखा, माताजी नहीं हैं। परमहंसजी आते तो उनको देख पाता!

ठाकुर– **परमहंसजी सूक्ष्म शरीर में आए थे; उनको देखते कैसे? वे तो सूक्ष्म शरीर में आकर ले गए!**

मैं– परमहंसजी तो सूक्ष्म शरीर में आए थे, किन्तु माताजी तो फिर सूक्ष्म शरीर में गई नहीं! माताजी के स्थूल शरीर को क्षणभर के भीतर परमहंसजी किस प्रकार अन्यत्र ले गए?

ठाकुर– **वे लोग सब-कुछ कर सकते हैं। योगी लोग इच्छा से इस स्थूल भूत को सूक्ष्म में परिवर्तन कर सकते हैं, सूक्ष्म भूत को भी स्थूल कर सकते हैं। शरीर के पंचभूत को पंचभूत में मिलाकर, स्थूल को सूक्ष्म करके क्षणभर के मध्य उनको ले गए।**

मैं– परमहंसजी माताजी को कहाँ ले गए हैं? क्या श्रीवृन्दावन में ही उनको सूक्ष्म शरीर में रखे हैं, या और कहीं ले गए हैं?

गोसाँईजी– **श्रीवृन्दावन में अब क्यों रखेंगे? परमहंसजी उनको सीधा मानससरोवर ले गए हैं।**

मैं– मानससरोवर में माताजी क्या सूक्ष्म शरीर में हैं?

गोसाँईजी– **ऐसा क्यों? वहाँ जाकर फिर से जैसी थीं, वैसी हो गईं।**

मैं– मानससरोवर में परमहंसजी हैं; वहाँ क्या और भी कोई हैं, या परमहंसजी अकेले ही रहते हैं?

ठाकुर– **और भी कितने हैं! कितने-कितने ऋषि-मुनि, देवी-देवता हैं!**

मैं– अब वहाँ रहकर माताजी क्या करेंगी?

ठाकुर– **साधन-भजन करेंगी, कितना आनन्द करेंगी! वहाँ जाने के बाद फिर क्या लौटने की इच्छा होगी?**

मैं– मानससरोवर तो तिब्बत में है। वहाँ पर देवी-देवता, ऋषि-मुनि रहते हैं?

ठाकुर– **नहीं, नहीं, ये वो मानससरोवर नहीं है। भूगोल में जिस मानससरोवर को पढ़े हो, वो नहीं– वह तो 'मानतलाब' है। मानससरोवर बहुत दूर हिमालय के ऊपर है।**

मैं– हम लोग क्या मानससरोवर जा नहीं सकते हैं?

ठाकुर– **इस शरीर को लेकर किस प्रकार जाओगे? मार्ग तो बहुत ही दुर्गम है। खूब योगेश्वर्य न होने से वहाँ जा नहीं सकते। साधारणतः जिसको मानससरोवर कहते हैं, वहाँ सहज में ही जा सकते हैं। वह तो ये मानससरोवर नहीं है! मानससरोवर कैलास जाने के मार्ग में है।**

मैं– माताजी तब तो कुतु के लिए फिर आ सकती हैं?

ठाकुर– **वह कह नहीं सकते– इतनी-सी माया इच्छा करने से ही वे लोग काट सकते हैं।**

ठाकुर के साथ बातचीत में बहुत समय बीता। संध्या के समय और दिनों की तरह आज भी ठाकुर के साथ भागवत-पाठ सुनने गया। कुंज लौटने में रात हो गई।

योगजीवन को गृहस्थी में रहने का आदेश

{बंगला सन् 1297, आषाढ़ 27, बृहस्पतिवार। **(10 जुलाई, ई॰ सन् 1890)**}

माता ठाकुरानी के अन्तर्धान से सभी के मन में आघात लगा। योगजीवन अत्यन्त अस्थिर हो पड़े। अब गेण्डारिया जाएँगे नहीं, गृहस्थी में नहीं रहेंगे– कहने लगे। योगजीवन बिल्कुल उदासीन ही हो जाना चाहते हैं। ठाकुर उन्हें बड़े स्नेहपूर्वक सुन्दर उपदेश देकर शान्त करने लगे। योगजीवन आज बहुत देर तक ठाकुर के साथ तर्क किये। ठाकुर ने अन्त में कहा, **"और अधिक दिन तुझे गृहस्थी में रहना नहीं होगा, निश्चित जान ले। शीघ्र ही तेरा सब ठीक हो जाएगा। जब तक वह नहीं होता कुछ समय गृहस्थी में रहना होगा। तुम्हारा यह इतना-सा कर्म समाप्त किये बिना चलेगा नहीं। अभी ढाका में जाकर रहो।"** अत्यन्त आग्रह समझकर योगजीवन अन्त में शीघ्र ही फिर ढाका जाने के लिए सम्मत हो गए।

संध्या के समय जब हम लोग श्रीमद्भागवत सुनने जाते हैं, रास्ते के दोनों ओर और सामने हम लोग केवल माता ठाकुरानी का ही अनुसंधान करते रहते हैं। माता ठाकुरानी के अन्तर्धान के बाद ठाकुर ने मुझसे कहा– **कुतु पर सदैव दृष्टि रखना। पाठ सुनने जब जाओगे, कुतु का हाथ पकड़कर ले जाना। पाठ सुनने जब बैठोगे, कुतु को पास ही बैठाना। कहीं उसको ले न जाए!**

मैंने पूछा– "कुतु को भी क्या ले जा सकते हैं?

ठाकुर– **ले जा क्यों नहीं सकते? अच्छी तरह ले जा सकते हैं।**

आश्चर्य यह है कि माता ठाकुरानी के लिए कुतु की थोड़ी भी व्याकुलता नहीं देख रहा हूँ। कुतु दिनभर ठाकुर के पास बैठी रहती है; ठाकुर के साथ बातचीत में, हँसी-मजाक में दिन बिता देती है; एक बार भी माँ की बात नहीं करती; किसी से माँ के सम्बन्ध में कोई बात पूछती भी नहीं। इतनी बड़ी एक घटना हो गई, कुतु मानो कुछ भी नहीं जानती। कुतु को लक्ष्य करके ठाकुर से मैंने पूछा– "माँ के अभाव में क्या किसी-किसी को कुछ भी क्लेश नहीं होता?" ठाकुर ने कहा– **हाँ, क्लेश सभी को होता है; तो भी किसी-किसी में धैर्य बहुत अधिक होता है।**

वानर 'कृष्णदास'

भोर में, प्रातःक्रिया सम्पन्न करने के बाद ठाकुर बरामदे में आकर अपने आसन पर बैठते हैं। इसी समय 'कृष्णदास' आकर हाजिर होता है। 'कृष्णदास' एक छोटा-सा बन्दर है। ठाकुर ने आदरपूर्वक उसका नाम 'कृष्णदास' रखा है। ठाकुर भोजन करने के पहले रात्रि में 'कृष्णदास' के लिए कम-से-कम एक रोटी रख देते हैं। प्रातःकाल प्रतिदिन ही 'कृष्णदास' आकर उसे खाते हैं। 'कृष्णदास' के लिए यहाँ पर द्वार खुला हुआ है। प्रातःकाल आते ही 'कृष्णदास' बाहर से दो-तीन बार चीं-चीं करके आवाज करते हैं। तब ठाकुर हाथ में रखकर उसे खाना देते हैं। दो-चार बार आवाज करने के बाद 'कृष्णदास' को खाना न मिलने से बराबर ठाकुर के आसन-घर में प्रवेश करते हैं; जहाँ खाना रखा होता है वहाँ से खाना लेकर, ठाकुर के सामने आकर बैठते हैं; फिर धीरे-धीरे पाँच-सात मिनट बैठकर खाना पूरा करके चले जाते हैं। किन्तु, यदि किसी आकस्मिक कारण से 'कृष्णदास' आकर भी खाना नहीं पाते, तो फिर ठाकुर का हाथ-पैर पकड़कर खींचा-तानी करते हैं— कभी गोद में, कभी तो बिल्कुल ठाकुर के कंधे पर चढ़कर बैठ जाते हैं। उसको जब तक खाना न दे दें, ठाकुर स्थिर होकर आसन पर बैठ नहीं पाते हैं। 'कृष्णदास' बड़े शान्त प्रकृति के नहीं हैं; फिर भी ठाकुर का बड़े दुलारे हैं।

भक्त बूढ़े वानर का कार्य

एक और बूढ़ा बन्दर ठाकुर का भक्त है। यह बहुत बुद्धिमान है। जिस दिन से ठाकुर ने यहाँ आकर आसन लगाया है, उस दिन से ही यह ठाकुर का नित्य संगी है। प्रातः चाय पीने के बाद श्रीधर कुछ देर श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ का पाठ करते है। फिर दिन के नौ बजे ठाकुर श्रीमद्भागवत का पाठ आरम्भ करते हैं। ठीक इस समय ही बूढ़ा बन्दर आकर ठाकुर के समीप, घेरे के बाहर बैठता है एवं गाल पर हाथ रखकर स्थिर भाव से ठाकुर की ओर देखते रहता है; ऐसा लगता है मानो भागवत सुन रहा है। पाठ समाप्त न होने तक वह किसी भी हालत में अपना स्थान छोड़ता नहीं। यदि कोई दुष्ट बन्दर आकर पाठ के समय गड़बड़ करे, तो बूढ़ा बन्दर ऐसी दृष्टि से एक बार उसकी ओर देखता है, कि वह भय से चीत्कार करके भाग जाता है। पाठ के समय बूढ़े बन्दर को कुछ खाने की वस्तु देने से वह किसी तरह से भी उसे खाता नहीं, रख देता है; पाठ समाप्त होने पर धीरे-धीरे उसे खाता है। आश्चर्य का विषय यह है कि एक दिन के लिए भी उसका यह भागवत-श्रवण बन्द नहीं होता। दिनभर वह कहीं भी क्यों न रहे, नौ से दस

बजे तक वह निर्दिष्ट स्थान छोड़कर कहीं नहीं रहता। बूढ़ा बन्दर इस मुहल्ले के बन्दरों का मुखिया है। उसका शरीर अच्छा हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ है। देखने से बड़ा ही आनन्द होता है। बूढ़े बन्दर के और भी अद्‌भुत कार्य के बारे में सोचकर अवाक् हो जाता हूँ। सम्पूर्ण वृन्दावन में घर-घर में बन्दरों का बहुत अधिक उत्पात है। बूढ़े बन्दर के कारण ही लगता है, हमारे कुंज में बन्दरों का वैसा उपद्रव नहीं है। एक दिन प्रातः के समय अचानक एक बन्दर आकर हम लोगों का एक लोटा ले गया। शौच के लिए जाने में बड़ी असुविधा होने लगी। बूढ़ा बन्दर कुछ देर बाद ही कुंज में आया। ठाकुर ने बूढ़ा से कहा– **"बूढ़ा, तुम्हारे दल का एक बन्दर आकर हमारा एक लोटा ले गया है, हम लोगों को बड़ी असुविधा होती है। लोटा ला दोगे?"** ठाकुर की बात सुनकर, बूढ़ा एक ऊँचे स्थान में उछलकर चढ़ गया; वहाँ दोनों पैरों पर खड़े होकर चारों ओर देखने लगा। जो बन्दर हम लोगों का लोटा लेकर भागा था, वह तीन-चार मकान के अन्तर में एक व्रजवासी के घर की छत में बैठा था। बूढ़ा बन्दर एक बार उसकी ओर इस तरह से देखा कि वह लोटा छोड़कर चीत्कार करके भागकर अदृश्य हो गया। तब बूढ़ा धीरे-धीरे जाकर लोटा उठा लिया और आकर ठाकुर के पास रखकर शान्त भाव से बैठ गया।

वानर में इस प्रकार की बुद्धि की इसके पहले मैंने कभी कल्पना भी नहीं की। वानर भी पालतू नहीं है फिर भी ऐसा बुद्धिमान और आज्ञाकारी है यही आश्चर्य है! ठाकुर ने कदाचित् कहा है– **ये कोई वैष्णव महात्मा हैं, व्रजवास की आकांक्षा से वानर देह धारण किये हुए हैं।**

ठाकुर के भोजन की अत्यन्त दुरावस्था

भोर में ठाकुर आसन से उठकर शौच के लिए जाते हैं। श्रीधर जल, कौपीन और बहिर्वासादि लेकर खड़े रहते हैं। मुँह धोने के बाद ठाकुर ऊपर आकर 'कृष्णदास' को खाना देते हैं। बाद में अपने आसन पर जाकर बैठते हैं। श्रीधर इसी समय चाय बनाना आरम्भ करते हैं।

चाय की दुर्दशा देखकर बड़ा ही कष्ट हुआ। एक पैसे का थोड़ा-सा बासी दूध और सामान्य परिमाण में चीनी का किसी प्रकार से जुगाड़ होता है। अर्थाभाव के कारण, अति साधारण श्रेणी की चाय सस्ती दर पर थोड़ा-थोड़ा खरीदकर लाना होता है। एक दिन की बनी हुई चाय की पत्ती को न फेंककर ठाकुर उसे ही सुखाकर रखने के लिए कहते हैं। अभाव होने पर उन्हीं पत्तियों को जल में उबालकर ठाकुर को देना होता है। मलेरिया के कारण बहुत समय से ही ठाकुर

को चाय पीने का अभ्यास है। समय पर वह न मिलने से ठाकुर को असुविधा होती है; किन्तु इस प्रकार की नीरस चाय ठाकुर किस प्रकार पीते हैं, समझ नहीं आता। चाय के ऐसे अभाव की खबर एक बार कोलकाता में जाने से, सैकड़ों गुरुभाई कितनी उत्कृष्ट चाय आग्रहपूर्वक भेज देते। किन्तु, ठाकुर की इच्छा के बिना किसी को भी कुछ करने का उपाय नहीं है। ठाकुर की अनुमति के बिना ही मैंने भैया को उत्कृष्ट चाय भेजने के लिए लिख दिया।

ठाकुर के चाय पीने के बाद श्रीधर एक अध्याय श्रीचैतन्यचरितामृत का पाठ करते हैं। उसके बाद, नौ बजे ठाकुर स्वयं श्रीमद्भागवत का पाठ किया करते हैं।

मध्याह्न में किसी-किसी दिन ठाकुर यमुना में स्नान करते हैं। फिर बारह बजे सबके साथ नीचे रसोई में जाकर प्रसाद ग्रहण करते हैं। ठाकुर का वह शरीर इतना क्यों सूख गया है, प्रसाद का रूप देखने से ही वह स्पष्ट समझा जा सकता है। ठाकुर जब श्रीवृन्दावन में आए थे, बहुत-से सम्पन्न भक्तों ने ठाकुर को अच्छे मकान में ले जाकर सेवा करने के लिए यथेष्ट आग्रह किया था; किन्तु दामोदर गरीब है इसलिए, उसकी प्रार्थना और 'जिद' से ठाकुर उसके ही कुंज में आए। ठाकुर की सेवा के लिए जो कुछ हर महीने आता है, ठाकुर उसका एक कौड़ी भी न रखकर दाऊजी ठाकुर के भोग के लिए दामोदर के हाथ में दे देते हैं। दामोदर पहले-पहले दो-तीन मास दाऊजी का भोग कदाचित् ठीक ही दिया था। बाद में, ठाकुर के शिष्यों में अनेक धनवान् लोग हैं, यह खबर पाकर, तरह-तरह के 'दाँव-पेंच' आरम्भ कर दिया। ठाकुर को आहारादि का अतिशय क्लेश हो रहा है सुनकर भक्त शिष्य लोग निश्चय ही मुट्ठी भर-भरकर रुपये भेजेंगे, ऐसा ही दामोदर को दृढ़ विश्वास है; इसीलिए अब वह दाऊजी की सेवा के लिए रुपये मिलने पर उससे सर्वप्रथम अपने घर के लिए मासिक प्रयोजनीय सामग्री संग्रह करता है। बाद में जो शेष बचता है उससे किसी प्रकार दाऊजी की सेवा व्यवस्था होती है। प्रायः तीन महीने से रोटी, भात और उबला हुआ कुम्हड़ा दाऊजी को भोग लग रहा है। नमक और मसाला के बिना, केवल जल में उबला कुम्हड़ा प्रस्तर मूर्ति दाऊजी के ही भोग में अनन्तकाल चल सकता है; किन्तु, रक्त-मांस के शरीर में, जो लोग वह प्रसाद पाते हैं, वे लोग और कब तक उसमें रुचि और भक्ति रखेंगे?

भरपेट भोजन ठाकुर का एक दिन भी नहीं हो रहा है। किसी प्रकार थोड़े-से दूध में एक मुट्ठी भात डालकर उसे ही खाकर ठाकुर उठ जाते हैं। सस्ते मूल्य के बेकार मोटे आटे की रोटी केवल नमक और उबले कुम्हड़े के साथ दो-एक से अधिक ठाकुर किसी दिन भी खा नहीं पाते। रात्रि भोजन की व्यवस्था और भी भयंकर है। मध्याह्न का ही उबला कुम्हड़ा और मोटी रोटी अल्प परिमाण में रात

के लिए रख दी जाती है। जिसके पेट में वैसी ज्वाला होती है केवल वहीं उस सड़ा दुर्गन्ध युक्त कुम्हड़ा और कड़कड़ी रोटी को, एक गहरी श्वास छोड़कर 'हरे कृष्ण', 'हरे कृष्ण' कहते-कहते गले से उतारकर चले आता है। अनुनय-विनय करके दामोदर से भोग का थोड़ा अच्छा बन्दोबस्त करने के लिए कहने पर, दामोदर रुपये के लिए 'बंगला मुल्क के' गोसाँई के 'चेला लोग' के पास खत् भेजने का उपदेश देता है। वैसा हम लोग करते नहीं; इसलिए 'गोसाँई का क्लेश तुम लोगों के प्राण में लगता नहीं' कहकर दामोदर हम लोगों को 'पाखण्डी' कहकर गाली देता है। हर महीने इतना रुपये पाकर भी दामोदर भोग की अच्छी व्यवस्था क्यों नहीं कर रहा है, हम दो-चार लोग मिलकर यह पूछते हैं तो, दामोदर माला हिलाते-हिलाते तत्त्व की बात बोलता है, कहता है– "अरे, भला भोजन, भजन-विरोधी। भगत् को लोभ नहीं करना चाहिए।" हाथ-पैर पकड़कर दामोदर से भोजन में थोड़ा-सा परिवर्तन करने के लिए हम सभी के कहने पर, दामोदर उबला कुम्हड़ा न देकर उसका छिलका उबालकर देता है। 'रुपया-पैसा अपने हाथ में रखकर, स्वयं ही ठाकुर के भोग की व्यवस्था करेंगे' यह भय दिखाने से, दामोदर बड़ा उत्साह दिखाकर बाजार जाता है; बाजार का छँटा हुआ सूखा व कीड़ा लगा, साधारण लोगों का त्यागा हुआ बैंगन और 'पंचमेल' साग लाकर उसे ही पकाकर देता है; और 'कैसा खिलाया' 'कैसा खिलाया' कहकर दश-पन्द्रह दिन तक उसी की बड़ाई करता है। पेट की ज्वाला से सदैव हमारे भीतर से "भागो भागो" पुकार निकल रही है। हे भगवान्! और कब तक ये भोगना होगा! भोजन के लिए बैठने पर, प्रतिदिन ही दामोदर को पीटने की इच्छा होती है, किन्तु एक दिन भी कुछ बोलने का उपाय नहीं है। "दामोदर का यह अतिरिक्त अत्याचार अब सहन नहीं होता" ठाकुर से कहने पर, ठाकुर ने मुस्कुराते हुए मधुर स्वर में कहा– **"दाऊजी जागृत देवता हैं। वे सब-कुछ देख रहे हैं। समय पर दाऊजी ही दामोदर को दण्ड देंगे। तुम लोग दामोदर को कुछ भी मत कहना।"** अच्छा है, ठाकुर के पल्ले में पड़कर देख रहा हूँ, अब 'बचाओ मधुसुदन' पुकारना होगा।

दामोदर को दाऊजी ठाकुर का दण्ड

{बंगला सन् 1297, आषाढ़ 31, सोमवार। **(14 जुलाई, ई॰ सन् 1890**)}

आज प्रातः ठाकुर के चाय पीने के बाद असमय में दामोदर पुजारी कुंज में आकर उपस्थित हुआ। मुँह फूला, किसी के साथ बात नहीं। दामोदर काँपते-काँपते ठाकुर के सामने जाकर प्रणाम करके रो पड़ा। ठाकुर ने पूछा– **क्यों दामोदर, क्या हुआ?**

दामोदर ने अपने पूरे शरीर में, विशेषकर दोनों गाल में, प्रहार का चिह्न दिखलाकर कहा– "बाबा, दाऊजी हमको बहुत मारा है।" दाऊजी महाराज ने क्यों मारा है, ठाकुर के यह पूछने पर दामोदर ने कहा– "बाबा, रात के अन्तिम प्रहर में मैं निद्रित अवस्था में स्वप्न देखा, दाऊजी ने आकर अचानक मुझे दबाकर पकड़ लिया। वे दोनों हाथ से मेरे दोनों गाल में भयंकर थप्पड़ मारने लगे। फिर मेरे पूरे शरीर में घूँसा और कोहनी से मारते-मारते कहने लगे, 'पाखण्डी, तेरा इतना साहस? अच्छे से भोग देता नहीं; गोसाँई खा नहीं पाते। उनको खाने का कष्ट देता है! आज तेरे को घूँसे से मार डालूँगा।' दाऊजी के भयंकर प्रहार लगने से मैं चीत्कार करके जाग उठा, किन्तु मेरे सारे शरीर की वेदना कम नहीं हुई। यह देखिए, बाबा, मेरे दोनों गाल सूज गए हैं। इन सभी जगह में अभी भी मुझे यन्त्रणा हो रही है।"

ठाकुर ने दामोदर से कहा– **दाऊजी महाराज तुम्हें दण्ड दिये हैं– तुम बहुत भाग्यवान् हो। भक्ति के साथ दाऊजी की सेवा करो। वे तुम्हारा कोई अभाव नहीं रखेंगे।**

हम लोग दामोदर के गाल की अवस्था देखकर विस्मित हो गए। स्वप्न का प्रहार शरीर में उभर आया हो, ऐसा पहले कभी देखा नहीं। दाऊजी ठाकुर का अनुशासन क्या है, वह विचार बुद्धि के द्वारा कुछ भी समझ नहीं आता। वह जो भी हो, दामोदर का भारी दण्ड भोग देखकर मन-ही-मन खूब खुश हुआ; सोचा– अब से दोनों समय भरपेट खाकर श्रीवृन्दावन वास कर सकूँगा।

कुतु की कथा; माता ठाकुरानी का लौटना

{बंगला सन् 1297, श्रावण 1, बुधवार। **(16 जुलाई, ई॰ सन् 1890)**}

आज मध्याह्न में अवकाश पाकर ठाकुर से माता ठाकुरानी के सम्बन्ध में पूछा। कहा, "माताजी को गए इतने दिन हो गए, उनकी कोई खोज-खबर तो अभी तक मिली नहीं। वे क्या अब वास्तव में नहीं आएँगी?

ठाकुर– **वह तो बोल दिया हूँ, कुतु के प्रति थोड़ा आकर्षण है। यदि आती हैं तो कुतु के लिए ही आएँगी। जो महात्मा लोग उन्हें ले गए हैं, उनकी इच्छा होने से इस आकर्षण को भी वे काट सकते हैं। इसलिए उनके आने के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।**

मैं– महात्मा लोग माताजी के आकर्षण को ही तो काटेंगे ना। कुतु तो बच्ची है, उसका तो माँ के प्रति थोड़ा मोह है।

ठाकुर– **कुतु को क्या माँ के लिए कष्ट होता है?**

मैं– वह तो कुछ समझ नहीं आता। कुतु की बातचीत, हँसी-मजाक, चलना-फिरना देखने से– वह एक बार भी माँ को स्मरण करती है, लगता नहीं। माँ यहाँ पर रहेंगी, यह आशा करके आई थी। उनके इस प्रकार जाने से सभी को खूब कष्ट हुआ है।

ठाकुर– **उनके इस प्रकार जाने से अच्छा ही हुआ। ऐसे जाने से कोई क्षति नहीं होगी, मंगल ही होगा। अब श्रीवृन्दावन में आने से उनको कभी भी वापस ले जाना संभव नहीं होगा। अपने ही स्थान में वे रह जाएँगी। इन सब कारणों से ही उनको श्रीवृन्दावन में आने के लिए बारम्बार निषेध किया था।**

इसी समय कुतु ने आकर ठाकुर से कहा– "पिताजी, माँ तो पाठ सुनने आती हैं! प्रायः ही माँ को देख पाती हूँ। आज भी माँ को वहाँ पर देखी।"

ठाकुर– **वे कहाँ थीं? कैसे देखी?**

कुतु– "क्यों? माँ हमारे पास ही तो बैठी थीं। इस शरीर में नहीं थीं। आज लगता है माँ अपने कुंज में आएँगी।"

ठाकुर– **हाँ आ सकती हैं।**

मैंने कुतु से पूछा– "कुतु, माँ के लिए क्या तुम्हें कष्ट होता है?"

कुतु ने कहा– "कष्ट क्यों होगा? माँ को न देख पाने से कष्ट होता। माँ को तो कई बार देख पाती हूँ। अब देखना, माँ आज आएँगी।"

मैंने कहा– "वह तुम कैसे समझीं?"

कुतु मेरी बात से थोड़ा विरक्त होकर बोली– "इसमें समझना क्या है? सुने नहीं– पिताजी ने भी तो कहा है!" हठात् इसी समय कुतु ने ठाकुर से कहा– "पिताजी, मुझे ऐसा क्यों होता है? दिन के समय भी जब जागती रहती हूँ, तब भी स्वप्न जैसा लगता है।"

ठाकुर– **क्या कहती हो– थोड़ा स्पष्ट कहो ना?**

कुतु– "सब समय रह-रह कर मुझे लगता है, जो कुछ देखती हूँ, सुनती हूँ, करती हूँ, ये सब कुछ नहीं है, सब मिथ्या है; सभी मानो स्वप्न देखती हूँ, लगता है। ऐसा क्यों होता है?"

ठाकुर– **तेरा बड़ा सौभाग्य है, इसीलिए। यथार्थ में ही ये सब-कुछ, कुछ भी नहीं हैं। सभी मिथ्या हैं। स्वप्न ही तो है। ये सब स्वप्न हैं स्पष्ट**

समझ लेने से ही तो हो गया! फिर क्या बचा?

———

संध्या के कुछ पहले कुतु के साथ ठाकुर की बातचीत हो रही थी, इसी समय एक वृद्धा आकर, नीचे से ही हम लोगों को पुकारने लगी– "अरे, कोई है? तुम लोगों की माता-गोसाँई हमारे घर में बैठी हुई हैं। कब आईं, कहाँ से आईं– कुछ पता नहीं। घर में उनको देखते ही तुम लोगों के पास दौड़कर आई हूँ।

ठाकुर ने योगजीवन को बुलाकर कहा– **योगजीवन, अभी चले जाओ। जाकर ले आओ।**

हमारे कुंज के दो मकान के बाद ही एक गरीब गृहस्थ के घर में माता ठाकुरानी बैठी थीं। योगजीवन जाकर माताजी को ले आए। माताजी के शरीर में कोई विशेष परिवर्तन दिखा नहीं, परिवर्तन हुआ केवल परिधान में मात्र गेरुआ वस्त्र। माता ठाकुरानी ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया। ठाकुर भी खूब संतुष्ट भाव से माता ठाकुरानी के साथ बातचीत आरम्भ किये; किन्तु, इतने दिन माता ठाकुरानी कहाँ पर किस प्रकार थीं, इस सम्बन्ध में उन्होंने एक बात भी नहीं पूछी।

रात्रि में भोजन के बाद ठाकुर के आसन के पास में सोया रहा। ठाकुर सारी रात बरामदे में ही रहते हैं। मच्छरों का विषम उपद्रव है। माता ठाकुरानी पंखा लेकर पहले की तरह ठाकुर को हवा करने लगीं। इसी समय योगजीवन, श्रीधर आदि के द्वारा माता ठाकुरानी के आकस्मिक अन्तर्धान के विषय में पूछने पर, माता ठाकुरानी ने कहा– परमहंसजी पाँच महापुरुष को साथ लेकर आए थे। वे छह-सात हाथ लम्बे थे; सबके ही सिर पर पगड़ी थी। वे लोग मुझे यमुना में ले गए। बोले– "यहाँ स्नान करो।" मैंने स्नान किया। फिर वे लोग मुझे कहाँ पर किस प्रकार ले गए– कुछ पता नहीं। थोड़ी देर बाद देखी– पहाड़ में हूँ। बड़ा ही अद्‌भुत स्थान है। परमहंसजी ने मेरे रक्षक के रूप में इन पाँच महापुरुष को नियुक्त करके रखा था। वे लोग सर्वदा मेरे पास-पास रहते थे; मैं इच्छानुसार जहाँ-तहाँ घूम सकती थी। वह स्थान ही ऐसा था कि किसी प्रकार से उद्वेग अशान्ति मन में आई नहीं। बड़े ही आनन्द का स्थान था। वे लोग ही फिर मुझे यहाँ छोड़ गए।

प्रश्न– आपने क्या आना चाहा था?

माता ठाकुरानी– वहाँ से क्या आने की इच्छा होती है? फिर भी समय-समय पर कुतु की स्मृति मन में आती थी।

मेरे कौमार्य की आकांक्षा का प्रकाश

{बंगला सन् 1297, श्रावण 2, बृहस्पतिवार। **(17 जुलाई, ई॰ सन् 1890)**}

मेरी पित्तशूल वेदना पूर्ण रूप से ठीक हो गई है। इस रोग के ठीक होने से मुझे थोड़ी चिन्ता होने लगी। शरीर स्वस्थ हो गया है, अब हो सकता है ठाकुर और अधिक दिन अपने साथ मुझे नहीं रखेंगे। देश जाने से ही भैया लोग मुझे पढ़ाई-लिखाई करने बोलेंगे; वह तो मेरे लिए यम-यातना की अपेक्षा और भी कष्टकर है। पढ़ाई-लिखाई न करने से भी, नौकरी तो मुझे करनी ही होगी। तब तो सब मुझे विवाह करने के लिए बाध्य करेंगे। इन सब उत्पातों से किस उपाय से रक्षा होगी?

हरिवंश पाठ के बाद आज ठाकुर से कहा– "कुछ दिनों से मैं बड़ा चिन्तित हूँ, आपसे सब कहने की इच्छा होती है।"

ठाकुर ने कहा– **चिन्ता क्यों है? खुलकर बोलो।**

उत्साह पाकर मैं प्राण खोलकर इस प्रकार कहने लगा– "मेरा शरीर अच्छा स्वस्थ हो गया है, अब मैं क्या करूँगा? देश जाने से तो भैया लोग स्कूल में भर्ती कर देंगे; किन्तु पढ़ाई-लिखाई बहुत समय से छोड़ दी है, फिर नए सिरे से पढ़ाई-लिखाई करके परीक्षा पास करने की चेष्टा करना, वह मुझे बड़ा ही कष्टदायक लगता है। उस ओर मेरी रुचि भी बिल्कुल नहीं है। इसके बाद, वे लोग यदि नौकरी जुटा दें, उससे भी मेरे कष्ट का अन्त नहीं होगा। लिखाई-पढ़ाई कुछ की नहीं; नौकरी करनी होगी तो खूब सामान्य नौकरी ही करनी होगी। नौकरी होने से तो फिर सब मुझे विवाह करने के लिए बाध्य करेंगे। विवाह करने से अल्प आय में परिवार का भरण-पोषण मेरे लिए कठिन होगा; क्रमशः परिवार वृद्धि होने से उस समय क्या करूँगा, समझ नहीं आता। उसके बाद नौकरी करने से ही दस लोग कुछ-न-कुछ मेरे से आशा करेंगे। मेरी अवस्था के विषय में कोई सोचेगा नहीं; फिर आकांक्षा के अनुसार न मिलने पर सभी विरक्त होंगे। जो लोग मुझे अभी इतना चाहते हैं– यह नौकरी करने के कारण मेरे ऊपर उनका ही असद्भाव उत्पन्न होगा। बहुत समय से मैं निरोग अवस्था में रहा नहीं। यद्यपि अभी मेरा शरीर स्वस्थ है, सामान्य अनियम से फिर रोगग्रस्त हो सकता है। मेरे भीतर की अवस्था जिस प्रकार शोचनीय है, उस अवस्था में विवाह करने से मैं तो बिल्कुल भी आत्मरक्षा नहीं कर पाऊँगा। संयम की ओर शिथिल होने पर तो मेरी क्या स्थिति होगी, वह कह नहीं सकता। तब कदाचार, व्यभिचार में चलने के लिए यह पैसा ही मेरा परम् सहायक होगा। हाथ में पैसा पाकर स्वाधीन रह पाने से मैं तो किस विषम नरक में जा गिरूँगा वह कुछ नहीं जानता। इन सब कारणों से नौकरी और विवाह मेरे लिए नरक का द्वार जैसा लगता है। इन सब विपत्ति से आप मेरी रक्षा कीजिए।

उसके अतिरिक्त और उपाय नहीं है।"

ठाकुर ने कहा– **"तुम्हारे शरीर की अवस्था जिस प्रकार है, उसमें विवाह करना तो बिल्कुल भी ठीक नहीं है। शरीर अच्छा स्वस्थ होने पर तो नौकरी करके भैया लोगों की सेवा कर सकते हो।"** ठाकुर की बात से, विवाह नहीं करना होगा जानकर मुझे सान्त्वना मिली। सोचा– 'अब नौकरी भी नहीं करना होगा– ठाकुर इस प्रकार एक बार कह दें तो मैं निश्चिन्त जाऊँ।' मैं फिर धीरे-धीरे कहने लगा– 'अविवाहित अवस्था में रहकर नौकरी करना मेरे लिए क्या सुरक्षित होगा? मुझे लगता है, साधारण लोगों की अपेक्षा मेरी दुष्प्रवृत्ति की उत्तेजना बहुत अधिक है। केवल वैसा अवसर न मिलने के कारण अब तक मैं ठीक हूँ; साधन-भजन के नियम बन्धन में आबद्ध रहने से ही मैं रक्षा पा रहा हूँ। इससे थोड़ा 'अलग' होने से ही मेरी तो क्या दशा होगी, कोई ठीक नहीं है। नौकरी करने से ही तो विषय में पड़ना होगा; मति-गति सभी बहिर्मुख हो जाएँगी, साधना की सब दृढ़ता नियम प्रणाली कुछ भी नहीं रहेगी; तब प्रलोभन आने पर उससे रक्षा पाने का सामर्थ्य मुझमें नहीं रहेगा; वरन् हाथ में रुपया-पैसा होने से, स्वेच्छाचार में चलने का पथ साफ हो जाएगा। नियम के अनुसार मुझे आप बांधकर न रखें, तो मेरी रक्षा का कोई और उपाय नहीं है। नौकरी करने से अधिकांश समय ही आपके संग से वंचित रहना पड़ेगा। तब भीतर के समस्त कुभाव सिर उठाएँगे। मेरी रक्षा किस प्रकार होगी? इसलिए लगता है, केवल नौकरी करने से ही मेरा यह जीवन नरक-ग्रस्त हो जाएगा। मैं क्या करूँगा, कुछ समझ में नहीं आ रहा है। मेरे भविष्यत् का मंगल-अमंगल किसमें है, आप ही जानते हैं। जिसमें मेरा यथार्थ मंगल होगा, आप मुझे बता दीजिए। मैं वही करूँगा। फिर भी मेरी इच्छा होती है, मैं अविवाहित अवस्था में चिरकाल रहूँ, साधन-भजन करूँ। ऐसा होने से नौकरी के लिए भी मुझसे कोई जिद नहीं करेगा; क्योंकि हमारे घर में वैसे कोई भी अभाव नहीं है। आप यदि कहें, तो फिर मैं आजीवन कुँआरा रहूँगा।"

ठाकुर ने कहा– **केवल कहने से ही क्या कुँआरा रह पाओगे? वैसा क्या होता है? तुम एक काम करो, ब्रह्मचर्य व्रत ले लो। कौमार्य ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत ही है। फिर ब्रह्मचर्य में और भी बहुत कुछ नियम हैं, उसको मानकर चलना होता है। थोड़ा व्रत के बन्धन में रहे बिना केवल ऐसे ही ठीक नहीं रह पाओगे। कुँआरी अवस्था में रहने पर ब्रह्मचर्य ग्रहण करो। थोड़ा व्रत के बन्धन में रहने से ही निरापद् है। तीन दिन तुम इस विषय में अच्छे से चिन्ता करो। व्रत लेने से उसका ठीक तरह पालन करना होगा, नहीं तो अपराध होता है; ये सब अच्छी तरह से चिन्ता करके मुझे बताओ, बाद में ब्रह्मचर्य दिया जाएगा।**

ब्रह्मचर्य ग्रहण के सम्बन्ध में आलोचना; ठाकुर की अनुमति

{बंगला सन् 1297, श्रावण 4, शनिवार। **(19 जुलाई, ई॰ सन् 1890)**}

ब्रह्मचर्य व्रत अवलम्बन करना है कि नहीं, ठाकुर ने मुझसे इस विषय में तीन दिन चिन्ता करके बतलाने के लिए कहा है। वे मुझे यह व्रत देने के लिए इच्छुक हैं, यह उनकी बात से ही स्पष्ट समझ में आता है। तो ठाकुर के आदेशानुसार इसके पक्ष और विपक्ष में बहुत विचार किया। किन्तु कुछ भी स्थिर नहीं कर पाया। एकान्त में योगजीवन और श्रीधर को अलग-अलग बुलाकर उनसे इस विषय में पूछा। श्रीधर तो सुनकर आनन्द से उछल उठे; कहने लगे– "भाई, तुम्हारी दीक्षा के दिन मैंने इसी उद्देश्य से एकान्त मन से प्रार्थना की थी। उसका आज भी मुझे स्पष्ट स्मरण है। तुम वीर्यधारण करो, अविवाहित अवस्था में रहकर साधन-भजन में जीवन अतिवाहित करो, यही आकांक्षा करता हूँ। व्रत का पालन नहीं कर सकोगे तो वे क्या तुम्हारी इच्छा से ही यह व्रत देंगे? गोसाँईजी यदि तुम्हें यह दुर्लभ व्रत दें, तो दुविधा त्यागकर इसी क्षण जाकर ग्रहण करो।" योगजीवन ने कहा– "तुमको तो बहुत सौभाग्यवान् देख रहा हूँ! कोई इच्छा करके ही क्या यह व्रत पा सकता है? गोसाँईजी तुम्हारे ऊपर बहुत ही प्रसन्न हैं, वे तुम पर विशेष रूप से कृपा करेंगे। संसार की नाना प्रकार की ज्वाला यन्त्रणा से सहज में रक्षा पाओगे। व्रत की रक्षा कर पाओगे कि नहीं, वैसा तुम्हारे मन में क्यों आता है? महापुरुष लोग कभी अपात्र को यह व्रत देते नहीं– पात्र समझकर ही कृपा करते हैं। वे यदि दया करके तुमको ब्रह्मचर्य दें तो तुरन्त जाकर ग्रहण करो।"

माता ठाकुरानी को इस विषय में बतलाने से वे अचानक चौंक उठीं; मुझे धमकाकर बोलीं– "यह कैसी बात है? ब्रह्मचर्य कैसे लोगे? ऐसी बुद्धि क्यों हुई? शरीर जितने दिन अस्वस्थ रहेगा, विवाह मत करना। ऐसे ही ब्रह्मचर्य की रक्षा करके चलना। शरीर निरोग होने से रीति अनुसार सब करना। विवाह करने से क्या फिर धर्म होता नहीं? इच्छा करके इन सब कठोरता का क्या प्रयोजन है? व्रत लेना इतना सहज नहीं है, बड़ा कठिन है। अन्त में यदि व्रत भंग कर डालोगे, तो अपराध नहीं होगा? अनर्थक यह मति क्यों हुई?"

माता ठाकुरानी की बात से मैं बड़े संशय में पड़ गया; मन भी मानो बिल्कुल निस्तेज हो गया। मैं बड़ी समस्या में पड़कर सोचने लगा– "ब्रह्मचर्य-व्रत लेकर यदि उसका यथारीति प्रतिपालन न कर सका, तो व्रत-भंग करने के अपराध में पड़ना होगा। उसकी अपेक्षा यह कठोर व्रत ग्रहण न करने से ही अच्छा। किन्तु, इस व्रत का अवलम्बन न करने से विवाह और नौकरी के अनर्थ से निस्तार पाने का भी तो और उपाय नहीं है। इस उभय संकट की अवस्था में मैं क्या करूँगा,

सोचने लगा। मन में विचार आया, व्रत ग्रहण करने से मैं ठाकुर के विशेष शासन के अधीन में ही रहूँगा, व्रत भंग करने से मेरे दयालु ठाकुर ही मुझे दण्ड देंगे। दण्ड भोग करने से भी वह मेरे ठाकुर का ही कार्य है सोचकर कुछ तो शान्ति मिलेगी, विविध दुर्दशा में पड़कर उत्कट भोग की उत्पत्ति होने पर भी उसे उनका ही विधान समझूँगा। यदि नरक में भी गिरा, तो ठाकुर के साथ कम-से-कम भाव का तो थोड़ा सम्बन्ध रहेगा। किन्तु, विवाह करने से यदि अशान्तिपूर्ण घिनौने संसार की सृष्टि होगी, एवं नौकरी करने पर पैसे की गर्मी से यदि दुर्नीति से परिपूर्ण नरक कुण्ड में गिर पड़ूँगा तो उसे सर्वदा अपना ही कुकर्म समझूँगा, उसके साथ ठाकुर का किसी प्रकार का सम्बन्ध है– इसे भाव या कल्पना में भी लाने में समर्थ नहीं होऊँगा। अतः मेरा ऐहिक और पारलौकिक स्वार्थ और सुविधा की ओर देखकर कार्य करने से ब्रह्मचर्य ग्रहण करना ही लगता है मेरे लिए लाभदायक है, किन्तु, फिर जब सोचता हूँ 'अपने इस तुच्छ जीवन के आराम के लिए परम् आराध्य ऋषियों का विशुद्ध आश्रम कलुषित होगा; विशेषकर आजन्म सत्यसंकल्प पुण्यमूर्ति गुरुदेव का परम् पावन नाम मैं कलंकित करूँगा', तब व्रत ग्रहण करने की प्रवृत्ति नहीं होती। अपने भाग्य का भोग मैं भोग लूँगा। शुद्ध स्फटिक जैसे श्रीश्री गुरुदेव के अमल शुभ्र रूप में बिन्दुमात्र कालिमा किसी भी तरह मैं लगा नहीं सकूँगा। अतः स्वयं के इस हीन एवं असार सामर्थ्य पर निर्भर करके मैं कभी ब्रह्मचर्य ग्रहण नहीं करूँगा।

आज मध्याह्न में भोजन के बाद, हरिवंश पाठ करने के लिए ठाकुर के पास गया। ठाकुर ने मुझसे पूछा, **'क्यों? तुमने क्या स्थिर किया? ब्रह्मचर्य लोगे?'** मैंने कहा, 'इस सम्बन्ध में मैं कुछ-भी स्थिर नहीं कर पाऊँगा। आप जैसा कहेंगे, वैसा ही करूँगा। दुर्लभ व्रत अनायास में ग्रहण कर प्रकृति के दोष से अन्त में उसका पूरा-पूरा प्रतिपालन न कर पाने से ऋषियों का पवित्र आश्रम मेरे द्वारा कलुषित होगा। मेरे भीतर की समस्त अवस्था तो आप जानते ही हैं; मुझमें कामभाव अत्यन्त अधिक है। वैसे में प्रलोभन उपस्थित होने पर अपनी शक्ति से आत्मरक्षा कर पाऊँगा– इसका भरोसा नहीं करता। इस प्रकार की अवस्था में पवित्र ब्रह्मचर्य लेने का कैसे साहस करूँगा? व्रत ग्रहण करने की मेरी खूब आकांक्षा है; किन्तु उसकी रक्षा करने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मुझे दुर्बल समझकर यदि आप दया करके अपनी शक्ति से मेरे ब्रह्मचर्य व्रत की पूर्ण रूप से रक्षा करें तो फिर मैं उसे ग्रहण कर सकता हूँ; अन्यथा मुझे प्रयोजन नहीं है।' यह कहकर मैं रो पड़ा। तब ठाकुर एक दृष्टि से कुछ क्षण मेरी ओर स्नेहपूर्वक देखते रहे; फिर मुस्कुराते हुए प्रसन्न होकर बोले– **"अच्छा, वही होगा। कोई अच्छी तिथि देखकर यह व्रत ग्रहण करना। ब्रह्मचर्य ग्रहण न करने तक किसी से कुछ न कहना। अब पढ़ो।"**

मैं तब निश्चिन्त होकर हरिवंश पाठ करने लगा। आज मेरे मन में आनन्द की सीमा नहीं रही। सोचने लगा– 'आज ही ठाकुर ने मेरा समस्त भार अपने ऊपर लेकर मुझे सम्पूर्ण निरापद् कर दिया; आज मेरा उद्धार हुआ।' यह व्रत ग्रहण की बात और किसी से नहीं कहुँगा, मैंने स्थिर किया; किन्तु, माता ठाकुरानी के पूछने पर क्या कहूँगा, चिन्ता हो गई। वे मेरे इस व्रत ग्रहण की विरोधी हैं। कुतु को मेरे हाथ अर्पण करने की आकांक्षा माता ठाकुरानी की बहुत समय से ही है। किसी-किसी के पास यह इच्छा व्यक्त भी की हैं। आकार-इंगित से मुझे भी जैसे नहीं जताई, ऐसा नहीं है। कौन जानता है? लगता है इसी कारण से ही माताजी मेरे ब्रह्मचर्य की इच्छा नहीं रखतीं। जिस दिन इच्छा हो, ठाकुर मुझे ब्रह्मचर्य दे दें; मैं दिन-मुहूर्त कुछ नहीं जानता। जय गुरुदेव! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।

ठाकुर के साथ महापुरुष का दर्शन

{बंगला सन् 1297, श्रावण 5, रविवार। **(20जुलाई, ई० सन् 1890)**}

संध्या के समय ठाकुर के साथ हम लोग दर्शन के लिए बाहर निकले। ठाकुर अन्य दिनों की अपेक्षा आज तेज गति से चलने लगे। माता ठाकुरानी, कुतु, श्रीधर आदि बहुत पीछे रह गए। मैं ठाकुर का कमंडलु हाथ में लेकर साथ-साथ दौड़ा। ठाकुर सीधा कालीहद की ओर चले। सुना है, आज कालीदह में खूब बड़ा मेला है, हजारों की संख्या में लोग वहाँ उपस्थित हुए हैं। रास्ते में भी लोगों की भीड़ कम नहीं है। मेला स्थल के निकट चलते-चलते ठाकुर एकाएक रुक गए, एवं एक व्यक्ति की ओर एक दृष्टि से देखने लगे। यह देखकर मैं विशेषरूप से उसी व्यक्ति की ओर लक्ष्य रखने लगा। उसकी वेशभूषा कुछ भी नहीं है, सामान्य कौपीन के ऊपर मात्र एक पुराना मलिन बहिर्वास लपेटे हैं; श्याम वर्ण के हैं, आकृति दीर्घ एवं बहुत ही शीर्ण है; शरीर में धूल अथवा व्रज की रज लगी है (इससे मानो और भी कुरूप दिख रहा है)। शरीर में माला या तिलक का नामोनिशान नहीं है, माथे पर लम्बे-लम्बे लाल-भूरी रंग की जटाएँ है, देखने में ठीक जैसे रास्ते के मजदूर की तरह हैं; किन्तु, नेत्र की असाधारण ज्योति देखकर मैं विस्मित हो गया। ऐसा लगा जैसे पलक झपकने के साथ-साथ उज्ज्वल नक्षत्र चमक उठता हैं।

ठाकुर को देखकर ही वे प्रायः सौ गज दूर रहकर विश्रृंखल भाव से नृत्य करते-करते अग्रसर होने लगे एवं समान गति से ठाकुर के पास से होकर चले गए। एक बार 'हरे कृष्ण' भी नहीं बोले। ठाकुर फिर पीछे की ओर न देखकर कालीदह की ओर चलने लगे। आश्चर्य यह है मैंने तुरन्त ही पीछे की ओर देखा, वह व्यक्ति दिखाई नहीं दिया।

मेला दर्शन करके हम लोग संध्या के बाद कुंज में लौटे। रात्रि में ठाकुर के निकट बैठा हूँ, ठाकुर ने कहा– **मेले में आज एक महापुरुष का दर्शन हुआ। ऐसे महात्मा लोकालय में प्रायः आते नहीं, पहाड़ पर ही रहते हैं।**

मैंने कहा– मैं तो आपके साथ-साथ ही था; महापुरुष कहाँ देखे? मुझे क्यों नहीं दिखलाए?

ठाकुर– **अविश्वासपूर्ण संसार है! इतने बड़े महात्मा पर कैसे विश्वास कर सकते हैं? हिमालय के ऊपर ही रहते हैं, ऐसे बड़े महापुरुष लोग नीचे नहीं आते। जब आते हैं, तब भी ऐसे ही छद्मवेश में ही तीर्थ आदि भ्रमण करके चले जाते हैं। पहले और एक बार इन्हीं महात्मा के साथ मेरा साक्षात् हुआ था। इस बार क्षणभर में प्रकाश फैलाकर देखते-ही-देखते अन्तर्धान हो गए। अद्‌भुत हैं! यथार्थ महापुरुष हैं!**

मैंने कहा– इतने लोगों के मध्य आप एक व्यक्ति की ओर देख रहे थे, मैंने देखा था। उनका कोई वेश ही नहीं था, ठीक साधारण मजदूर की तरह, वे ही क्या महापुरुष थे?

ठाकुर– **होंगे, वही होंगे। उनका दोनों पैर भूमि से आधा हाथ ऊपर था, रज में वे चरण नहीं रखते। पैर की ओर तो कोई देखता नहीं है न! पैर की ओर दृष्टि रखने से ही कई बार पकड़ में आ जाते हैं।**

मैं– वे तो रुके नहीं, आपके साथ कोई बात भी नहीं किये?

ठाकुर– **जो कुछ कहने का था, सभी कहा। वे लोग क्या हम लोगों की तरह केवल मुख से ही बात करते हैं? आकार-इंगित से, दृष्टि से, कई प्रकार से वे लोग सब कह देते हैं।**

मैं– आकार-इंगित से एवं दृष्टि से भी क्या, बातचीत कर सकते है?

ठाकुर– **तो क्या नहीं कर सकते? खूब कर सकते हैं! ऐसे बहुत-से प्राणी हैं, जो मुख से बोलते नहीं, आकार-इंगित से दृष्टि द्वारा ही समस्त व्यक्त करते हैं।**

ब्रह्मचर्य ग्रहण का दिन स्थिर होना

{बंगला सन् 1297, श्रावण 6, सोमवार। **(21 जुलाई, ई॰ सन् 1890)**}

आज मध्याह्न में ठाकुर ने सदाचार के सम्बन्ध में अनेक उपदेश दिया। ब्राह्मणों का आचार, नित्य-कर्म, संध्या-तर्पणादि कहाँ तक उपकारी है, उसे समझाकर कहा।

इस विषय में मैंने पूछा, वैदिक धर्म का अनुष्ठान करने से आजकल क्या कोई ऋषियों की तरह हो सकता है? अभी भी क्या वशिष्ठ, याज्ञवल्कादि की तरह ब्राह्मण होना संभव है?

ठाकुर ने कहा— **वैदिक धर्म का अनुष्ठान करना आजकल बड़ा कठिन है, सहज नहीं है। यदि कोई वैसा अनुष्ठान कर सकता है, तो होगा क्यों नहीं? बहुत समय लगता है।**

मैं— वैदिक धर्म का अनुष्ठान कर प्राचीन ऋषियों की तरह ब्राह्मण होने की इच्छा होती है। आप दया करके मुझे वैसा ही ब्राह्मण बना दें।

ठाकुर— **वही तो ठीक है। उसके लिए अब वैदिक ब्रह्मचर्य लेना होता है। ब्रह्मचर्य लेकर ठीक उसी नियम के अनुसार चलो, तभी तो ठीक होगा! अच्छा दिन देखकर बताओ, ब्रह्मचर्य दे दूँगा।**

मैं— दिन देखना मैं जानता नहीं।

ठाकुर— **पंचांग लेकर आओ न।**

मैंने एक पंचांग लाकर ठाकुर के हाथ में दे दी।

ठाकुर देखकर बोले— **बारहवाँ श्रावण का दिन अच्छा है। इस दिन एकान्त में आकर ब्रह्मचर्य ग्रहण करना। बल्कि उस दिन मैं तुमको समय पर बुला लूँगा। अभी किसी से कुछ बोलना नहीं।** हरिवंश पाठ के बाद ठाकुर ने कहा— **पाठ का थोड़ा नियम रखना अच्छा है। समय निश्चित करके नियम के अनुसार अच्छी-अच्छी पुस्तकों का पाठ करना।**

मैं— मेरे लिए कौन-कौन सी पुस्तकों का पाठ करना उपयुक्त है, वह तो मैं जानता नहीं। आप ही मुझे बतला दीजिए।

ठाकुर— **गीता का नियमानुसार प्रतिदिन पाठ करना; महाभारत का शान्तिपर्व और श्रीमद्भागवत पढ़ना।**

केलिकदम्ब वृक्ष में राधाकृष्ण नाम

संध्या के समय हम सभी ठाकुर के साथ घूमने के लिए बाहर निकले। श्रीमदनमोहनजी का दर्शन करके कालीदह की ओर गए। प्रबोधानन्द सरस्वती की समाधिवेदी का दर्शन करके यमुना के किनारे जा पहुँचे। वहाँ कालीय सरोवर के ऊपर में एक प्राचीन वृक्ष के नीचे हम लोग बैठ गए। ठाकुर ने कहा— **यह वही केलिकदम्ब का पेड़ है, बहुत प्राचीन है। कहा जाता है कि इस वृक्ष के ऊपर खड़े होकर ही श्रीकृष्ण कालीयदमन के समय यमुना में कूद पड़े**

थे। इस वृक्ष पर अपने-आप 'राधाकृष्ण', 'राम राम', 'राधेश्याम'– ये सब नाम लिखे हुए हैं। तुम लोगों की इच्छा हो तो देख लो।

ठाकुर की यह बात सुनते ही हम लोग वृक्ष के तने के पास जाकर ढूँढ़ने लगे। पेड़ के नीचे में और ऊपर शाखा-प्रशाखा में ये सब नाम स्पष्ट रूप से छाल के शिराओं द्वारा संस्कृत और बंगला अक्षर में लिखे हुए हैं। दो-एक स्थानों पर दो-चार ही नहीं, समूचे वृक्ष पर ऐसे असंख्य नाम देखकर आश्चर्य होने लगा। मेरा चित्त बहुत ही सन्देहपूर्ण है, सहज में कुछ भी विश्वास नहीं करता। मैंने ठाकुर से कहा– "दुष्ट पण्डे लोग पैसा कमाने के लोभ में ये सब नाम छुरी से काट-काटकर तो नहीं लिख दिये?" ठाकुर ने मेरी बात सुनकर कहा– **"तुम जो कहते हो वह भी ठीक है। पण्डे लोग दो-चार स्थानों में छुरी से काटकर वो सब नाम लिखे हैं। किन्तु, वह देखते ही समझ में आ जाता है। स्वाभाविक नाम था इसीलिए तो पण्डे लोग वह लिखे हैं!"** यह कहकर ठाकुर उठकर खड़े हो गए एवं वृक्ष के निकट जाकर चार-पाँच नाम दिखलाकर बोले– **"यह देखो, ये सब पण्डे लोगों की करतूत है। पैसा कमाने के लोभ से पण्डे लोग ये सब स्वाभाविक वस्तु की नकल करने जाकर मूल वस्तु के ऊपर लोगों का सन्देह उत्पन्न कर दिये हैं। यह सब करना बहुत अपराध है। कितने देवी-देवता, ऋषि-मुनि, वैष्णव महापुरुष लोग श्रीवृन्दावन की रज पाने के लिए वृक्ष-लता के रूप में रहते हैं; उन्हें इस प्रकार क्षत-विक्षत करना बड़ा अपराध है। थोड़ा ध्यान से देखो, स्वाभाविक और नकली समझ पाओगे।"**

मैं– यह सब देखने से स्वाभाविक है कि नहीं, कैसे समझेंगे? छुरी से अंकित अक्षर भी तो अधिक दिन तक हरे पेड़ में रहने से स्वाभाविक की तरह ही दिखेगा।

ठाकुर ने थोड़ा हँसकर कहा– **वो हो सकता है। अच्छा, एक काम करो, पेड़ की जो सब मोटी-मोटी छाल सूखकर एक ओर से थोड़ा अलग हो गई हैं, उसके ही भीतर देखो। वहाँ पर तो लिखना संभव नहीं है।**

मैं तुरन्त उसी पुराने वृक्ष की तीन-चार इंच लम्बी थोड़ी निकली हुई दो छाल को खींचकर निकाल लिया। तब ठाकुर– 'ओह! ओह! यह क्या किया?' कहकर सिहर उठे। मैं फिर छाल न निकालकर बड़े ध्यानपूर्वक उसके भीतर की ओर देखने लगा। 'राधाकृष्ण', 'राम राम' नाम स्पष्ट रूप से वृक्ष की प्रत्येक शिरा में लिखा हुआ देखकर अवाक् हो गया। पेड़ के ऊपर शाखा-प्रशाखा में, डाल-डाल में, नीचे की ओर भी ये सब नाम स्पष्ट दिखलाई पड़ा। उन स्थानों में किसी प्रकार

से भी ये सब नाम लिखना संभव नहीं है, समझ गया। देवी-देवता या महापुरुष लोग वृक्ष रूप में हैं, अथवा वृक्ष का आश्रय लेकर अवस्थान कर रहे हैं, इन सब बातों पर मुझे विश्वास करने का अधिकार नहीं है; लेकिन यह वृक्ष जो असाधारण है उस विषय में अब कोई सन्देह नहीं रहा। ठाकुर के साथ सभी लोग वृक्ष की परिक्रमा करके साष्टांग प्रणाम किये। मैं भी प्रणाम किया।

मनोरम वन की शोभा; हिंसा रहित वृन्दावन

कालीदह दर्शन करके हम लोग यमुना के किनारे-किनारे जाकर श्रीवृन्दावन के घने वन में प्रवेश किये। वन की स्वाभाविक शोभा देखकर बड़ा ही आनन्द आया। छोटे-बड़े सभी पेड़ों को अन्य स्थानों के पेड़-पौधों से अलग प्रकार का देखा। ऊँचे-ऊँचे प्राचीन एवं विशाल वृक्ष सर्वत्र ही झुके हुए हैं। उनकी शाखा-प्रशाखा चारों ओर फैलकर क्रमशः भूमि से लगी हुई हैं। देखने से लगता है, मानो श्रीधाम की रज को स्पर्श करने के मनोभाव से ही सभी वृक्ष शाखारूपी बाहु फैलाकर उसे पाने के लिए प्रयास कर रहे हैं। जिन सभी प्राचीन वृक्षों की शाखा-प्रशाखा भूमि से लगी हुई हैं, वे भी मानो रज के स्पर्श की कामना पूर्ण होने से स्थिर समाधि लगा रखी हैं। वृक्षों की इस प्रकार अद्‌भुत शोभा इस जीवन में मैंने और कहीं भी नहीं देखी। श्रीवृन्दावन के छोटे-बड़े सभी वृक्ष-लताओं की शाखा-प्रशाखा यहाँ तक कि, पत्ते आदि भी नीचे झुके हुए हैं। वृक्षों की इस प्रकार अपूर्व सृष्टि और सौन्दर्य एकमात्र इस स्थान पर ही देखा। इन वनों के मध्य जगह-जगह पर अच्छी-अच्छी भजन-कुटियाँ छोड़ी हुई और खाली अवस्था में पड़ी देखी। ठाकुर ने कहा– **एक समय इन सब भजन-कुटियों में कितने ही वैष्णव महात्मा लोग साधन-भजन किये हैं। ओह! ये सब स्थान अब चोर-डकैतों का अड्डा हो गया है।**

ऐसी सुन्दर भजन-कुटियाँ खाली पड़ीं है, देखकर बड़ा दुःख हुआ। ठाकुर से पूछा– 'इन कुटियों में आजकल क्या कोई साधन-भजन नहीं कर सकता? वैष्णव साधु लोग यहाँ क्यों नहीं रहते?'

ठाकुर ने कहा– **रहेंगे कैसे? इन स्थानों में रहने के लिए कंगाल होकर रहना होगा। मिट्टी का एक करवा और फटी कथरी लेकर ही सुरक्षित रहा जा सकता है अन्यथा थोड़ा कुछ भी रहने से चोर-डकैतों के अत्याचार से रक्षा कठिन है।**

हम लोग ठाकुर के पीछे-पीछे वन के भीतर से होकर चलने लगे। देखा, दोनों ओर बहुत-से मोर-मोरनी जगह-जगह घूम रहे हैं, खेल रहे हैं, आनन्द से पंख

फैलाकर नाच रहे हैं। हम लोगों से पाँच-छह हाथ के अन्तर में रहकर भी उनको बिल्कुल डर नहीं है; भागने का प्रयास नहीं, स्फूर्ति का भी विराम नहीं है। देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वन के हिरण भी मनुष्य को मानो मनुष्य ही नहीं समझते; वे निर्भीक होकर बेधड़क मनुष्य के शरीर से रगड़ते हुए चलना-फिरना करते हैं। भगवान के राज्य में इस अपूर्व परिदृश्य को प्रत्यक्ष किये बिना कभी विश्वास नहीं करता। ठाकुर से पूछा– 'वन के हिरण, जंगली मोर, ये लोग भी इतने निर्भीक क्यों हैं?' ठाकुर ने कहा– **श्रीवृन्दावन में तो हिंसा नहीं है; इसीलिए इस स्थान के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी मनुष्य के पास भी इतने निर्भय हैं।**

हम लोग श्रीवृन्दावन के घने वन में पशु-पक्षी, वृक्ष-लता के ये सब भाव और असाधारण अवस्था को देखकर संध्या के बाद कुंज में लौटे। श्रीवृन्दावन के इन स्थानों पर पहुँचने के बाद, लोकालय में लौटने की प्रवृत्ति नहीं होती। लगता है, जीवन-भर इन सब स्थानों में रहने से भी इसकी नित्य-नवीनता दूर नहीं होती।

ब्राह्मण का विशेषत्व; सद्‌गुरुसमाश्रितजन की गति

{बंगला सन् 1297, श्रावण 7, मंगलवार। **(22 जुलाई, ई॰ सन् 1890)**}

भोजन करके हरिवंश पाठ करने के बाद ठाकुर से पूछा– जाति से जो लोग ब्राह्मण हैं, उन लोगों की क्या कोई विशेष सुकृति थी?

ठाकुर– **अवश्य थी। कुछ विशेषता थी ही।**

मैं– यदि फिर से संसार में आना होता है, तो किस प्रकार चलने से वर्तमान अवस्था से और नीचे न जाना पड़े? ब्राह्मण लोग किस प्रकार चलने से अगले जन्म में भी ब्राह्मण ही होते हैं?

ठाकुर– **ब्रह्मचर्य ग्रहण करके ठीक उसी प्रकार चलो। ब्रह्मचर्य की ठीक नियमानुसार रक्षा करके चल पाने से फिर कभी निम्न अवस्था में जाना नहीं होता। ब्राह्मण के संध्या, गायत्री, नित्य क्रियादि का अनुष्ठान करने से अगले जन्म में भी वह ब्राह्मण ही होता है।**

मैं– हम लोगों की यह साधना जिन्होंने प्राप्त की है, उन लोगों को भी क्या फिर जन्म लेना होगा?

यह प्रश्न सुनकर माता ठाकुरानी ने प्रसंगतः कहा– श्यामाकान्त पण्डितजी ने एक दिन देखा था, साधना-प्राप्त सभी लोगों को तीन श्रेणी में रखा गया है; पण्डितजी प्रथम श्रेणी में हैं; द्वितीय श्रेणी में बहुत अधिक लोग नहीं है; तृतीय श्रेणी में अनेक लोग हैं। जो लोग प्रथम श्रेणी में हैं, उन्हें अब संसार में पुनः नहीं आना पड़ेगा, यही उनका अन्तिम जन्म है। जो लोग द्वितीय श्रेणी में हैं, उन लोगों को

और एक बार आना होगा। किन्तु, जो लोग तृतीय श्रेणी में हैं, उनको और भी दो बार आना पड़ सकता है।

मैं– अच्छा, जो लोग सद्‌गुरु प्राप्त करके देहत्याग कर फिर से जब जन्म लेंगे, तब वे लोग क्या फिर से सद्‌गुरु की कृपा प्राप्त करेंगे?

ठाकुर– **इसमें और कोई भी संशय नहीं है, अवश्य ही सद्‌गुरु कृपा प्राप्त करेंगे।**

मैं– सद्‌गुरु कृपा यदि प्राप्त होती ही है, तो फिर से संसार में आने से आपत्ति क्या है? कठिनाई भी क्या है?

ठाकुर– **बेटा, संसार की माया से बड़ा भय है, संसार में बड़ी जलन है।**

मैं– सद्‌गुरु का आश्रय प्राप्त होने से एक जन्म में ही क्या मुक्त हुआ जा सकता है?

ठाकुर– **निःसन्देह गुरु के आदेश का पालन करने से और गुरु के प्रति निष्ठा उत्पन्न होने से एक जन्म में ही मुक्त हो जाते हैं।**

मैं– गुरु आदेश का प्रतिपालन प्रयास करने से तो बहुत कुछ हो सकता है; किन्तु निःसन्देह होना तो प्रयास के ऊपर निर्भर नहीं है। मन में अपने-आप जो संशय आता है, उसे किस प्रकार रोकूँगा?

ठाकुर– **गुरु जो करने को बोलते हैं वही करने से ही हो गया। सन्देह होता है होने दो, काम ठीक तरह से कर सकने से ही होगा।**

मैं– जो लोग इस बार साधन पाए हैं, यत्नपूर्वक साधना करने से उन लोगों को क्या फिर संसार में नहीं आना होगा? इस एक जन्म में ही उन लोगों का सब हो जाएगा?

ठाकुर– **तीन जन्म के पूर्व मुक्ति प्राप्त करना अधिकतर देखा नहीं जाता। तीन जन्म प्रायः लगता है।**

मैं– तब तो हम सबको ही तीन जन्म लेना होगा?

ठाकुर– **होगा, और नहीं भी होगा।**

मैं– जो लोग इस बार सद्‌गुरु कृपा प्राप्त किये हैं, पहले भी क्या उन्हें सद्‌गुरु का आश्रय मिला था?

ठाकुर– **किसी-किसी को पहले भी सद्‌गुरु का आश्रय मिला था; और अनेक लोगों को इस बार ही मिला है।**

मैं– मुझे क्या पहले भी सद्‌गुरु का आश्रय मिला था?

ठाकुर ने मस्तक हिलाकर संकेत से मेरे इस प्रश्न का उत्तर दिया। मैंने फिर पूछा– 'सद्‌गुरु आश्रय लेकर जो लोग तीन जन्म में मुक्त होंगे, उन लोगों के मुक्त न होने तक क्या सद्‌गुरु को भी संसार में आना होगा? जन्म लेकर सद्‌गुरु क्या शिष्य के साथ रहते हैं?

ठाकुर– **सद्‌गुरु साथ-साथ ही रहते हैं। जन्म न लेकर भी कितने प्रकार से, कितने उपाय से शिष्य पर कृपा करते हैं। वृक्ष-लता, मनुष्य आदि के भीतर से होकर, विभिन्न विषयों के भीतर से होकर, सद्‌गुरु कृपा करते हैं। वे लोग क्या और सब समय आते हैं? चार कल्प के बाद नानक इस बार आए थे।**

मैं– तब तो बड़ा कष्ट है! प्रत्यक्ष रूप से गुरु न मिले वह तो बड़ा ही कठिन है।

ठाकुर– **कष्ट तो है। तो भी जो गुरुवाक्य के अनुसार चलता है, उनको तो फिर कोई कष्ट नहीं है! अपने मतलब से, मनमाने आचरण से चलने पर ही भटकना होता है। जब तक गुरुवाक्य के अनुसार न चलें, उन पर निष्ठा उत्पन्न न हो, तब तक बारम्बार जन्म लेना ही होगा। सद्‌गुरु के साथ कोई मायिक सम्बन्ध तो नहीं है, शिष्य के कल्याण के लिए ही वे संसार में आते हैं, शिष्य का उपकार ही उनके आने का उद्देश्य है। इसलिए उनके आदेशानुसार न चलने से कैसे होगा? ठीक गुरुवाक्य का सहारा लेकर चलना होता है, तब फिर कोई उत्पात नहीं रहता।**

मैं– कई बार गुरु क्या शिष्य की विभिन्न प्रकार से परीक्षा लेते हैं? ऐसे में तो उनका यथार्थ आदेश कैसे समझा जाएगा?

ठाकुर– **जो सद्‌गुरु हैं वे कभी भी शिष्य की परीक्षा नहीं लेते। वैसा क्यों करेंगे? जिससे शिष्य का यथार्थ कल्याण होता है, सद्‌गुरु वही कह देते हैं। फिर भी जो ये वाक्य अग्राह्य कर अपने मन के अनुसार चलते हैं, गुरु उनको ही विभिन्न परिस्थितियों में गिराकर ठीक कर लेते हैं।**

पितृ-ऋणादि के सम्बन्ध में उपदेश

विक्रमपुर निवासी श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय एक शिक्षक थे। गृहस्थी के लिए जितनी आवश्यकता होती है उसका निर्वाह उनकी नौकरी के द्वारा ही होता था। कुछ दिन पहले पिता के देहत्याग का संवाद पाकर सतीश उदासीन की तरह

तुरन्त ही घर से निकल पड़े; घर पर विधवा माता के कष्ट की ओर एक बार भी देखा नहीं। वे श्रीवृन्दावन की पैदल यात्रा करके, वहाँ अब ठाकुर के साथ रहते हैं। घर जाकर पिता का श्राद्ध एवं शोक से व्याकुल रोगग्रस्त माता की सेवा करने के लिए ठाकुर ने सतीश से कई बार कहा, किन्तु सतीश किसी तरह से भी ठाकुर के इस आदेश का प्रतिपालन न कर सके और कहते थे, वैराग्य धारण करके ही शेष जीवन अतिवाहित करेंगे। ठाकुर जब सतीश को घर जाकर पिता का श्राद्ध करने और संसार-धर्म का पालन करने के लिए कहते हैं तो तुरन्त उसका माथा गरम हो जाता है, तब वह ठाकुर के साथ तर्क-वितर्क करके आपत्ति करने लगते हैं। ठाकुर आज फिर से सतीश को लक्ष्य करके खूब तेज के साथ कहने लगे– **सतीश के वास्तविक कल्याण के लिए ही बारम्बार उसको कहता हूँ; अब नहीं सुनता है तो क्या किया जाए? पितृ-ऋण का शोध न करने से उसका कुछ भी नहीं होगा; घर जाकर मातृ-सेवा न करने से यह जीवन ही व्यर्थ हो जाएगा। केवल इस जन्म में क्यों, इस अपराध के कारण कितना जन्म व्यर्थ हो जाएगा, कोई ठीक नहीं है। शुकदेव आदि की तरह ही तीव्र वैराग्य होने से, फिर किसी प्रकार से अटकाया नहीं जा सकता, ठीक है; किन्तु वैसा हुए बिना तो चलेगा नहीं! यथार्थ वैराग्य उत्पन्न न होने तक प्रणाली के अनुसार चलना होगा। जिसका जो कर्त्तव्य है, उसकी उपेक्षा करके पलायन करना सुयोग नहीं है। हरिमोहन को भी संसार में रहने के लिए बहुत कहा हूँ– अब ये लोग समझते नहीं; किन्तु मैं निश्चित रूप से कहता हूँ अभी ठीक तरह से न चलने पर, इसके बाद सूद के साथ पूरा-पूरा भुगतान होगा। बात नहीं सुनने से और क्या किया जाए? बाद में अच्छी तरह से समझेंगे।**

ठाकुर कुछ देर तक उन लोगों से इस प्रकार कहकर चुप हो गए। तब मैंने धीरे-धीरे उनसे पूछा– देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण से किस प्रकार मुक्त होते हैं?

ठाकुर ने कहा– **पुत्रोत्पादन द्वारा पितृ-ऋण से; याग-यज्ञ, पूजा, तीर्थ-दर्शन द्वारा देव-ऋण से और ऋषि प्रणीत शास्त्र-ग्रन्थ के अध्ययन आदि के द्वारा ऋषि-ऋण से मुक्त हुआ जाता है; और कोई उपाय नहीं है।**

मैं– श्राद्ध-तर्पणादि करने से क्या पितृ-ऋण से मुक्त नहीं हो सकते? सभी को क्या इसके लिए पुत्रोत्पादन करना होगा?

ठाकुर– **केवल तर्पणादि करने से पितृ-ऋण से मुक्त नहीं हुआ जा**

सकता। ऋण से मुक्त होने का वही उपाय है। फिर जो लोग असमर्थ हैं, उनके लिए अलग प्रकार की व्यवस्था है।

मैं– किस प्रकार का असमर्थ?

ठाकुर– **जैसे कि, किसी का शरीर खूब अस्वस्थ है; शारीरिक अस्वस्थता के रहते पुत्रोत्पादन में असमर्थ है। अथवा अन्य किसी विशेष असुविधा या असमर्थता से वह कार्य सम्पन्न नहीं हुआ, इस प्रकार भी होते रहता है। कई लोगों के विवाह करने के बाद भी पुत्र उत्पन्न नहीं होते। इन सब कारणों से निःसन्तान होने से ऋणदायी नहीं होना पड़ता।**

भोजन के बाद इस प्रकार प्रश्नोत्तर में हम लोगों का बहुत समय बीत गया। संध्या के समय ठाकुर के साथ हम लोग वस्त्र-हरण घाट गए। यमुना की ओर दृष्टि करके ठाकुर बहुत देर तक घाट पर बैठे रहे। माता ठाकुरानी, कुतु, भारत पण्डितजी*, सतीश, श्रीधर और मैं स्थिर बैठकर नाम-जप करने लगे। बाद में सतीश के साथ बात-बात में मेरा झगड़ा हो गया। श्रीधर ने उसमें योग दिया। संध्या के बाद हम लोग कुंज में आ गए।

---

*(विक्रमपुर निवासी, गुरुनिष्ठ साधन-परायण गुरुभाई, ढाका नार्मल स्कूल के भूतपूर्व शिक्षक।)

बारदी के मार्ग में श्रीधर का काण्ड

{बंगला सन् 1297, श्रावण 10, शुक्रवार। **(25 जुलाई, सन् 1890 ई॰)**}

संध्या के समय सब गुरुभाई दाऊजी के बरामदे में बैठकर बातचीत करने लगे। बारदी के ब्रह्मचारीजी के अद्भुत योगेश्वर्य और दया की चर्चा होने लगी। श्रीधर की विपिन बाबू के साथ एक बार बारदी जाते समय जो घटना हुई थी, गुरुभाइयों ने उसे सुनने का आग्रह किया। श्रीधर ने जो कहा उसे सुनकर आश्चर्यचकित रह गया। निम्नलिखित घटना को श्रीधर के कथनानुसार लिखकर रख लिया–

हमारे गुरुभाई श्री विपिनबिहारी राय क्षय (टी॰बी॰) रोग से पीड़ित होकर प्राण रक्षा के लिए भयभीत हो गए। ढाका में आकर गुरुदेव की सम्मति से श्रीधर आदि ने कुछ गुरुभाइयों को साथ लेकर बारदी की यात्रा की। श्रीधर उपदेश देने लगा– "खाली हाथ साधु-दर्शन नहीं करते।" उसके अनुसार ब्रह्मचारीजी की सेवा के लिए नाना प्रकार के साक-सब्जी, फल-फलादि साथ में लेना हुआ। विपिन बाबू ने ब्रह्मचारीजी को अपने हाथ से देने की आकांक्षा से बाजार का सबसे अच्छा चार

फज्ली आम अधिक मूल्य में क्रय करके उसे यत्नपूर्वक बाँधकर रख लिया। श्रीधर साथ में जाएँगे; उनकी मति-गति की स्थिरता नहीं है; रास्ते में अवसर पाकर कहीं कुछ आम खा न लें, सोचकर विपिन बाबू ने श्रीधर आदि के लिए भी अलग से एक टोकरी आम क्रय करके ले लिया। नौका में सामान आदि रखते समय श्रीधर फज्ली आम को बड़े ध्यानपूर्वक देखने लगे। यह देखकर विपिन बाबू ने श्रीधर से कहा– "भाई, दुहाई है तुम्हारी! बड़ी आशा करके ये चार आम महापुरुष के लिए ले जा रहा हूँ। इसमें हाथ मत देना। तुम लोगों के लिए भी एक टोकरी अच्छे आम अलग से लिया हूँ। उसे ही खाना।" श्रीधर ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा– "तुम क्या बोलते हो, हँ? ऐसी बात तुम मुझसे कहते हो? ब्रह्मचारीजी के लिए बड़े आग्रह से कोई वस्तु ले जा रहे हो, उसे मैं खाऊँगा? ऐसी नीच कल्पना तुम्हारे मन में आई कैसे? तुम तो बड़े भयानक लगते हो!" विपिन बाबू ने लज्जित होकर श्रीधर से क्षमा माँगी। कुछ दूर जाकर नौका एक बाजार के पास पहुँची। सभी गुरुभाई वहाँ पर उतरे। श्रीधर को भी साथ में ले जाने के लिए विपिन बाबू ने दो-तीन बार प्रयास किया; भजन-मग्न श्रीधर ने मौन रहते हुए हाथ हिलाकर समझा दिया– "तुम लोग जाओ। मैं नहीं जाऊँगा।" नौका से उतरकर भी विपिन बाबू ने श्रीधर से एक बार फिर कहा– "भाई, आम खाने की इच्छा हो, तो टोकरी में अच्छे-अच्छे आम हैं, लेकर खा लेना।" श्रीधर गम्भीर रहे। विपिन बाबू चलते-चलते बार-बार पीछे की ओर देखते हुए, कुछ दूर जाकर बाजार में प्रवेश किये। उनके अदृश्य होने पर, श्रीधर व्यग्रतापूर्वक आसन से उठकर चारों ओर चंचल दृष्टि से देखने लगे। इसी समय पाँच-सात वर्ष के चार उलंग बालक एक भिखारिन के साथ नौका के समीप आए। श्रीधर ने आग्रहपूर्वक उनसे पूछा– "क्या चाहिए?" दुःखी बालकों ने कहा– "बाबा, कुछ खाने को दोगे?" श्रीधर तुरन्त उठकर वही बड़े-बड़े चारों फज्ली आम लेकर आए और उन भिखारी बालकों के हाथ में देते हुए धमकाकर बोले– "जाओ, शीघ्र चले जाओ; नहीं तो फिर आम छीन लूँगा।" श्रीधर की धमकी से डरकर बालकों ने दौड़ लगा दी। तब श्रीधर पुनः आसन पर स्थिर होकर बैठ गए एवं बड़े उत्साह के साथ भावमग्न होकर भजन गाने लगे। संयोगवश, गुरुभाइयों के साथ विपिन बाबू जिस पथ से आ रहे थे, उसी पथ से ही वे बालक हाथ में आम लेकर जा रहे थे। बालकों के हाथ में बड़े-बड़े फज्ली आम देखकर विपिन बाबू की आँखें खुली रह गईं। वे जीभ निकालकर सिर पर हाथ रखते हुए गुरुभाइयों से बोले– "देख लो! पगले का काण्ड देख लो!! पगला सर्वनाश कर दिया। इतना समझाकर जो मना किया था, पगले ने वही किया– वही चारों आम दे दिया।" विपिन बाबू ने तब फिर आठ आना पैसा देकर, बालकों के पास से आम पुनः ले लिया, फिर बड़ा क्रोध प्रकाश करते हुए नौका पर पहुँचे। वे श्रीधर को खूब

गाली देने लगे। तब श्रीधर ने और-भी उच्च स्वर में गाना आरम्भ कर दिया। कुछ देर बाद श्रीधर ने भजन समाप्त करके, विपिन बाबू के कुछ कहने के पहले ही उनको खूब धमकाते हुए कहा– "क्यों, ये कैसी बात है? भजन के समय बड़ी गड़बड़ कर रहे थे? तुम्हें अक्ल नहीं है?" विपिन बाबू, धमक खाकर थोड़ा दबने के बाद भी, गुरुभाइयों का बल पाकर बोले– "तुम्हें तो खूब अक्ल है, तुम किस मतलब से मेरा चारों आम अन्य लोग को दे दिये?" श्रीधर ने कहा– "दे दिया तो क्या हुआ? फिर से मिल गया तो? इस हाथ से उस हाथ में जाने से क्या दोष होता है?" विपिन बाबू ने कहा– ब्रह्मचारीजी के नाम से आम रखा था, तुमने किसके हुक्म से दूसरे को दिया?" श्रीधर ने कहा– "ब्रह्मचारीजी के हुक्म से ही दिया हूँ। जाओ, उनसे जाकर पूछो? इस वाक्-कलह के बाद दोनों ही चुपचाप बैठे रहे। इधर संध्या हो गई। प्रदीप जलाने के लिए बत्ती नहीं थी। 'बत्ती बनाने के लिए थोड़ा-सा फटा कपड़ा कहाँ मिलेगा'– सोचकर सभी व्यस्त हो गए। श्रीधर के झोले में फटे-पुराने कपड़ों के बहुत-से टुकड़े हैं, सभी जानते हैं। उसे श्रीधर सहज में निकालेंगे नहीं, फटे-पुराने कपड़ों की झोली में सिर रखकर वे शयन करते हैं। विपिन बाबू ने अन्धकार में सुयोग समझकर गुरुभाइयों के संकेत से बत्ती बनाने के लिए श्रीधर के झोले से जैसे ही कपड़े का एक टुकड़ा निकाला, तुरन्त श्रीधर भयंकर चीत्कार करके विपिन बाबू के पास जाकर, कुछ कहे बिना सीधा उनकी जाँघ को दाँत से पकड़कर काटने लगे। विपिन बाबू 'बाबा रे, माँ रे, खून कर दिया रे' कहते हुए चीत्कार करने लगे। गुरुभाई लोग आकर भी जब उन्हें खींच-तान करके नहीं छुड़ा पाए तब श्रीधर की पीठ पर घूँसा मारने लगे। इस पर भी श्रीधर ने ध्यान नहीं दिया। तब वे लोग नौका की पटिया निकालकर श्रीधर की पीठ पर धड़ाधड़ मारने लगे। श्रीधर सिर हिलाते हुए और भी जोर से काटने लगा। जाँघ लहू-लुहान हो गई। तब कोई उपाय न देखकर माझियों ने कहा– "आप लोग भी उसको दाँत से काटो, वह छोड़ देगा।" माझियों की बात मानकर दो-तीन लोगों ने श्रीधर की पीठ में काटा। तब श्रीधर काटना छोड़कर अचानक उछल उठे; 'जय निताई' 'जय निताई' कहकर दो-एक बार उछलकर, चलती नौका से नदी में कूद पड़े। श्रीधर तैरना नहीं जानते, यह सभी जानते थे। इसलिए जो जिस अवस्था में थे तुरन्त नदी में कूद पड़े। गोते खा-खाकर सब लोग श्रीधर को खींच-तानकर नौका पर चढ़ाए। इस प्रकार सारी रात उद्वेग में व्यतीत हुई। क्रमशः नौका बारदी के बाजार में पहुँची।

प्रातःकाल सभी फल-फूलादि सीधा की सामग्री हाथ में लेकर, ब्रह्मचारीजी के दर्शन के लिए चल पड़े। श्रीधर के पास कुछ भी नहीं है; ब्रह्मचारीजी के लिए क्या लेकर जाएँगे, यह सोचकर श्रीधर दुःखी मन से चुपचाप बैठे रहे। अचानक

नौका से उछलते हुए नीचे उतरकर नहर से दल घास, करेमु शाक, लता-पत्ता एकत्र करके नहर के किनारे रखने लगे। ढेर हो जाने पर, मात्र लंगोटी पहनकर, अपने बहिर्वास द्वारा उसे बाँध लिए। इसके बाद घास के उस विशाल बोझा को अपने सिर पर उठाकर ब्रह्मचारीजी के आश्रम की ओर गहरी श्वास लेकर दौड़ पड़े। इधर विपिन बाबू आदि को आश्रम पहुँचने पर ब्रह्मचारीजी के दर्शन नहीं मिले। थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी। यथा समय ब्रह्मचारीजी ने सबको बुलाया। ब्रह्मचारीजी को प्रणाम करके उन लोगों के बैठते ही ब्रह्मचारीजी ने पूछा– "अरे, वह श्रीधर कहाँ है? तुम लोगों के साथ नहीं आया?" गुरुभाइयों ने कहा– "वह नौका में ही बैठा है।" ब्रह्मचारीजी ने कहा– "वह आया क्यों नहीं? उसको क्या तुम लोगों ने मारा है?" विपिन बाबू ने कहा– "महाराज, उसको लेकर बड़ा क्लेश हुआ। उसने रास्तेभर बड़ा उत्पात किया। मेरी जाँघ में काटकर घाव कर दिया है।" ब्रह्मचारीजी ने आम देखकर कहा– "तुम लोगों को यह आम फिर कहाँ से मिला?" इसी समय माथा में बोझा लेकर श्रीधर हाँपते-हाँपते आश्रम में आ पहुँचा। श्रीधर को देखते ही ब्रह्मचारीजी आसन से उठकर थोड़ा आगे बढ़े; श्रीधर तुरन्त ही घास का बोझा ब्रह्मचारीजी के सामने धम् से पटक दिया, 'यह खाओ', 'यह खाओ' कहते हुए भूमि पर गिरकर उसने साष्टांग प्रणाम किया। ब्रह्मचारीजी थोड़ा हँसकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक घास की प्रशंसा करने लगे। श्रीधर का काण्ड देखकर सभी हँस पड़े। एकजन ने श्रीधर से पूछा– "ये सब क्या ब्रह्मचारीजी को खाने के लिए दिया है?" श्रीधर ने सिर ऊँचा कर बड़े साहस के साथ कहा– "शास्त्र जानते हो? 'गोब्राह्मणहितायच'।" उन्होंने पूछा– "इसका अर्थ क्या हुआ?" श्रीधर ने कहा– "अरे पहले गाय का; फिर ब्राह्मण लोगों का; उसके बाद तुम्हारा, हमारा, जगत् का। 'नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहितायच। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।।' इसलिए पहले गाय को जो प्रिय है वही तो ब्राह्मण लोगों को भी सबसे प्रिय है।" श्रीधर की बात सुनकर सभी खूब हँसने लगे। विपिन बाबू ने तब अपने रोग का परिचय देकर उसके निवारण के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मचारीजी ने कहा– "श्रीधर ने तेरे जाँघ में काटा है न? खून निकला तो?" विपिन बाबू ने कहा– "जी हाँ, बूरी तरह से काट खाया है।" ब्रह्मचारीजी ने कहा– "उससे ही तेरा रोग दूर हो जाएगा। श्रीधर ने क्यों काटा, उससे एक बार पूछा नहीं?" तब श्रीधर सबके पूछने पर बड़े उत्साह के साथ कहने लगे– "अरे भाई, तुम लोग तो सब बाजार चले गए। मैं अचानक कीर्तन की ध्वनि सुनकर चौंक उठा। नौका से उतरकर चारों ओर देखा, संकीर्तनादि कुछ भी नहीं है। ब्रह्मचारीजी चार ऋषि बालकों को लेकर नौका के निकट पहुँचे। कहने लगे– 'अरे, मेरे लिए जो चार आम रखे हैं, उसे लाकर इन लोगों को दे दे।' मैंने तुरन्त चारों आम दे दिया। सच है या झूठ,

ब्रह्मचारीजी से पूछ लो। इसके लिए तो तुम लोग मुझे कितनी गाली दिये हो! तुम लोगों की बातों पर कान न देकर मैं नाम-जप करने लगा। देखा, आकाश मार्ग से एक संकीर्तन दल आ रहा है! ब्रह्मचारीजी संकीर्तन दल से आगे आकर बोले– 'अरे, उसकी जाँघ में काटकर रक्त निकाल दे, उससे उसका रोग दूर हो जाएगा।' मैंने सोचा अकारण कैसे काटूँ? इसी समय विपिन बाबू की ओर देखा, वे मेरे झोले में से एक फटा कपड़ा खींचकर बाहर निकाल रहे हैं। तुरन्त मेरा सिर गरम हो गया। नेपाल, कामाख्या, चन्द्रनाथ और पश्चिम के विभिन्न स्थानों में घूम-घूमकर जिन सब महात्मा-महापुरुषों का दर्शन किया, प्रत्येक का व्यवहृत कुछ-न-कुछ बहिर्वास, लंगोटी, आसन आदि का टुकड़ा संग्रह करके अपने झोले में भरकर रखा हूँ; वह सब मेरे हृदय का रक्त है। मैला फटा-पुराना चिथड़ा समझकर जैसे ही विपिन बाबू एक टुकड़ा बाहर निकालने लगे, मैंने तुरन्त उनकी जाँघ को काट खाया। फिर तुम लोग घूँसा मारो या लाठी मारो, रक्त निकाले बिना छोड़ूँगा नहीं। रक्त निकलते ही मैं उछल पड़ा। सामने देखा, संकीर्तन का कोलाहल। महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु एवं अद्वैत प्रभु नृत्य कर रहे हैं और गोसाँईजी संकीर्तन के आगे-आगे 'हरिबोल' 'हरिबोल' बोलते हुए जा रहे हैं। मैं तुरन्त संकीर्तन में कूद पड़ा। बाद में देखा डूब रहा हूँ। तब तुम लोगों ने मुझे खींच-तानकर नौका में चढ़ाया।" श्रीधर के मुख से यह कहानी सुनकर सभी विस्मय से अवाक् हो गए। धन्य है श्रीधर!

ब्रह्मचर्य दीक्षा

{बंगला सन् 1297, श्रावण 12, रविवार। **(27 जुलाई, सन् 1890 ई॰)**}

आज ब्रह्मकुण्ड में स्नान का महायोग है। सुना है, हजारों की संख्या में लोग स्नान के लिए पहुँचे हुए हैं। हमारे कुंज के भी सभी लोग आज वहाँ गए हैं। मैं अन्य दिनों की तरह, प्रातः शौच के बाद यमुना में स्नान करने के लिए जाने लगा, ठाकुर ने मुझे बुलाकर कहा– **तुम कशीघाट पर जाकर मुण्डन करवाकर, ब्रह्मकुण्ड में स्नान करके शीघ्र चले आओ। एक चोटी रखना।**

मैं गुरुदेव के कहे अनुसार यमुना के किनारे केशीघाट में पहुँचा। एक शिखा रखकर मुण्डन करा लिया। ब्रह्मकुण्ड जाकर देखा, असंख्य लोगों के समागम से ब्रह्मकुण्ड आज परिपूर्ण है। जल भाँग के घोल की तरह, बहुत ही मटमैला होने पर भी स्नानार्थियों का भक्ति भाव देखकर मेरी भी स्नान करने की प्रबल इच्छा जागी। जल में उतरकर स्नान के बाद तर्पण करके, शीघ्र ही कुंज में आ गया। गुरुदेव के श्रीचरणों में प्रणाम करके अपने आसन पर जाकर बैठ गया। इसी समय ठाकुर

ने मुझको बुलाकर कहा– **"कुलदा मेरे आसन-घर पर आओ। अभी तुमको ब्रह्मचर्य दूँगा। बैठने के लिए एक आसन ले आना।"** मैं आसन लेकर ठाकुर के कमरे में प्रवेश करके देखा, ठाकुर पहले से ही अपने आसन पर आकर बैठे हैं। मुझसे कहा– **"पूर्व की ओर मुख करके मेरे सामने बैठो।"** मैं कम्बल का आसन बिछाकर ठाकुर के सामने स्थिर होकर बैठ गया। तब मुझे 'सिसककर' रोना आ गया। सोचने लगा, गुरुदेव आज मुझे ऋषि-मुनियों के पवित्र ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा दे रहे हैं। ठाकुर कितने दयालु हैं! ठाकुर कुछ क्षण स्थिर रहकर, धीरे-धीरे मुझसे कहने लगे– **यह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत बारह वर्ष, तीन वर्ष या एक वर्ष के लिए दिया जाता है। अभी तुम्हें एक वर्ष के लिए ही व्रत दे रहा हूँ। यदि नियमपूर्वक ठीक तरह से यह एक वर्ष चल सको, तब फिर से दिया जाएगा। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में निष्ठा ही मूल है। निष्ठा खूब होनी चाहिए। अपनी निष्ठा का किसी भी अवस्था में त्याग नहीं करना। ये सब नियम कह देता हूँ, निष्ठा के साथ उस नियम का पालन करके चलना।**

1– प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर साधना करना। फिर प्रातःक्रिया समापन कर शुचि-शुद्ध होकर आसन पर बैठोगे। गायत्री-जप करोगे। उसके बाद गीता का कम-से-कम एक अध्याय पाठ करोगे। स्नान के बाद गायत्री-जप करके तर्पणादि करना।

2– स्वपाक आहार करोगे, अथवा अच्छे ब्राह्मण के द्वारा बना अन्न भी आहार कर सकते हो। आहार में किसी प्रकार का अनाचार न हो। आहार का एक नियम रखोगे। परिमित आहार करोगे, बहुत अधिक या कम न हो। जिससे कामभाव उत्तेजित होता है ऐसी वस्तु नहीं खाना। अधिक तीखा, खट्टा और मीठा त्याग करोगे। मधु और घी से उत्तेजना की वृद्धि होती है; ये सब वस्तुएँ भी अधिक नहीं खाओगे। आहार के सम्बन्ध में खूब सावधान रहोगे। आहार अच्छी शुद्धता के साथ करोगे।

3– आहार के बाद कुछ देर बैठकर विश्राम करोगे। फिर भागवत, महाभारत, रामायण आदि का कुछ समय पाठ करोगे। पाठ के बाद निर्जन में बैठकर ध्यान करोगे। संध्या के समय इच्छा होने से थोड़ा टहल सकते हो।

4– संध्या के समय गायत्री-जप करोगे। फिर साधनादि जैसा करते हो वैसा ही करोगे। बहुत भूख लगने पर थोड़ा कुछ जलपान करोगे। दोनों समय भात नहीं खाना।

5– अत्यन्त सामान्य वस्त्र पहनना। सामान्य शैय्या पर शयन करोगे। ये दोनों अपने लिए निर्दिष्ट रखना। दिन के समय निद्रा त्याग करोगे। समय-समय पर साधु-संग करना, साधुओं के उपदेश को श्रद्धा के साथ सुनना। अपनी साधना के प्रति विशेष रूप से निष्ठा रखना।

6– किसी की निन्दा नहीं करना; किसी की निन्दा नहीं सुनना; जिस स्थान पर निन्दा होती है, उस स्थान का विषवत् त्याग करोगे।

7– किसी प्रकार का साम्प्रदायिक भाव नहीं रखना। जो जिस भाव से साधना करते हैं, उनको उसी भाव की साधना करने का उत्साह देना।

8– किसी के मन में कष्ट नहीं देना; सबको ही सन्तुष्ट रखने का प्रयास करना। तुम्हारे द्वारा अन्य लोगों की सेवा जहाँ तक संभव हो, करना। मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-लतादि की यथासाध्य सेवा करना। स्वयं को अन्य लोगों के समक्ष छोटा समझना। सबको मर्यादा देना। प्रत्येक कार्य ही विचारपूर्वक करना। प्रत्येक कार्य में सर्वदा विचार करके चलने से कोई विघ्न नहीं होता।

9– सर्वदा सत्य बात कहना; सत्य व्यवहार करना। असत्य कल्पना मन में भी नहीं आने देना। बातें कम करना।

10– युवती स्त्रियों को स्पर्श नहीं करना। देव-दर्शन में, भीड़-भाड़ में, रास्ते में, घाट में या अनजाने में स्पर्श होना वह स्पर्श के अन्तर्गत गण्य नहीं होगा। अत्यन्त गुप्त रूप से अपना काम करते जाना।

11– सर्वदा खूब पवित्र अवस्था में रहना। पवित्र स्थान में, पवित्र आसन पर बैठना।

ये समस्त नियम का पालन कर सकने पर आगामी वर्ष और भी नियम बता दिया जाएगा।

इन सब नियमों का उपदेश देकर ठाकुर मेरी ओर देखते हुए खूब प्राणायाम करने लगे। मुझे भी साथ-साथ प्राणायाम करने को कहा, मैं भी करने लगा। फिर मुझे दुर्लभ ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा दी। इस समय आनन्द से मुझे नृत्य करने की इच्छा हुई। भाव में अभिभूत होकर कितनी ही देर बैठा रहा। बाद में ठाकुर ने मुझसे उठने के लिए कहा।

मैं जैसे ही ठाकुर के कमरे से बाहर हुआ, वैसे ही सब लोग कुंज में आ गए। मेरे व्रत के विषय में कोई भी कुछ नहीं जान सका।

विचारपूर्वक दान का उपदेश

संध्या के समय हम सभी ठाकुर के साथ श्रीश्री गोविन्दजी के दर्शन के लिए बाहर निकले। मन्दिर के निकट एक वृद्ध को देखकर ठाकुर रुक गए। वृद्ध बहुत ही पीड़ित एवं कंगाल अवस्था में थे। ठाकुर के सामने आकर, संकेत द्वारा अपने मन का भाव व्यक्त करने लगे। हम लोग उनका संकेत कुछ भी नहीं समझे। इसी समय मैंने ठाकुर से पूछा— 'वृद्ध क्या कह रहा है?' ठाकुर ने कहा— "तुम्हारा ओढ़ा हुआ कम्बल चाहता है।" मैंने कहा— "दे दूँ क्या?" ठाकुर ने कहा— "तुम्हारी इच्छा हो तो दे सकते हो।" तब मैं वृद्ध को कम्बल देकर, खुले बदन ठाकुर के पीछे-पीछे चलने लगा। ठाकुर ने मुझसे पूछा— "तुम्हारे पास ओढ़ने का अन्य कोई कपड़ा नहीं है?" मैंने कहा— "केवल एक फटी धोती है। और कुछ नहीं है। प्रातःकाल में अपना शाल एक भिखारी को दे दिया।" सुनकर ठाकुर ने कहा— "जिस वस्तु के अभाव से अत्यन्त क्लेश होता है, वैसी नितान्त आवश्यक वस्तु छोड़नी नहीं चाहिए। उसके अभाव से कष्ट होने पर यदि एक बार भी दान के लिए अनुताप होता है, तो फिर सब मिट्टी हो गया। इसलिए सभी कार्य विचारपूर्वक करना होता है। ठीक है, भगवान तुम्हारे लिए जुगाड़ कर रखे हैं।"

कुंज में आकर ठाकुर ने माता ठाकुरानी से कहा— **तुम्हारे आसन का कम्बल, कुलदा को बिछाकर सोने के लिए दे दो।** माता ठाकुरानी ने तुरन्त मुझे अपना कम्बल लाकर दे दिया। माता ठाकुरानी के बहुत दिनों के साधन-भजन का कम्बल-आसन पाकर, अपने को बड़ा भाग्यवान् समझने लगा। मन में बड़ी प्रसन्नता हुई।

आसन का ग्रन्थ

{बंगला सन् 1297, श्रावण 13, सोमवार। **(28 जुलाई, सन् 1890 ई॰)**}

प्रातःकाल में यथारीति प्रातःक्रिया करने के पश्चात् यमुना में जाकर स्नान और तर्पण किया। कुछ दिनों से ब्राह्मसमाजी मित्र गुरुभाई सतीशचन्द्र भी मेरे साथ तर्पण किया करते हैं। तर्पण करने से उनको अपना शरीर मानो बहुत हल्का लगने लगता है, मन में भी एक अपूर्व आनन्द अनुभव करते हैं। उनकी यह बात सुनने के बाद से मेरी भी तर्पण के प्रति श्रद्धा बड़ गई। स्नान के बाद अपने आसन पर बैठकर कुछ समय तक साधना किया। मेरे लिए प्रतिदिन एक-एक अध्याय गीता-पाठ करने का आदेश हुआ है, किन्तु मेरे पास गीता नहीं है। साहस करके ठाकुर के आसन-घर में प्रवेश करके उनकी गीता लेकर आ गया। बाद में पाठ करने के बाद पुनः उसे यथास्थान में रख दिया। ठाकुर ने मुझसे कहा— **"आसन**

का ग्रन्थ कभी भी स्थानान्तरित नहीं करते, हानि होती है।"

मैं– मुझसे गीता-पाठ करने को कहा था, मेरे पास गीता नहीं है।

ठाकुर– **यही गीता तुम निःसंकोच पढ़ो। अन्य कमरे में न ले जाना ही अच्छा है। मेरे आसन-घर में ही बैठकर पढ़ सकते हो।**

मैं– आसन से ग्रन्थ उठाने पर भी तो स्थानान्तरित करना होगा?

ठाकुर– **उससे कोई दोष नहीं होता है। आसन-घर में रहने से ही चलता है।**

दृष्टि-साधना

अपराह्न में कुछ समय दृष्टि-साधना करके, ठाकुर के पास जाकर पूछा– बहुत दिनों से क्षिति में ही दृष्टि-साधना करते आ रहा हूँ। अब क्या अन्य भूत में अभ्यास करूँ? ठाकुर ने कहा– **नहीं, अभी यही करो। और भी पक्का होने दो। एक का ठीक हो जाने पर फिर अन्य का करना ही अच्छा है। एकमात्र बिन्दु पर ही दृष्टि को स्थिर करना होता है।**

मैं– दृष्टि-साधना से क्या उपकार होता है? ठाकुर ने कहा– **नेत्र साफ होते हैं; दृष्टि-शक्ति बढ़ती है। बहुत दूर की वस्तु और सूक्ष्म विषय सभी स्पष्टरूप से देखे जा सकते हैं। और भी जो होता है, दृष्टि-साधना करते-करते ही वह समझ जाओगे।**

'करते-करते ही वह समझ जाओगे'– ठाकुर के इस प्रकार कहने पर मेरा फिर और प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ। सोचा, इस बात के द्वारा ही मुझे चुप रहने का संकेत दिये हैं। मैं चुपचाप बैठकर नाम-जप करने लगा।

श्रीविग्रह दर्शन का उपदेश

कुछ समय बाद ठाकुर ने अपने-आप कहा– **श्रीवृन्दावन में जितने दिन रहोगे, प्रतिदिन मन्दिर जाकर ठाकुरजी का दर्शन करो, उपकार होगा।** मैंने कहा, ठाकुरजी तो पत्थर की मूर्ति हैं उसका दर्शन करने से क्या उपकार होगा? आपके साथ तो कितने दिन दर्शन किया ही हूँ। क्या उपकार हुआ, वह तो कुछ समझ में आया नहीं।

ठाकुर– **इन स्थानों पर भगवान् के उद्देश्य से हजारों-हजारों लोग श्रद्धा-भक्ति अर्पण करते हैं, इन स्थानों पर उन सब भाव के साथ एक योग रहता है। यहाँ जाने से ही भीतर के धार्मिक भावादि जागृत हो**

उठते हैं। यह क्या कम उपकार है? और इस श्रीवृन्दावन के सब विग्रह साधारण प्रस्तर-मूर्ति नहीं हैं। 'भक्तमाल' पढ़े हो? एक बार पढ़ो।

मैंने पूछा– श्रीवृन्दावन के क्या ये सब ठाकुरजी बातचीत करते हैं? हाथ-पैर हिलाते हैं? सभी कहते हैं, यहाँ के सब ठाकुरजी जागृत हैं। किस प्रकार जागृत हैं? ठाकुर ने कहा–

जिनके उस प्रकार नेत्र कर्ण हैं, वे लोग ठाकुरजी का हाथ-पैर हिलाना देखते हैं, बोली भी सुनते हैं। यह सब कहने से, साधारण लोग कैसे विश्वास कर पाएँगे?

स्वप्न : गंगा के भँवर में डूबना

{बंगला सन् 1297, श्रावण 14, मंगलवार। **(29 जुलाई, सन् 1890 ई॰)**}

माता ठाकुरानी के आगमन से ठाकुर के लिए चाय की अब अच्छी व्यवस्था हो गई है। श्री रामकृष्ण परमहंसदेवजी के कृपा-भाजन श्री राखाल बाबू (ब्रह्मान्द स्वामी), प्रबोधचन्द्र एवं दक्ष बाबू प्रतिदिन चाय पीने हमारे कुंज में आते हैं। काठिया बाबा के आश्रित श्री अभय बाबू भी प्रतिदिन आते रहते हैं। सभी के चाय पीने के बाद श्रीधर श्रीचैतन्य चरितामृत का पाठ करते हैं। इसके बाद ठाकुर के आदेशानुसार अभय बाबू 'इमिटेशन ऑफ क्राइष्ट' का भी पाठ करके बंगानुवाद सबको सुनाते रहते हैं। ठाकुर आज इस पुस्तक की यथेष्ट प्रशंसा करके बोले– **'इमिटेशन ऑफ क्राइष्ट' नित्य पाठ के उपयुक्त है। ग्रन्थ को जिन्होंने लिखा है, वे एक महापुरुष हैं।**

सब चले गए, गत रात्रि का एक स्वप्न का वृत्तान्त ठाकुर को बतलाया। स्वप्न यह है– निर्मल, शीतल गंगा के जल में गले तक उतरकर प्रफुल्ल मन से स्नान कर रहा था, किसी ओर मेरी दृष्टि नहीं थी। अचानक प्रबल धारा में गिर पड़ा। धारा मुझे बहाकर ले जाने लगी। बहुत अच्छा तैरना जानता हूँ इसलिए उस ओर मैंने ध्यान नहीं दिया। बाद में जब देखा, किनारे से बहुत दूर चला गया हूँ, तब किनारे जाने के लिए प्राणपण से चेष्टा करने लगा; किन्तु धारा के प्रतिकूल तैरने से मेरा सर्वांग अवसन्न हो गया। तब अत्यधिक थक जाने के कारण बाध्य होकर हाथ-पैर चलाना छोड़ दिया। कुछ क्षण बाद देखा, बहुत ही भयंकर स्थान पर आ गया हूँ। तरंग रहित बहुत विस्तृत मण्डलाकार भँवर 'सन्-सन्' शब्द के साथ घूमते-घूमते क्रमशः नीचे की ओर एक अज्ञात केन्द्र के गर्त में गिर रहा है। मैं उसी भँवर में जल के साथ-साथ धीरे-धीरे पाताल की ओर जाने लगा। चारों ओर देखने लगा, स्थल-किनारा कहीं भी नहीं है। तब सोचा, 'हाय, यह क्या हुआ?

परम पवित्रजल साक्षात् ब्रह्मरूपिणी-गंगा के बीच में था, उन्हीं के भँवर में पड़कर अब रसातल में जा रहा हूँ!' इसी समय हठात् मँझले भैया गंगा के किनारे आए, एवं मेरे जीवन को संकट में देखकर उन्मत्त की तरह हित-अहित का विचार किये बिना ही तुरन्त गंगा में कूद पड़े एवं शीघ्र ही तैरते हुए मेरे निकट पहुँचे। फिर बायें हाथ से मुझे अपनी छाती में जकड़कर रखा और दाहिने हाथ से प्राणपण से तैरते हुए किनारे पर पहुँचे। इसके बाद हाँफते-हाँफते जाग उठा।

ठाकुर ने स्वप्न का विवरण सुनकर कहा– **"जो स्वप्न देखोगे, उसे लिखकर रखो। कई बार स्वप्न में भविष्य का आभास मिलता है।**

——————

स्वप्न की बात होते-होते मँझले भैया की बात उठाया। ठाकुर से पूछा– क्या मँझले भैया ने दीक्षा ली है?

ठाकुर– **दीक्षा लिए रहने पर देखने से समझ जाओगे।**

मैं– किस प्रकार जानूँगा? वे क्या मुझे बतलाएँगे?

ठाकुर– **उनके न बतलाने पर भी तुम समझ जाओगे। यह शक्ति जिन्हें मिल जाती है वे फिर क्या अपने पास गुप्त रख सकते हैं?**

मैं– आपकी बातों से ही समझ आता है, उन्हें दीक्षा मिल गई है। फिर भी स्पष्ट क्यों नहीं कहते हैं?

ठाकुर– **"वह कैसे कहूँगा? उन्होंने मुझे मना जो किया है।"**

ठाकुर की यह बात सुनकर सभी खूब हँसने लगे।

श्रीवृन्दावन की रज

श्रीवृन्दावन आकर देख रहा हूँ, गुरुभाइयों को उच्छिष्ठ का विचार नहीं है, साफ-सुथरा रहने की भी किसी की मति नहीं होती। भोजन के बाद सभी जूठा हाथ माटी में मलते हैं, उच्छिष्ट मुख में भी माटी मलते हैं। पानी से उनका हाथ धुलाने पर वे मुझे दबाकर पकड़ लेते हैं और बलपूर्वक मेरे हाथ-मुँह में धूल-माटी रगड़कर कहते, 'अब पवित्र हुआ।' स्नान करके आते समय भी मेरे साफ शरीर में धूल-माटी डाल देते। मेरे क्रोध करने पर या विरक्त होने पर, रास्ते के दोनों ओर से वैष्णव बाबाजी लोग मुझे शान्त होने का उपदेश देकर कहते– "क्रोध नहीं करना! आनन्द करो। इससे राधारानी की कृपा होती है, कृष्ण-भक्ति प्राप्त होती है।" गुरुभाइयों का उत्साह इससे और भी बढ़ जाता है। आज मध्याह्न में हरिवंश

पाठ के बाद गुरुभाइयों के इन सब अनाचार, अत्याचार और अशिष्ट व्यवहार के प्रतिकार की प्रत्याशा से ठाकुर से प्रश्न किया, 'श्रीवृन्दावन की माटी का क्या इतना गुण है कि उसको लगाने से उच्छिष्ट भी शुद्ध होता है?'

ठाकुर ने कहा— **श्रीवृन्दावन की माटी नहीं, रज बोलना चाहिए। व्रज की रज परम पवित्र है। पृथ्वी के अन्य किसी भी स्थान की माटी के साथ इसकी तुलना नहीं होती। उच्छिष्ट आदि समस्त ही यह रज लगाने से शुद्ध होता है; श्रीवृन्दावन में पानी की अपेक्षा रज ही अधिक पवित्र होती है।**

मैंने कहा— खा-पीकर उच्छिष्ट हाथ-मुँह में रज लगाने से ही शुद्ध होगा? फिर पानी से धोना नहीं पड़ेगा?

ठाकुर ने कहा— **मैं जब पहले यहाँ आया था, भोजन के बाद पानी से ही हाथ-मुँह धोकर आचमन करता था; व्रजवासियों ने मुझसे कहा, "बाबा, व्रज-रज लगाने से और अधिक शुद्ध होता है।" दो दिन मुझसे इस प्रकार कहे जाने पर मेरे मन में आया, 'अच्छा, देखूँ क्यों नहीं?' तीसरे दिन मैं जल का उपयोग न करके हाथ-मुँह में रज मलने लगा। इस प्रकार करते ही मेरे मन में बिल्कुल भी दुविधा नहीं हुई, उच्छिष्ट का कुछ भी संस्कार न रहा। गंगाजल से धोने पर जैसा पवित्र बोध होता है, मुझे वैसा ही बोध होने लगा। इसके बाद से मैं इस रज से ही काम लेता हूँ। स्वच्छता के लिए सामान्य थोड़ा जल देकर हाथ-मुँह धोने से ही हो जाता है। यहाँ पर ठाकुरजी के भोग का बर्तन तक रज में घिस लेते हैं, उससे ही पवित्र हो जाता है।**

मैंने पूछा— क्या व्रज-रज का बहुत ही गुण है? इसको शरीर में मलने से क्या सत्वगुण बढ़ता है? रज में विश्वास न होने पर क्या केवल शरीर में लगाने से ही सत्वगुण में वृद्धि होगी?

ठाकुर ने कहा— **लगाकर देखने से ही समझ पाओगे। विश्वास करो या नहीं करो, वस्तु का गुण कहाँ जाएगा? कुछ दिनों पहले एक बंगाली सभ्य व्यक्ति श्रीवृन्दावन में आए थे। दो-तीन दिन विग्रह आदि का दर्शन करके दाऊजी के मन्दिर आए। तब मैं मन्दिर के पास में बैठा था। बात-ही-बात में उन्होंने मुझसे कहा, "महाशय, देश में रहते समय वृन्दावन के माहात्म्य की कितनी बातें सुनी थी; किन्तु कहाँ है? कुछ भी तो दिखा नहीं। रज का कितना गुण सुना था, वह भी तो कुछ समझ नहीं पाया! और सब स्थान जैसे हैं, इसे भी वैसा ही तो देख रहा हूँ।" मैंने उनसे कहा, 'रज की विशेषता निश्चित रूप से ही है। आप एक बार**

रज में लोटकर तो देखें, फिर देखूँ!' वे एक बार रज में माथा टिकाकर बोले, "कहाँ, जैसा है वैसा ही तो है।" मैंने कहा, 'शरीर का कुर्ता उतारिए, साष्टांग प्रणाम करके रज में एक बार लोट जाइए, उसके बाद देखिए कोई परिवर्तन होता है कि नहीं!' वे तभी परीक्षा करने के लिए कुर्ता खोलकर रज में लोटने लगे। दो-तीन बार लोटते ही उनका क्या हुआ, वे ही जानते हैं, सिसककर रो पड़े। बोले, "महाशय, मैं घोर अविश्वासी हूँ; किन्तु जीवन में कभी भी रज का ये गुण भूलूँगा नहीं।"

ठाकुर बहुत देर तक इसी प्रकार नाना दृष्टान्त उठाकर, रज के असाधारण माहात्म्य की बातें कहने लगे। कुछ समय बाद हम सभी ठाकुर-दर्शन (विग्रह-दर्शन) के लिए बाहर निकले।

मथुरा के पथ पर श्रीधर की कीर्ति

{बंगला सन् 1297, श्रावण 15, बुधवार। **(30 जुलाई, सन् 1890 ई॰)**}

अन्य दिनों की तरह दिन में नौ बजे तक आसन का कार्य पूर्ण किया। ठाकुर ने मुझे बुलाकर कहा– **कुछ दिनों से हरिमोहन ज्वर से बड़ा कष्ट पा रहे हैं। तुमको देखना चाहते हैं। मनोमोहन (मथुरा के असिस्टेन्ट सर्जन) के निवास-स्थान पर हैं। आज ही एक बार वहाँ पर जाना तुम्हारे लिए उचित है। पीड़ित अवस्था में कोई देखना चाहे तो जाना चाहिए। अभी तुम एक बार जाओ।**

मैंने कहा– मैं रास्ता नहीं जानता, मनोमोहन बाबू का घर भी नहीं जानता। किसके साथ जाऊँगा? ठाकुर ने श्रीधर को बुलाकर कहा– **"कुलदा को मथुरा में मनोमोहन बाबू के घर ले जाओ। कुलदा मथुरा गया नहीं है; अस्पताल भी नहीं देखा है।"**

श्रीधर के साथ जाने लगा। सतीश भी हमारे साथ हरिमोहन को देखने गए। नाना स्थान पर घूमकर बहुत ही कष्ट से दिन के लगभग ग्यारह बजे हम लोग मथुरा पहुँचे। मुझे देखकर स्वामी हरिमोहन को अत्यन्त आराम मिला। कुछ देर वहाँ विश्राम करके श्रीवृन्दावन के लिए रवाना हुए। श्रीधर का सिर गरम हो गया है। सारे रास्ते में उन्होंने हम लोगों को बहुत भुगताया है। मनोमोहन बाबू के घर पर हमें पहुँचाते ही बिना कुछ कहे अनायस श्रीवृन्दावन की ओर भाग उठे! हम लोग रास्तादि कुछ भी नहीं जानते। प्रायः तीन बजे हम लोग कुंज पहुँचे। आहारादि करके ठाकुर के पास बैठते ही उन्होंने कहा– **"श्रीधर तुम लोगों को ठीक रास्ते से तो ले गए थे? कोई गड़बड़ तो नहीं किये?"**

उत्तर में मैंने कहा– कुंज से जाते समय ही श्रीधर हाथ-मुँह मटकाकर 'चल मथुरा चल, इस बार तुम लोगों को मथुरा दिखाऊँगा;' बोलते ही लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाकर विपरीत दिशा में चलते हुए सीधे वंशीवट में पहुँच गए। हम लोगों को वहाँ से यमुना के किनारे-किनारे से सीधे राधाबाग ले गए। जंगल में प्रवेश करके श्रीधर ने कहा, "सीधा चलो।" हमने कहा, "रास्ता कहाँ है?" तब श्रीधर तेज गति से चलकर हम लोगों को घुमाने लगे। एक ही स्थान में दो-तीन बार घूमाने से समझ गया, श्रीधर का सिर गरम हो गया है। तब धीरे से पूछा, "भाई श्रीधर, मथुरा किस ओर है?" श्रीधर ने उत्तर में कहा, "मयूर देखो!" हम लोग अब क्या करते? चुप रह गए। फिर श्रीधर सीधे रास्ते से न चलकर रास्तेभर दाहिने, बायें, वन के भीतर दौड़-भाग करने लगे। हम लोग भी उनके पीछे-पीछे कई देर तक जंगल में दौड़-भाग करके बहुत थक गए। इस प्रकार कष्ट भोगते-भोगते, अन्त में हम लोग एक विशाल मैदान के सामने पहुँचे। तब श्रीधर को निकट में पाकर फिर से पूछा, "भाई श्रीधर, मथुरा और कितनी दूर है?" श्रीधर रास्ते में एक विशाल वट वृक्ष को दिखलाकर बोले, "प्रणाम करो। इस वृक्ष की गोसाँईजी ने खोज की है।" वृक्ष को प्रणाम करके हम लोगों ने देखा, पूरे वृक्ष में देवमूर्तियाँ हैं; तने की ओर स्पष्ट रूप से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेशादि की मूर्ति अपने-आप बनी हुई हैं। हाथ से तैयार किये मिट्टी के पुतलों की तरह, इतनी स्पष्ट देवमूर्ति वृक्ष में किस प्रकार उत्पन्न हुई है, सोचकर अवाक् रह गए। सतीश और मैं मूर्ति आदि को पूरे मनोयोग के साथ देख रहे थे, हठात् श्रीधर फिर से मैदान के बीच से होकर दौड़ पड़े। हम लोग भी उसके पीछे-पीछे जाकर एक बस्ती में पहुँचे। इस बस्ती के विभिन्न गंदे स्थानों से ले जाकर फिर से एक विशाल मैदान में ले आए। श्रीधर मैदान के मध्य तक तो खूब धीरे-धीरे चले। बाद में मैदान के मध्य स्थल में पहुँचते ही हम लोगों से कुछ न कहकर लम्बी दौड़ लगा दी। हम लोग उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। तब श्रीधर, एक बार दाहिने एक बार बायें, एक श्वास में दौड़-भाग करने लगे। हम लोग रास्तादि कुछ पहचानते नहीं, क्या करते? उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। इतना भुगतने के बहुत देर बाद हम लोग उनके साथ यमुना के किनारे पर पहुँचे। तब श्रीधर घास के जंगल के बीच से होकर धीरे-धीरे चलने लगे। कुछ दूर जाकर अचानक 'जलजन्तु रे, जलजन्तु' कहकर घास के ऊपर फिर दौड़ लगा दी। हम लोग कोई उपाय न देखकर उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। कुछ देर बाद हम लोग एक छोटी नहर के किनारे पहुँचे। तब श्रीधर से पूछे, "श्रीधर ये कहाँ ले आए?" श्रीधर ने कहा, "नहर को पार करो।" हम लोग बोले, "तुम आगे जाओ।" उन्होंने कहा, "तैरना नहीं जानता।" तब सतीश ने धमकाते हुए कहा, "आओ, इस बार तुम्हें पानी में डुबाएँगे।" श्रीधर ने तुरन्त एक बार आगे-पीछे देखकर सीधी दौड़ लगा

दी। निरुपाय होकर हम भी उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। श्रीधर, एक स्थान पर कुछ हड्डियाँ देखकर वहाँ रुक गए। हड्डियों में छानबीन करते-करते हमारी ओर बार-बार देखने लगे। सतीश ने कहा, "श्रीधर यह क्या कर रहे हो? वह तो गाय की हड्डी है! छिः, छिः।" यह बात सुनकर श्रीधर 'रुक साला', कहकर गाय की विशाल मेरुदण्ड की हड्डी कन्धे में उठाकर सतीश पर प्रहार करने के लिए आए। 'पगला साला इस बार खून करेगा रे' कहते हुए सतीश ने दौड़ लगा दी, मैं भी प्राण के भय से दौड़ने लगा। श्रीधर हम लोगों को पकड़ने ही वाला था। इस समय कोई विकल्प न देखकर सतीश के साथ मैं भी नहर में कूद पड़ा। श्रीधर भी दौड़ते हुए उसी हड्डी को लेकर जल में कूद पड़े। श्रीधर तैरना नहीं जानते; गोता खाते-खाते हड्डी को छोड़ दिये। तब हम लोग ही किसी प्रकार से उनको खींच-तानकर दूसरे किनारे पर उठा लिए। बाद में बड़े कष्ट से उनके साथ मथुरा में मनोमोहन बाबू के निवास-स्थान पर जा पहुँचे। स्वामी हरिमोहनजी को देखा, वे अब थोड़ा ठीक हैं। स्वस्थ होते ही वे यहाँ आएँगे। श्रीधर मनोमोहन बाबू से हम लोग के जलपान के लिए कुछ पैसे लेकर बोले– "भाई, तुम लोग थोड़ा बैठो, तुम लोगों के लिए भूने चने लेकर आता हूँ।" यह कहकर श्रीधर सीधे स्टेशन चले गए एवं हम लोगों के जलपान के पैसे से ही एक टिकिट लेकर श्रीवृन्दावन आ गए। हम लोग उनकी प्रतीक्षा में बहुत देर रुके, बाद में चले आए।"

ठाकुर श्रीधर के पागलपन की ये सब बातें सुनकर खूब हँसने लगे। ठाकुर की प्रसन्नता को देखकर हम लोग खूब आनन्दित हुए। धन्य है श्रीधर! तुम्हीं धन्य हो! साधन-भजन की अपेक्षा तुम्हारा यह पागलपन ही श्रेष्ठ है।

मैंने ठाकुर से पूछा– उस वृक्ष को क्या आपने ही सर्वप्रथम देखा था? उन सब मूर्तियों में सिन्दूरादि का टीका भी तो देखने को मिला।

ठाकुर– **पंचकोसी परिक्रमा करते समय उस वृक्ष को देखा था। तब तक वृक्ष की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया था। जो लोग साथ में थे, उन्हें उस वृक्ष के देवी-देवताओं की मूर्ति दिखाने पर ही वे लोग प्रचार कर दिये। अब पण्डे लोग उस वृक्ष को दिखाकर यात्रियों से प्रणामी लेते हैं; सिन्दूर भी पण्डे लोग ही लगाए हैं।**

मैंने कहा– वृक्ष किन्तु बड़ा ही अद्भुत है! सुना हूँ ये सब देवी-देवता यथार्थ में ही उस वृक्ष में हैं। देवी-देवता वहाँ जंगल में वृक्ष का आश्रय लेकर क्यों रहेंगे?

ठाकुर– **अरे बेटा, कितने देवी-देवता ऋषि-मुनि इस श्रीवृन्दावन की रज पाने के लिए लालायित हैं! इस स्थान की रज के प्रत्येक कण में महाविष्णु वर्तमान हैं।**

इसके बाद, श्रीवृन्दावन के रज का माहात्म्य ठाकुर के मुख से सुनते-सुनते क्रमशः संध्या हो गई। हम लोग भी दाऊजी की आरती देखने नीचे आ गए।

स्वप्न : गृहस्थ नहीं होना पड़ेगा

{बंगला सन् 1297, श्रावण 17, शुक्रवार। **(1 अगस्त, सन् 1890 ई॰)**}

रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक स्वप्न देखकर मन बड़ा अस्थिर हो गया है। अवसर पाकर ठाकुर को स्वप्न का दृष्टान्त सुनाया– एक निर्जन मनोरम स्थान पर पाँच महापुरुष अपने-अपने आसन पर बैठे हुए धर्म-प्रसंग में निमग्न हैं; मैं उन लोगों के निकट जा पहुँचा। बारदी के ब्रह्मचारीजी भी उनमें से एक हैं। मैं सभी के चरणोद्देश्य से साष्टांग प्रणाम करके उन लोगों का दर्शन करने लगा। मुझे देखकर सभी महापुरुष एक साथ कह उठे, "ये क्या? तुम यहाँ कैसे? क्या चाहिए? तुम्हारा जो कर्म है वे अभी भी शेष नहीं हुए हैं। संसार का ढेर सारा काम तुमको करना होगा।" मैंने कहा, 'संसार-कर्म यदि मेरा प्रारब्ध रहे तो होगा; किन्तु प्रारब्ध कर्म तो मेरे ठाकुर की ही मुट्ठी में है। वे जो कहेंगे, वही तो कर्म है। उसको छोड़कर और कर्म क्या है? अच्छा, अपने गुरुदेव से जाकर पूछता हूँ, वे मुझे गृहस्थ में जाने बोलते है कि नहीं।' यह कहकर उन लागों को प्रणाम करके मैं आपके पास आ पहुँचा। महापुरुषों की बातें आपको बतलाकर, पूछा, "मुझे क्या कर्म-बन्धन से मुक्त नहीं करेंगे? वास्तव में मुझे फिर क्या गृहस्थ में जाना होगा?" आप मेरे प्रति स्नेहपूर्वक देखते हुए सिर हिलाते हुए बोले– **"नहीं, नहीं, तुमको अब गृहस्थ में नहीं जाना होगा।"** ये कुछ बातें सुनकर ही मैं जाग उठा। "यह स्वप्न क्या सत्य है?"

ठाकुर ने कहा– **ये सब स्वप्न मिथ्या नहीं होते। तुम्हें अब संसार-कर्म अर्थात् घर-गृहस्थी नहीं करना होगा। स्वप्न को लिखकर रखो। अब से सभी स्वप्नों को लिखकर रखो। और भी कितने स्वप्न देखोगे!**

वृक्षरूपी वैष्णव महापुरुष

कल श्रीवृन्दावन परिक्रमा मार्ग पर बड़े रास्ते के किनारे जिस प्राचीन वट वृक्ष का दर्शन करके आए थे, उसी वृक्ष के सम्बन्ध में दो-चार बातें करने से और भी अनेक बातें होने लगी। श्रीवृन्दावन में वृक्ष के रूप में कितने महापुरुष हैं, कहा नहीं जा सकता। गुरुदेव ने स्वयं जो प्रत्यक्ष किया था, वह कहने लगे– **एक दिन मैं घूमते-घूमते राधाबाग जा पहुँचा। यमुना के किनारे एक निर्जन स्थान देखकर वहाँ एक वृक्ष के नीचे स्थिर होकर बैठा रहा। थोड़ी ही देर में 'सर् सर्' ध्वनि मेरे कानों में आने लगी। देखा, सामने में एक वृक्ष काँप**

रहा है। देखकर बड़ा ही आश्चर्य होने लगा। मैं वृक्ष की ओर देखता रहा। फिर देखा वृक्ष नहीं है, एक बहुत सुन्दर वैष्णव महात्मा वहाँ पर खड़े हुए हैं। उनके द्वादश अंग में यथारीति तिलक, गले में कण्ठी, तुलसी की माला, हाथ में भी जप की तुलसी-माला है। उनके विषय में जानने की इच्छा व्यक्त करने पर उन्होंने मुझे पूरा परिचय दिया, और कहा, "यहाँ मैं वृक्ष के रूप में हूँ।" और भी अनेक बातें कहकर वे उसी समय फिर से वृक्ष का रूप धारण कर लिए। मैंने यह बात दो-एक वैष्णव से कही, वे लोग विश्वास नहीं कर सके, बल्कि उपहास करके गौर शिरोमणि जी के पास जाकर बोल दिये। इस विषय में शिरोमणि जी के पूछने पर मैंने उन्हें सब स्पष्ट रूप से कहा। वे सुनकर रज में लोटने लगे, रोने लगे; बाद में मुझसे कहा– "प्रभु, ये सब बातें जिस किसी को भी न कहें; विश्वास न कर उपहास करेंगे।

सुना हूँ बाद में गौर शिरोमणि जी भी राधाबाग में उसी वृक्षरूपी वैष्णव महात्मा का दर्शन करके आए थे। मैंने ठाकुर से पूछा– महात्मा लोग यहाँ पर वृक्ष के रूप में क्यों रहते हैं?

ठाकुर ने कहा– **श्रीवृन्दावन अप्राकृतिक धाम है। अप्राकृतिक लीला यहाँ पर नित्य ही होती है। वैष्णव महापुरुष निश्चिन्त होकर उसी का दर्शन करने वृक्षादि रूप में रहते हैं; व्रजधाम में वास करके आनन्द से भजन करते हैं और लीला दर्शन करते हैं।**

मैंने कहा– वृक्षरूप में जो महापुरुष वृन्दावन में हैं, उन्हें तो साधारण लोग नहीं जानते! वृक्ष के ऊपर किसी प्रकार का अत्याचार करने से उन महापुरुषों को कोई हानि नहीं होती?

ठाकुर ने कहा– **इसीलिए व्रज के वृक्ष-लता के प्रति हिंसा नहीं करते। अत्याचार करने से उनको बहुत ही कष्ट होता है। अभी कुछ दिन पहले ही तो एक वृक्ष पर अत्याचार करने से भयानक अनिष्ट हो गया।**

क्या हुआ था, यह जिज्ञासा व्यक्त करने पर ठाकुर कहने लगे– **"यहाँ पास में ही एक कुंज में बहुत पुराना एक सुन्दर नीम का वृक्ष था, कुंज के वैष्णव बाबाजी वृक्ष की खूब सेवा-जतन करते थे। एक दिन वहाँ पर एक वैष्णव युवती ने रजःस्वला अवस्था में वृक्ष को पकड़ लिया। रात्रि में बाबाजी ने स्वप्न देखा– एक वैष्णव ब्रह्मचारी आकर उनसे बोले– "तुम्हारे कुंज में इतने समय से अच्छे आराम से था, कल तुम लोगों की वैष्णवी ने अशुद्ध काम-कलुषित अवस्था में वृक्ष को बारम्बार जकड़**

लिया। इससे मेरी अत्यन्त हानि हुई है; इसीलिए मैं यह स्थान त्याग करता हूँ।" बाबाजी ने प्रातः उठकर देखा, वृक्ष सूख गया है। हम लोग भी जाकर देखे, एक रात्रि में इतना बड़ा वृक्ष बिल्कुल ही सूख गया है।

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर अवाक् रह गया। मुँगेर में जो घटना हुई थी, उसी गुलाब के पेड़ की बात आज स्मरण में आ गई। ठाकुर को उस पेड़ की बात बतलाने पर उन्होंने कहा– **यथार्थ भाव से सेवा करने पर वृक्ष की बात भी सुनी जा सकती है।**

श्रीवृन्दावन के सब वृक्ष वास्तव में ही अद्भुत हैं। छोटे-बड़े सभी वृक्ष की ही शाखा-प्रशाखा लता की तरह झूलकर भूमि की ओर लटक गई हैं, पत्ते तक डंडी सहित नीचे की ओर मुख किये हुए हैं। ऐसा और कहीं भी नहीं देखा। निधुवन एवं अन्य दूसरे प्राचीन कुंज और वन में बड़े-बड़े सभी वृक्ष रज में लोटते हुए बढ़ रहे हैं। वृक्ष ऊपर की ओर क्यों नहीं उठते, वह कुछ भी समझ नहीं रहा हूँ। बहुत ही प्राचीन अनेक वृक्ष को देखने से जंगली लता का भ्रम होता है। अद्भुत है व्रजभूमि! लगता है भूमि का ही वह गुण है, जो मस्तक उठाने नहीं देता। उग्र स्वभाव के अशिष्ट लोग भी श्रीवृन्दावन में दीर्घकाल वास करने से, रज के प्रभाव से नतमस्तक होते हैं, इस पर और अविश्वास करने की इच्छा नहीं होती। सैकड़ों विविध दोष रहने पर भी व्रजवासियों का स्वभाव मृदु एवं नम्र देख रहा हूँ।

श्रीवृन्दावन में भयंकर मच्छर

श्रीवृन्दावन में सारा दिन तो आनन्द है, किन्तु संध्या होते ही आतंक! दिन शेष होते-होते ही मच्छर के उत्पात की बात के स्मरण से अस्थिर हो जाता हूँ। इस प्रकार भीषण मच्छर और कहीं भी देखा नहीं। रात्रि होते ही झुंड के झुंड मच्छर आकर शरीर पर बैठते हैं। निद्रा का तो प्रश्न ही नहीं उठता है, एक स्थान पर स्थिर होकर थोड़ी देर के लिए भी बैठना असंभव हो जाता है। सारी रात छटपटाते हुए काटता हूँ; सोचता हूँ, कितनी देर में अब सबेरा होगा। रात्रि में ठाकुर कमरे में न रहकर अब पूर्ववत् बरामदे में ही बैठे रहते हैं। माता ठाकुरानी भी रातभर पंखा हाथ में लेकर ठाकुर को हवा करती हैं। ठाकुर दो-तीन बार माता ठाकुरानी को विश्राम करने के लिए कहते हैं; किन्तु माताजी वह बात सुनती नहीं, स्थिर भाव से सबेरे तक मच्छर भगाती रहती हैं। हवा करके माता ठाकुरानी ठाकुर की सेवा में ही सारी रात काट देती हैं। उधर कुतु मच्छर के काटने से छटपटाती है। बहुत ही कष्ट है। ठाकुर के पास एक मच्छरदानी थी, किन्तु उसका वे उपयोग नहीं कर पाए। श्रीवृन्दावन पहुँचने के कुछ दिन बाद ही श्री राखाल बाबू (ब्रह्मानन्द

स्वामी) ज्वर से शय्यागत हो गए थे। ठाकुर उन्हें देखने गए थे; देखे, राखाल बाबू अन्धकार कमरे में पड़े हुए हैं। ठाकुर तुरन्त कुंज में आकर अपनी मच्छरदानी, रस्सी और लोहे के चार कील लेकर राखाल बाबू के कमरे में पहुँचे एवं उनके बिछौने के ऊपर उसे चुपचाप लगा कर चले आए। आज बात-ही-बात में कुतु ने ठाकुर से कहा, "पिताजी, श्रीवृन्दावन में तो हिंसा नहीं करना चाहिए, किन्तु रात्रि में मच्छर भगाते समय जो हिंसा हो जाती है?"

ठाकुर ने कहा– **तुम मच्छर को मारते हो क्या? दो-चार दिन मच्छर को काटने दो ना? फिर देखना, मच्छर के काटने से लगेगा नहीं।**

कुतु ने कहा, आपको मच्छर के काटने से कष्ट नहीं होता?

ठाकुर ने कहा– **अब और कष्ट होता नहीं। पहले जब यहाँ आया था, तब खूब होता था। एक दिन मच्छर भगाने के लिए हाथ के ऊपर हाथ फेरने गया तो देखा हाथ पर मच्छर-ही-मच्छर बैठे हैं! तो फिर क्या करता? भगाने जाने पर तो सैकड़ों मच्छर मर जाएँगे। तब मैं हाथ-पैर हिलाए बिना एक ही दशा में ही रहा। रातभर में मेरा इतना रक्त पी गए कि सबेरे उठने पर मेरा शरीर अवश लगने लगा; किन्तु उससे मेरी कोई हानि नहीं हुई, बड़ा ही उपकार हुआ। तब प्रतिदिन मुझे मलेरिया का ज्वर होता था। मच्छरों ने जिस दिन इस प्रकार काटा, उस दिन से फिर मुझे ज्वर हुआ नहीं। मच्छरों ने मलेरिया का समस्त विष चूस लिया। उस दिन से मच्छरों के काटने से भी मुझे अब लगता नहीं। तुम थोड़ा सहन नहीं कर सकती? दो-एक दिन सहन करके देखो, देखता हूँ फिर कष्ट होता है कि नहीं? नहीं तो मच्छर से बोल भी तो सकती हो कि मुझे काटना नहीं। इतना कहने से ही हो जाएगा।**

कुतु– हाँ! मच्छरों को बोलने से वे लोग सुनेंगे क्या?

ठाकुर– **सुनेंगे क्यों नहीं? अच्छा, मैं बोल देता हूँ, देख सुनते हैं कि नहीं? "मच्छर तुम लोग कुतु को काटना नहीं।" जा, इसके बाद यदि तुमको मच्छर काटे तो मुझसे कहना।**

साधना में नाना अनुभूति का क्रम

{बंगला सन् 1297, श्रावण 18, शनिवार। **(2 अगस्त, सन् 1890 ई॰)**}

भोजन के बाद हरिवंश पाठ करके हम सभी गुरुदेव के पास बैठे हैं। गुरुदेव अपने-आप धीरे-धीरे कहने लगे– **दर्शन के विषय में जैसा क्रमशः थोड़ा-थोड़ा**

करके धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से प्रकट होता है, श्रवण भी ठीक उसी प्रकार से ही होता रहता है। श्रवण के आरम्भ में एक प्रकार का 'किच् किच्' शब्द कान के भीतर पहले-पहले सुन पाते हैं। ये शब्द होते ही यदि विरक्त होकर अग्राह्य किया जाए, तब तो अनिष्ट हुआ करता है। नाम-जप करते-करते बड़ी निष्ठापूर्वक उस शब्द को सुनना होता है; निष्ठा रहने से ही धीरे-धीरे सब प्रकार के शब्द सुने जा सकते हैं। किन्तु, अन्यान्य शब्दों की तरह ये शब्द नहीं हैं, इसमें कुछ विशेषता रहेगी ही। वह आरम्भ में ही पता चल जाता है। निष्ठा के साथ स्थिर चित्त से इन शब्दों को सुनने से ही धीरे-धीरे बात भी सुनाई पड़ती है। तब बातचीत की जा सकती है, पूछने पर उत्तर मिलता है। किन्तु, बातचीत न होने तक यथार्थ विश्वास होता नहीं। विश्वास की दृढ़ता के साथ-साथ बात करने वाले के अंगादि का स्पर्श भी क्रमशः स्पष्ट रूप से हुआ करता है। यह स्पर्श पंचभौतिक स्पर्श नहीं है। यह अन्य प्रकार का स्पर्श है। ये सब जब होने लगते हैं, तभी ठीक समझ में आता है; नियम के अनुसार साधना करने से ये सब अवस्था सभी की होगी। इच्छा करने से भी होगी, न करने से भी होगी। इस प्रकार और भी कुछ बातें कहकर ठाकुर चुप हो गए। वे बातें मेरी कुछ भी समझ में नहीं आई। मैंने ठाकुर से पूछा— ये सब दर्शन, स्पर्शन, श्रवणादि के लिए एवं अनेक प्रकार के अलौकिक ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए क्या अन्य प्रकार की कोई साधना करनी होती है?

ठाकुर इस प्रश्न के उत्तर में 'इस नाम में ही सब है' कहकर कुछ क्षण चुप रहे, बाद में अपने-आप फिर कहने लगे— **एकमात्र श्वास-प्रश्वास में नाम-जप अभ्यस्त होने से समस्त ही होता है। 'शरीर से मैं पृथक् हूँ' इसका स्पष्ट ज्ञान न होने से वह सब अवस्था होती नहीं। 'शरीर से मैं पृथक् हूँ' यह समझने के लिए श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना होता है। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना भी बड़ा सहज नहीं है; तीन-चार लाख नाम का जप करो या तीन-चार करोड़ नाम का जप करो, श्वास-प्रश्वास में लक्ष्य रखकर नाम-जप करने जैसा उपकार किसी प्रकार से नहीं होता। इसकी उपकारिता ही अन्य प्रकार की है। सहज श्वास-प्रश्वास में एक बार ठीक तरह से नाम गुँथ जाने से ही आत्मदर्शन होता है। 'शरीर से आत्मा पृथक् है' जानने से, थोड़ा स्थिर हो सकने पर ही, उसी आत्मा में नाना प्रकार की क्षमता उत्पन्न होती है। तब वह आत्मा अनेक अलौकिक कार्य सहज में कर सकती है।**

ठाकुर की बात से मेरे बड़े भारी भ्रम का संशोधन हुआ। 21600 (इक्कीस

हजार छः सौ) नाम गिनकर प्रतिदिन जप करना भी, थोड़ी देर श्वास-प्रश्वास में नाम-जप के प्रयास के तुल्य नहीं है। इसलिए भीतर-ही-भीतर लज्जित होकर, फिर अपनी उस संख्या जप का परिचय नहीं दिया।

मैंने पूछा, आत्मा की इस प्रकार क्षमता उत्पन्न हो जाने पर किसी प्रकार के अलौकिक कार्य करने से क्या कुछ अनिष्ट होता है?

ठाकुर ने कहा– **बहुतों को देखा गया है, इस प्रकार थोड़ा योगैश्वर्य मिलते ही उसका प्रयोग करके बिल्कुल नष्ट हो गए हैं। इस ऐश्वर्य से अनेक प्रकार के सम्पद् वृद्धि, रोगारोग्य एवं इच्छानुयायी और भी अनेक अलौकिक कार्य करने की क्षमता होती है सत्य है, किन्तु धर्म प्राप्ति के पथ में यह विषम विघ्न और प्रलोभन है। ये सब ऐश्वर्य प्राप्त होते ही शक्ति का प्रयोग नहीं करते। तब तो धीरे-धीरे बहुत ही अद्भुत अवस्था प्राप्त होती है। और शक्ति प्रयोग करने से अल्प समय के भीतर ही उसका सर्वनाश होता है; धर्म-कर्म तो चूल्हे में जाए, यह शक्ति भी नष्ट हो जाती है। किन्तु, वह ऐसा प्रलोभन है कि थोड़ा कुछ होते न होते ही शक्ति प्रयोग करने की इच्छा होती है। इस विषय में बहुत ही सावधान रहना होता है।**

लाल के सम्बन्ध में ठाकुर का अनुशासन

प्रसंगवश माता ठाकुरानी ने इस समय लाल की बात उठाकर कहा, "लाल के भीतर बहुत-सी अद्भुत शक्ति देखी थी। बहुतों के अतीत जीवन के ऐसे सब गोपनीय विषय उसने कहे थे जिसे उन लोगों के अतिरिक्त संसार में और कोई भी नहीं जानता था। बहुतों के भविष्य की बात भी स्पष्ट बोल देते थे। साधारण बात में भी लाल की ऐसी शक्ति थी कि जो लोग भी उसे सुनते थे, मुग्ध हो पड़ते थे। योगजीवन कमरे में बैठकर पढ़ाई-लिखाई करता था और लाल गेण्डारिया के जंगल से एक प्रकार की ध्वनि निकाला करते; उस शब्द की ऐसी आकर्षण शक्ति थी कि योगजीवन तो सुनकर फिर घर पर रुक नहीं पाता था। पढ़ना छोड़कर वह लाल के पास तुरन्त दौड़ पड़ता था। इसी कारण से ही योगजीवन परीक्षा पास नहीं कर सका।" माता ठाकुरानी ने लाल के योगैश्वर्य के सम्बन्ध में और भी बहुत-सी बातें कहीं। तब इस क्रम में मैंने भी भागलपुर में लाल के योगैश्वर्य प्रकट करने की बात कही। ठाकुर सारी बातें स्थिर भाव से सुनकर बोले– **बारबार लाल को ये सब करने के लिए मना किया था, किसी तरह से बात सुनता नहीं। इसके बाद ठोकर खाकर सीखेगा।**

मैं यह बात सुनकर थोड़ा चकित होकर बोला, क्यों? कितने लोगों के जीवन का भार आपने ही तो लाल के ऊपर दिया है; लाल के मुँह से सुना हूँ, उन लोगों का कल्याण करने के लिए ही वह यथासाध्य प्रयत्न करता है।

ठाकुर ने कहा– **यह क्या? तुम क्या कहते हो? स्पष्ट कहो। लाल ने तुमसे क्या कहा था, ठीक वही कहो।**

इस प्रकार ठाकुर से इस विषय में कहने का आदेश पाकर मैंने कहा– "लाल ने मुझसे पहले भी एक बार कहा था, इस बार भागलपुर में भी कहा, गोसाँईजी वृद्ध हो गए हैं। इतने लोगों का बोझा वे और कितना वहन करेंगे? इसीलिए हम तीन लोगों के ऊपर सब का भार बाँट दिये हैं; कुछ तो श्यामाकान्त पण्डित पर, कुछ बिहारी नाम के पश्चिम के एक गुरुभाई पर और कुछ मुझ पर।" मैंने पूछा– 'मैं किसके भाग में हूँ?' लाल ने उत्तर दिया– 'तुम मेरे भाग में हो।' ठाकुर ने सब बातें सुनकर कहा– **अच्छा, इतना तक हो गया है? कुछ अधिक ही उछलना आरम्भ कर दिया है। महापुरुषों की कृपा से साधारण एक सरसों का बिन्दु पाते ही अभिमान से पृथ्वी को भी तुच्छ समझने लगा है। शीघ्र ही वह बिन्दु उठा लेने पर, फिर वह स्वयं क्या है, तब अच्छे से समझेगा। ठहरो, घबराओ मत।**

यह कहकर ठाकुर आसन बैठे-बैठे ही एक बार थोड़ा दायें-बायें हिले, तभी मैंने सोचा, 'आज प्रलय होगा, लाल का सर्वनाश होगा, अब छुटकारा नहीं है।

साधना के प्रभाव से देहतत्त्व का ज्ञान

कुछ देर बाद बातों-ही-बातों में ठाकुर से पूछा– 'देहतत्त्व की शिक्षा न मिलने से कहाँ क्या रोग है, क्यों है, यह कैसे पता चलेगा? फिर निरोग होना भी किस प्रकार संभव है?'

ठाकुर ने कहा– **इस शरीर से आत्मा जो अलग है, इसका अच्छी तरह से ज्ञान होने पर, स्थूल शरीर में कहाँ पर क्या है, सभी ठीक-ठीक दिखाई पड़ेगा। तब शरीर के ऊपर और भीतर सभी जगह के चमड़े, मांस, हड्डी-मज्जा, नस-नाड़ी, शिरा-धमनी, जो कुछ हैं वह स्पष्टरूप से दिखाई पड़ते हैं। तब शरीर के किस स्थान में किस वस्तु का अभाव है, कहाँ किसकी अधिकता है, वह भी समझ आता है; पृथ्वी की किस वस्तु के साथ देह का क्या सम्बन्ध है, वह भी स्पष्ट समझा जा सकता है।**

गेरुआ क्या है?

सतीश ने प्रसंगवश प्रश्न किया– 'गेरुआ वस्त्र पहनने की क्या कोई अवस्था है, या धर्मार्थी लोग अपनी इच्छा से ही उसे पहन सकते हैं?'

ठाकुर ने कहा– **गेरुआ पहनना, भस्म लगाना, दण्ड, कमण्डलु और चिमटा आदि इन सबको धारण करने की एक-एक विशेष-विशेष अवस्था है। उस अवस्था की प्राप्ति के अनुसार ही इन सब चिह्नों को धारण करने का अधिकार होता है; अन्यथा यह धोखेबाजी है, अपराध होता है। आजकल इन विषयों में विचार न रहने से बहुत अनिष्ट हो रहा है। तुम लोगों के लिए उनकी अभी कोई आवश्यकता नहीं है। अवस्था होने पर वह सब ग्रहण कर पाओगे। शास्त्र में है– भगवती के रजः से गेरुआ हुआ है। गेरुवे वस्त्र को भगवत्-वस्त्र कहते हैं। भगवान नारायण का यह वस्त्र है। देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, योगी-महापुरुषों के लिए वह बड़े ही आदर एवं सम्मान का वस्त्र है। उसे ग्रहण करके उचित रूप से उसकी मर्यादा की रक्षा न कर पाने से बहुत बड़ा अपराध होता है। गेरुआ वस्त्र में किसी का भी किसी प्रकार से एक बिन्दु भी वीर्यपात होने से सभी देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, सिद्ध महात्माओं का शाप लगता है; पहले इन सब विषयों पर दृष्टि थी, शासन था, वस्तु की भी ठीक मर्यादा थी। अब विदेशी राजा है, कौन शासन करेगा? इसलिए फेरीवाला भी गेरुआ वस्त्र पहन लेता है।**

प्रतिदिन नए तत्त्व का प्रकाश : परतत्त्व

भोजन के बाद हरिवंश पाठ करके थोड़ी देर चुपचाप बैठा रहता हूँ; ठाकुर स्वयं कोई बात करें तभी साहस करके विभिन्न विषय में प्रश्न करता हूँ। जिस दिन किसी प्रसंग पर बातचीत होती है, उस दिन माता ठाकुरानी कुंज में ही रहती हैं; नहीं तो श्रीधर के साथ कुतु को लेकर दर्शन के लिए चली जाती हैं। ठाकुर जिस दिन बाहर जाते हैं, हम सभी उनके साथ जाते हैं; और जिस दिन ठाकुर कुंज में रहते है, कुंज के अन्य सभी लोगों के दर्शन में जाने पर भी मैं ठाकुर के ही पास बैठा रहता हूँ, अवसर मिलते ही विभिन्न विषयों पर प्रश्न करता हूँ। संध्या के समय ठाकुर किसी-किसी दिन आसन पर ही बैठे रहते और हम लोगों को ठाकुरजी का दर्शन करने जाने के लिए डाँटकर कहते रहते हैं; किन्तु, स्वयं उस दिन प्रातः से संध्या तक एक बार के लिए भी आसन छोड़कर कहीं नहीं जाते। इसका तात्पर्य क्या है, जानने की इच्छा हुई। ठाकुर से पूछा– 'आप भी नियमित रूप से दर्शन

के लिए क्यों नहीं जाते? थोड़ा बाहर चलने-फिरने से शरीर भी स्वस्थ रहेगा।'

ठाकुर ने कहा– **श्रीवृन्दावन आने के बाद ही गुरुजी ने मुझसे कहा, 'कम से कम एक वर्ष तक यहाँ पर तुमको आसन लगाना होगा। आसन पर प्रतिदिन तुम्हारे सामने नए-नए तत्त्व प्रकट होंगे।' तब से प्रतिदिन ही दो-एक नए तत्त्व प्रकट हो रहे हैं। जब तक कम-से-कम एक तत्त्व भी प्रकट नहीं होता, मैं आसन छोड़कर कहीं नहीं जाता। इसीलिए मैं प्रतिदिन दर्शन करने के लिए नहीं जा पाता। वह हो जाने से ही मैं आसन छोड़ता हूँ, दर्शन के लिए भी जाता हूँ।**

ठाकुर की बात सुनकर मैं बिल्कुल स्तंभित हो गया। कुछ देर अवाक् होकर सोचने लगा, 'ठाकुर ने अब यह कौन-सा तत्त्व कहा? तीव्र वैराग्य का अवलम्बन करके युग-युगान्तर तक लगातार कठोर साधन-भजन में अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को एकाकार करके, प्राचीनकाल के ब्राह्मण लोग जिस एक तत्त्व को आयत्त करने से ही ऋषि-पद प्राप्त कर लेते थे; कुछ घण्टे आसन पर बैठकर, क्षण-क्षण में हँसी-मजाक से समय बिताकर भी, इस धर्म-विरोधी घोर कलिकाल में वही तत्त्व ठाकुर प्रतिदिन ही दो-एक सहज में प्राप्त कर रहे हैं। यह कितनी असंभव बात है! मैं स्थिर न रह सका, ठाकुर से पूछा– तत्त्व किसे कहते हैं? किस प्रकार साधना करने से वह सब तत्त्व प्राप्त होते हैं। मेरा मुँह खुलते ही ठाकुर मेरा समस्त भाव समझ गए, इसलिए मन्द-मन्द हँसते हुए कहने लगे– **"स्वयं भगवान ही तत्त्व हैं। भगवान के भाव का, कार्य का और लीला का क्या अन्त है? तत्त्व अनन्त हैं। इन तत्त्वों को फिर क्या साधनादि करके प्राप्त किया जा सकता है? लाखों जन्म कठोर साधन-भजन में देह पतन करके भी इन तत्त्वों में से एक भी कोई जान नहीं पाता। ये सब तो साधन-सापेक्ष नहीं साधनातीत हैं, एकमात्र भगवान की कृपा से ही ये सब तत्त्व प्राप्त होते हैं। साधना द्वारा इसे प्राप्त करना असंभव है। उनकी कृपा से पलभर में भी सब हो सकता है। जीव मुक्त होकर एकमात्र भगवान की कृपा से ही लीला तत्त्व में प्रवेश कर सकता है। यही परतत्त्व है।"**

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर मुझे उसका अभिप्राय समझ में आया। फिर कुछ बात न करके नाम-जप करने लगा।

नवीन तिलक : श्रीअद्वैत प्रभु द्वारा संस्कार

{बंगला सन् 1297, श्रावण 19, रविवार। **(3 अगस्त, सन् 1890 ई॰)**}

श्रीवृन्दावन में आकर, इस बार ठाकुर को नए स्वरूप में देख रहा हूँ। ठाकुर

का अभिप्राय क्या है, पता नहीं; उद्देश्य क्या है, वह भी समझ नहीं आता। उनके कार्य-कलाप के सम्बन्ध में पूछने का अधिकार ही मुझे कहाँ है? स्वयं दया करके, ठाकुर जब हम लोगों के साथ हिल-मिलकर बातचीत करते हैं, तभी सुयोग मिलने पर मात्र दो-एक विषय में पूछकर सन्देह का परीक्षण कर लेता हूँ। इतने समय से ठाकुर को जैसा देखता था, अब उनका वैसा रूप नहीं हैं। अब वे सहज में मन्दिर जाकर मूर्ति को साष्टांग प्रणाम करते हैं; पाषाण-मूर्ति के सामने रखी खाद्य-सामग्री को प्रसाद मानकर खाते हैं; गले में विभिन्न प्रकार की मालाएँ हैं, फिर द्वादश अंगों में गोपी चन्दन द्वारा तिलक लगाए रहते हैं। सीधे शब्दों में कहें तो अब उन्होंने वैष्णवों के ही समस्त आचरण का अनुसरण कर लिया है। इस विषय में समस्त बातें पूछने की इच्छा होती है; किन्तु साहस नहीं होता।

जैसा भी हो, आज भोजन के बाद, ठाकुर से पूछा– 'श्रीवृन्दावन में वास करने से ही क्या ऐसा तिलक लगाना होता है? आपको पहले कभी माला-तिलक धारण करते देखा नहीं। आपने कहा था, हमारा कोई सम्प्रदाय नहीं है, किन्तु तिलक तो वैष्णव लोगों की तरह ही है।' ठाकुर ने कहा– **वह ठीक है। मैं जब श्रीवृन्दावन में आया, तिलक धारण करने का आदेश हुआ। तब किस प्रकार तिलक लगाऊँगा, सोचने लगा। किसी सम्प्रदाय-विशेष का चिह्न नहीं लूँगा निश्चय करके, एक नए प्रकार का तिलक लगाया। मेरे इस नवीन तिलक को देखकर वैष्णव बाबाजी लोगों ने बड़ा आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया। एक दिन गौर शिरोमणि जी ने आकर मुझसे कहा– "प्रभु, इस प्रकार का तिलक क्यों किये हैं, समझ नहीं पा रहा हूँ। इस प्रकार का तिलक तो किसी भी सम्प्रदाय में देखा नहीं! दया करके इस तिलक का तात्पर्य मुझे बताइए।" मैंने उनसे कहा, 'हमारा कोई सम्प्रदाय नहीं है; इसलिए मोहम्मद का अर्धचन्द्र, यीशु खीष्ट का क्रॉस एवं महादेव का त्रिशूल लेकर, यह एक नए प्रकार का तिलक किया है।' शिरोमणि जी ने कहा– "आप सभी कर सकते हैं, किन्तु आप जो करेंगे उसका अनुकरण सैकड़ों लोग करके एक सम्प्रदाय का गठन करेंगे। इसलिए शास्त्र की व्यवस्था के अनुसार ही क्यों नहीं करते? नवीन सम्प्रदाय फिर क्यों खड़ा करोगे? हमारा विनयपूर्वक अनुरोध है आप यह तिलक त्यागकर यथारीति तिलक धारण करें!" मैंने शिरोमणि जी की बात सुनकर कहा– 'इस विषय में जो कर्त्तव्य निश्चित होगा शीघ्र ही आपको पता चल जाएगा।' बाद में एक दिन श्रीअद्वैत प्रभु ने इस प्रकार तिलक दिखाकर मुझसे कहा– "तुम इस प्रकार तिलक करो।" अद्वैत प्रभु इस प्रकार ही तिलक करते थे। उनके आदेश के अनुसार ही मैं इस प्रकार**

तिलक कर रहा हूँ।

श्रीवृन्दावन में साम्प्रदायिक भाव

मैंने कहा, "श्रीवृन्दावन में आप जब पहुँचे, माला-तिलक न देखकर बाबाजी लोग गड़बड़ नहीं करते थे? इन लोगों का भाव देखकर लगता है, साम्प्रदायिक कट्टरता इनमें बहुत अधिक है। अन्य वेशधारी साधुओं को भी ये लोग गुरुत्त्व नहीं देते, उन्हें साधु ही नहीं मानते हैं। जो लोग माला-तिलक धारण नहीं करते, उन्हें अपवित्र समझते हैं। मैं जितने दिन तक मुण्डन कराकर चोटी नहीं रखा था, और जितने दिन तक माता ठाकुरानी ने मेरे गले में कण्ठी नहीं पहनाई थी, उतने दिन तक वैष्णव-बैरागी लोग मुझे प्रसन्न दृष्टि से नहीं देखते थे; अब मेरे इस मुण्डित मस्तक पर चोटी और गले में कण्ठी को देखकर वे लोग कहते हैं, 'अहा, कितना सुन्दर रूप है, अंग से ज्योति फूट रही है।' किन्तु, मैं अपना रूप एक बार जब आईने में देखता, दुबारा फिर देखने की इच्छा नहीं होती; मुण्डित मस्तक पर चोटी इतनी भद्दी दिखती है।"

ठाकुर मेरी बात सुनकर खूब हँसे; फिर कहने लगे– **वेश लिए बिना यहाँ रहना ही बड़ा कठिन हो जाता है। मेरे इस गेरुए को छुड़वाने के लिए उन लोगों ने कितना प्रयास किया था! यहाँ तक कि गौर शिरोमणि जी के द्वारा भी कितना अनुरोध करवाए थे। एक दिन शिरोमणि जी के साथ भागवत सुनने गया था। सभी बैठकर भागवत सुन रहे थे, एक व्यक्ति ने नाली के गंदे पानी में कुछ गोबर घोलकर ऊपर से मेरे सिर पर गिराया। पास में शिरोमणि जी बैठे थे सारा पानी उनके ऊपर ही गिर गया। वे सब समझ गए, फिर मुझसे बोले, "देख लिया प्रभु, इन लोगों का कर्म? चलिए, अब इस स्थान पर नहीं रहना!" यह कहकर वे मुझे लेकर चले आए। वैष्णव वेश न देखकर यहाँ पर बाबाजी लोग ऐसा ही सब व्यवहार करते हैं।**

यह बात सुनकर मुझे लगा, 'इतने समय से ठाकुर यहाँ पर आए हुए हैं; इन दिनों के मध्य न जाने और भी कितने ही अत्याचार इन लोगों ने ठाकुर के ऊपर किया है!' बात-ही-बात में ठाकुर के मुख से कभी-कभी ये सब बातें हठात् निकल पड़ती हैं, इसी से एकाध घटना का पता चल जाता है, अन्यथा इन सब बातों को जानने का कोई उपाय नहीं है। जो भी हो, दामोदर पुजारी और श्रीधर आदि से पूछने पर भी हो सकता है कुछ-कुछ खबर मिल सके, ऐसा सोचकर मैं कुछ देर बाद नीचे आकर उन लोगों से पूछा– "ठाकुर जब श्रीवृन्दावन में आए थे, तब यहाँ

के लोगों ने ठाकुर को नीचा दिखाने के लिए क्या किसी प्रकार का प्रयास किया था?" उन्होंने मुझसे जो सब बातें कही, सुनकर मैं अवाक् रह गया। उनमें से मात्र एक ही विषय को यहाँ लिख रखा हूँ, घटना इस प्रकार है–

दर्शन में विरोधी प्रभुसन्तान को उत्कट शिक्षा

श्रीवृन्दावन में पहुँचकर ठाकुर ब्रजवासी दामोदर पुजारी के कुंज में ठहरे। कुछ दिन बाद बोले– **कल सबेरे गोविन्दजी का दर्शन करने जाऊँगा।** ठाकुर के ऐसा कहते ही सभी जगह यह बात फैल गई। श्रीवृन्दावन में बहुत कोलाहल मच गया। हवा से भी पहले यह संवाद प्रभुपाद के दरबार में पहुँचा। सबसे प्रभावशाली सम्मानित वैष्णव नेता एक प्रभुसन्तान उत्तेजित होकर बोल उठे, "यह क्या? ऐसे ही मन्दिर जाएगा? आकर हम लोगों का दर्शन किया नहीं, अनुमति ली नहीं। उसको तो जानते हैं। इतने सहज में ही वह मन्दिर जाएगा? अच्छा, देखा जाएगा।" यह कहकर वे तीन-चार प्रभुसन्तानों के साथ समस्त वैष्णव समाज को बुलवाकर एक बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया। प्रभुपाद ने विरक्तिपूर्वक सबसे कहा, "अद्वैत परिवार का कुल को कलंकित करने वाला, जाति-नाशक, म्लेच्छाचारी एक गोसाँई इस समय श्रीवृन्दावन में आया है। सनातन धर्म-विरोधी ब्राह्मधर्म का प्रचार करके हजारों लोगों को वह धर्मभ्रष्ट कर चुका है। दीर्घकाल अनाचार में बिताकर अब गेरुआ पहनकर संन्यासी के वेश में वह वृन्दावन में आया है। हमारे साथ भेंट किये बिना, अनुमति माँगने की उपेक्षा करके कल वह गोविन्दजी के दर्शन के लिए मन्दिर जाने का साहस कर रहा है। अब उसको मन्दिर में प्रवेश करने देना है कि नहीं?" प्रभुपाद का प्रश्न सुनकर वैष्णव बाबाजी लोग तुरन्त चीत्कारने लगे और सभी उत्तेजित होकर बोले, "यह कभी नहीं होगा। हम लोग रोकेंगे।" इस निर्णय से सन्तुष्ट न होकर प्रभुपाद ने कहा, "केवल रोकने से नहीं होगा। मन्दिर में प्रवेश करने से द्वार पर ही विशेष रूप से अपमानित करके भगा देंगे।" गोविन्दजी के पुजारी को भी यह आदेश दिया गया। दो-चार अत्यन्त उदासीन वैष्णव के अतिरिक्त सभी इस कार्य में खूब उत्साह प्रकटकर अपने-अपने कुंज में चले गए।

रात्रि भोजन के बाद प्रभुसन्तान गहरी नींद में थे, अचानक उत्पात हुआ। उन्होंने स्वप्न देखा– एक भयानक जंगली वाराह ने गर्जन करते-करते दौड़ते हुए आकर प्रभुसन्तान पर तीव्र गति से आक्रमण किया। चोट-पर-चोट खाकर प्रभुपाद की नींद टूट गई; 'उँह उँह' करते-करते वे जाग उठे। बाद में, कुछ देर बैठकर हाथ-मुँह रगड़कर पुनः सो गए एवं नींद लग गई। कुछ क्षण बीतते ही फिर वही

जंगली सूअर भीषण शब्द करते-करते प्रभुजी के ऊपर टूट पड़ा एवं धक्के-पर-धक्के मारकर उनको अस्थिर कर दिया। प्रभु तब 'हाय हाय' चीत्कार करते-करते जाग उठे। कुछ क्षण अस्थिर अवस्था में रहकर फिर सो गए। इस बार अब वैसी निद्रा नहीं रही। थोड़ी झपकी आते ही प्रभुपाद ने देखा– स्वयं बलदेवजी वाराह मूर्ति धारण करके भयंकर गर्जन से चारों दिशा को कँपाते हुए भयंकर दाँत दिखाते हुए तीव्र गति से उनको लक्ष्य करके आगे आ रहे हैं। क्षणभर में वे प्रभुजी के ऊपर टूट पड़े; बार-बार घसीटते हुए और कुचलते हुए प्रभुपाद के सर्वांग को दबाकर, मुख से छाती मसलकर कहने लगे– "तेरा इतना साहस! गोसाँई को मन्दिर जाने से रोकेगा? जानता नहीं वे कौन हैं? उनको सामान्य लोग समझ रहा है? आज तेरा वध करूँगा।" प्रभुजी की तन्द्रा दूर हो गई; जागृत सज्ञान अवस्था में वे वाराहदेव का बारम्बार गर्जन सुनने लगे। कड़े दबाव से उनकी श्वास रुद्ध होने लगी, करवट बदलने का भी सामर्थ्य नहीं रहा। बाद में वे चीत्कार करते-करते उठे एवं धीरे-धीरे श्वास लेकर क्रमशः स्वस्थ हुए। तब वे सोचने लगे, 'अब क्या करूँ? इस अपराध से कैसे रक्षा पाऊँ?' श्रीवृन्दावन में श्रीमत् गौर शिरोमणि जी को सभी सिद्ध महापुरुष मानकर विश्वास करते हैं। प्रभुसन्तान उसी समय रात्रि में ही उनके पास जा पहुँचे; उनसे बिना कुछ छिपाए सभी विवरण विस्तार से कहकर, शरीर के विभिन्न स्थानों पर वाराह के प्रहार का चिह्न दिखाकर बोले, "अब हमारा क्या कर्त्तव्य है? कृपा करके बोलिए।" शिरोमणि जी ने कहा, "प्रभु, आपने भयंकर दुःसाहस किया था। इस प्रकार के संकल्प से भी भयानक अपराध होता है। प्रातः होते ही आप गोस्वामी प्रभु के पास जाकर क्षमा के लिए प्रार्थना कीजिए एवं सम्मान के साथ आदरपूर्वक उन्हें गोविन्दजी के मन्दिर में ले जाएँ!" अगले दिन प्रातःकाल प्रभुसन्तान ने वही किया। श्रीगोविन्दजी का दर्शन करके ठाकुर भावावेश में अचेत हो पड़े; तब ठाकुर की उस अवस्था को देखकर विद्रोही दल बहुत ही लज्जित होकर पछताने लगा। बाद में सभी लोग बड़े आनन्द के साथ ठाकुर को लेकर हमारे कुंज में आए। ऐसा लगता है, इस प्रकार कोई असाधारण घटना न होने से इतने कम समय में इस स्थान पर ठाकुर का इस प्रकार गौरव और ऐसी प्रतिष्ठा असम्भव थी।

साधक का सुरापान क्या है?

आज ठाकुर अपराह्न के समय आसन छोड़कर उठे नहीं। ठाकुर के पास बैठकर हम लोग विभिन्न विषय में प्रश्न करने लगे। मैंने पूछा– हम लोगों के लिए तो नशा करना बिल्कुल ही निषिद्ध किया गया है, किन्तु साधु-संन्यासी लोग तो खूब नशा करते हैं। शास्त्र में क्या मादक सेवन निषेध है?

ठाकुर ने कहा– **मादक सेवन सम्पूर्ण रूप से निषिद्ध है; शास्त्र में धर्मार्थियों के लिए मादक सेवन की व्यवस्था कहीं भी नहीं है। जो लोग हमेशा पहाड़ों में घूमते रहते हैं, उन्हीं स्थानों पर रहकर साधनादि करते हैं, उन्हें बहुत शारीरिक कष्ट सहना पड़ता है। विभिन्न स्थानों पर सर्दी-गर्मी आदि में शरीर को स्थिर रखने के लिए उनके पक्ष में मादक सेवन का प्रयोजन होता है; किन्तु वह केवल शरीर की रक्षा के लिए ही है, उससे साधना में कोई सहायता नहीं मिलती है; बल्कि बहुत अनिष्ट होता है, चित्त अस्थिर होता है। योग-शास्त्र एवं आयुर्वेद में मादक के प्रयोग को बहुत बड़ा दोष बताया गया है। केवल शरीर रक्षा के लिए औषधि के रूप में जो लोग उसका सेवन करेंगे औषधि का प्रयोजन शेष होते ही फिर छोड़ देंगे– यही व्यवस्था है।**

मैंने कहा– क्यों? देखते तो हैं तान्त्रिक साधक लोग खूब शराब पीते रहते हैं। शराब न पीने से मानो साधना ही नहीं होती है। वीराचारी लोग तो बहुत शराब पीते हैं, मांस खाते हैं, ये तो सभी जानते हैं।

ठाकुर ने कहा– **शराब पीकर साधना करने की व्यवस्था वीराचारियों के लिए भी नहीं है। फिर भी स्वयं की परीक्षा करने के लिए वीर लोग उसका उपयोग कर सकते हैं, इतनी ही बात है। तन्त्र में जिस अवस्था को 'वीर' कहते हैं, वह तो बहुत सहज नहीं है।**

मैंने पूछा– किस अवस्था में तान्त्रिक साधक लोग 'वीर' होते हैं?

ठाकुर ने कहा– **वीर सहज में नहीं होते हैं; समस्त पशुभाव विनष्ट होने से ही वीर होते हैं। काम-क्रोधादि समस्त रिपु जब बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं, तभी वीराचारी हो सकते हैं।**

मैंने कहा– शास्त्र में सुरापान की व्यवस्था नहीं है, आपने कहा; किन्तु तान्त्रिक लोग तो सुरापान का माहात्म्य दिखाकर कहते हैं– "पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा जावत्पतति भूतले। उत्थाय च पुनः पीत्वा, पुनर्जन्म न विद्यते।।"

ठाकुर ने कहा– **जिस सुरापान की यह व्यवस्था है, वह बाहर की सुरा नहीं है। ये सब मादक नहीं हैं। लोग इस बात को समझे बिना चक्कर में पड़ जाते हैं। भक्ति के द्वारा इस देह से ही एक प्रकार की सुरा उत्पन्न होती है; उससे भयंकर नशा होता है। उसे ही अमृत कहते हैं; उसे पीने से फिर जन्म नहीं होता।**

मैंने कहा– भक्ति से देह के भीतर किस प्रकार सुरा उत्पन्न होती है? उसको कैसे पीते हैं?

ठाकुर ने कहा— **देखो, जब हम लोगों को क्रोध आता है, तब मस्तिष्क के किसी एक विशेष स्थान पर एक प्रकार के अनुभव से उस स्थान के रक्त में कुछ अन्य प्रकार का परिवर्तन होता है। यह रक्त तब गरम होकर अस्वाभाविक अवस्था में पूरे शरीर में फैल जाता है। काम से भी ऐसा ही होता है। इस प्रकार सत्-असत् सभी भाव का मस्तिष्क के विशेष-विशेष स्थान पर, एक-एक प्रकार के अनुभव से रक्तादि में परिवर्तन होता है। वही शिरा-धमनी से होकर शरीर में सर्वत्र फैल जाता है। भाव, भक्ति, आनन्द से भी रक्त का इस प्रकार परिवर्तन होता है। भक्ति से मस्तिष्क के रक्त की जो अवस्था होती है, उसके अत्यन्त बढ़ जाने से ही वह क्रमशः गरम होकर दिव्य भाव-रस उत्पन्न करता है। वही रस धीरे-धीरे तालु के ऊपर से चूकर जीभ में आकर गिरता है, वही रस अमृत है। उसकी दो-तीन बूँद पीने से ही इतना नशा होता है कि पाँच-सात दिन सहज में बीत जाएँगे, भोजन की भी आवश्यकता नहीं होगी। उसको ही सुरा कहते हैं; उसी को पीने की व्यवस्था है। उस सुरा की मादकता इतनी अधिक होती है कि जिन्होंने नहीं पीया हैं, बताने से कुछ भी समझ नहीं पाएँगे। उसको पीते ही मनुष्य अचेत हो जाता है— शरीर बिल्कुल अचल हो जाता है; किन्तु भीतर के ज्ञान में कमी नहीं होती, जैसा है वैसा ही रहता है, केवल बाह्य-ज्ञान नहीं रहता।**

मैंने कहा— जिस अमृत की बात आपने कही है, वह पीने में कैसा लगता है? जब वह रक्त के ही किसी प्रकार के परिवर्तन से उसी का चूआ हुआ रस है, तब उसे पीने से क्या कोई अनिष्ट नहीं होता?

ठाकुर ने कहा— **इस अमृत का भिन्न-भिन्न समय में विभिन्न प्रकार का स्वाद होता है। भक्ति के सब भावों के साथ उसका योग है। जिस भाव से भक्ति होती है, स्वाद भी उसी तरह का हो जाता है— कभी नमकीन, कभी मीठा, तो कभी खट्टा-मीठा, तो फिर कभी तीखा; इस प्रकार विभिन्न स्वाद मिलता है। भक्ति का जब जैसा भाव होता है, तब वैसा ही स्वाद होता है। मैंने तो देखा है उसको पीने से कोई अनिष्ट नहीं होता; वरन् शरीर और भी स्वस्थ रहता है। उसको पीने से लम्बे समय तक भोजन न करने पर भी किसी प्रकार की दुर्बलता नहीं लगती; शरीर बलिष्ठ और स्वस्थ रहता है। उससे शरीर का बहुत कल्याण होता है, इसीलिए शास्त्र में उसे 'अमृत' कहा गया है। वही यथार्थ अमृत है।**

मैंने कहा— जिस भक्ति से वह अमृत उत्पन्न होता है, वह भक्ति कैसे प्राप्त होती है? क्या हम लोग वह अमृत प्राप्त कर सकते हैं?

ठाकुर ने कहा— **वह अमृत प्राप्त करने के लिए श्वास-प्रश्वास में खूब नाम-जप करना होगा। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर पाने से ही देखोगे धीरे-धीरे सभी प्राप्त होगा। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना ही सबसे श्रेष्ठ उपाय है।**

नाम-जप से ठाकुर की शुष्कता और ज्वाला, परमहंसजी की सान्त्वना

ठाकुर की बात सुनकर कहा— चेष्टा तो कम नहीं करता; किन्तु श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना असम्भव लगता है। नाम-जप करने से यदि आनन्द मिले, तब तो श्वास-प्रश्वास में प्रयास किया जाए। नाम-जप जितने दिन शुष्क लकड़ी की तरह नीरस रहेगा, तब तक चेष्टा करने का धैर्य ही क्यों रहेगा? नाम-जप करने से क्या उपकार हो रहा है, वह भी तो समझ नहीं आता है।

ठाकुर कहने लगे— **उपकार क्या हो रहा है, वह अभी नहीं समझोगे। केवल नाम-जप करते जाओ। धीरे-धीरे सब समझोगे। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना बहुत ही कठिन है, इसमें सन्देह नहीं है, किन्तु इसलिए छोड़ मत देना। पहले-पहले नाम-जप बहुत ही शुष्क लगता है। मुझे जब गुरुदेव ने श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने के लिए कहा, कुछ दिन प्रयास करने के बाद ही मुझे बहुत ही विरक्ति होने लगी। कारण, कुछ समझे बिना शुष्क नाम और कितनी देर किया जाएगा? कई बार नाम-जप करते-करते इतनी शुष्कता लगती कि, व्यर्थ ही जप कर रहा हूँ सोचकर छोड़ देने की इच्छा होती थी। तब एक दिन परमहंसजी ने दर्शन दिया, मैंने कहा— 'व्यर्थ में इस प्रकार नाम-जप और नहीं कर सकता। शुष्क नाम-जप करने से और क्या होगा? कुछ भी तो समझ नहीं रहा हूँ।' तब उन्होंने थोड़ा हँसते हुए मुझसे कहा— 'केवल मेरा अनुरोध मानकर नाम-जप करते जाओ। शुष्क लगता है तो लगने दो, उससे क्या है? विरक्ति लगने से भी उसमें कोई हानि नहीं है। नाम-जप करते रहो, धीरे-धीरे सब समझ पाओगे।' मैंने परमहंसजी की बात के अनुसार फिर से नाम-जप करना आरम्भ कर दिया। गया के आकाशगंगा में, बराबर पहाड़ में और विन्ध्याचल में खूब नाम-जप करके छह मास बिताये, तब थोड़ा-थोड़ा समझ आने लगा। वहाँ पर मेरी विभिन्न प्रकार की अवस्था होने लगी। तब सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ, इस विषय में भी समय-समय पर संशय होता था, तब संशय दूर करने के लिए कभी-कभी शरीर में काँटा चुभाकर देखता था, कितना कुछ किया था!**

बाद में जब दरभंगा आया, गुरुदेव ने एक दिन दर्शन दिये। उनको मैंने अपनी सभी अवस्था खुलकर बतलाई; तब उन्होंने मुझसे इतना ही कहा– 'हठयोग प्रदीपिका' एवं 'विचारसागर' ये दो गन्थ लेकर एक बार पढ़ो। मैंने पूछा– 'कहाँ मिलेगा?' उन्होंने एक दुकान का उल्लेख करके कहा– 'दरभंगा में केवल इसी दुकान में ये ग्रन्थ हैं, पाँच रुपये लेगा। जाओ, ले आओ।' गुरुजी के कथनानुसार उसी दुकान में जाकर देखा– केवल वही दो पुस्तक ही दुकान में है। मूल्य भी पाँच रुपये लिया। मैंने दोनों पुस्तकें पढ़ीं। देखा इन दोनों ग्रन्थ में जितनी अवस्थाओं की बातें लिखी हुई हैं, वे सभी मुझे प्राप्त हो गई हैं। ये सब अवस्थाएँ जब मुझे प्राप्त हुईं, सोच रहा था, मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है। ग्रन्थ पढ़ना पूर्ण होते ही गुरुदेव ने फिर दर्शन दिया। तब उनसे कहा– 'ये दोनों पुस्तक पढ़ने के लिए मुझे पहले क्यों नहीं दिये; नहीं तो फिर इतना काण्ड नहीं करता।' गुरुजी ने कहा– "नहीं, पहले देने से ठीक नहीं होता। तुम तो बड़े कट्टर लड़के हो, वह तो मैं जानता हूँ। ये ग्रन्थ पहले पढ़ लेने से तुम सोचते– इनको पढ़ने के ही संस्कार से मेरी बुद्धि गड़बड़ हो गई है। इन सब अवस्थाओं में तुम्हें यथार्थ विश्वास नहीं होता। अभी तुम अपनी अवस्था स्वयं अनुभव कर रहे हो। हजारों वर्ष पहले से ऋषि-मुनि जो सब शास्त्र लिख गए हैं, उनसे भी इन सब अवस्थाओं की पुष्टि होती है; अब मैं भी कहता हूँ, साधना द्वारा तुम्हें जो सब अवस्थाएँ प्राप्त हुई हैं, सभी सत्य हैं। अब उस विषय में तुम्हें फिर कोई संशय नहीं होगा।" अवस्था प्राप्त कर, उसकी सत्यता के प्रमाण के लिए शास्त्र देखना ही ठीक है। इससे शास्त्र में भी अभ्रान्त विश्वास होता है। इतना कहकर ठाकुर थोड़ा रुक गए; बाद में फिर कहने लगे– **बहुत लोग मुझसे विभिन्न विषय में प्रश्न करते हैं; किन्तु उसका उत्तर देने में मुझे अच्छा नहीं लगता। एकमात्र नाम का श्वास-प्रश्वास में जप कर सकने पर ही धीरे-धीरे सब अवस्थाएँ प्रकट होती रहेंगी। तब उसके प्रमाण के लिए शास्त्र देख ही लेना चाहिए। शास्त्र ही यथार्थ अवस्था के साक्ष्य का काम करेगा। जो कुछ प्रत्यक्ष करोगे, ठोक-बजाकर देख लेना। तुम लोग तो थोड़ा कुछ प्रत्यक्ष होते ही विश्वास कर लेते हो; किन्तु मेरे साथ वैसा नहीं है। मैं जब तक दस इन्द्रियों द्वारा तीन बार ठोक-बजाकर समझ नहीं लेता कि सत्य है या नहीं, तब तक उसे सत्य मानकर ग्रहण नहीं करता। वास्तव में, दस इन्द्रियों द्वारा ठोक-बजाकर जिसको सत्य मानकर ग्रहण करेंगे, उसी पर विश्वास किया जाता है। किसी विषय को**

केवल देखकर, सुनकर या स्पर्श करके ही तुरन्त सत्य मानकर ग्रहण मत करो; समस्त ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय द्वारा तीन बार ठोक-बजाकर सत्य समझो, बाद में फिर शास्त्र देखो। उसमें भी यदि प्रमाण मिले तभी निःसंशय हो सकोगे। अन्यथा ठीक नहीं होता।

मैंने कहा– सुना है, सभी देवी-देवता, विशेषतः ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि पंच-देवताओं को सन्तुष्ट किये बिना मुक्ति नहीं मिलती; तो क्या इन सभी लोगों की पूजा करनी होगी?

ठाकुर ने कहा– **सभी का खूब सम्मान करना; अनादर, अमर्यादा किसी की भी नहीं करना। उनकी पूजा न करने से भी चलेगा। पूजा द्वारा केवल उनका ही लोक प्राप्त होता है, मुक्ति नहीं होती।**

मैंने फिर कहा, पूजा द्वारा उनको सन्तुष्ट न किया जाए, तो रास्ते में वे लोग विघ्न तो उत्पन्न नहीं करेंगे?

ठाकुर ने कहा– **एकमात्र भगवान की पूजा से ही सब होता है। जैसे वृक्ष की जड़ में पानी देने से शाखा-प्रशाखा, फूल-पत्ते सभी में वह पानी जाता है, उसी प्रकार एकमात्र भगवान की पूजा करने से सभी को उससे सन्तोष होता है, आनन्द होता है।**

मेरे और हरिमोहन के वृन्दावन त्याग के सम्बन्ध में ठाकुर का कथन

{बंगला सन् 1297, श्रावण 20-21, सोमवार-मंगलवार।**(4-5 अगस्त, ई॰सन् 1890)**}

कुछ दिनों से मेरे सिर-दर्द का रोग बढ़ गया है। ब्रह्मचर्य ग्रहण करने के बाद से रात्रि का भोजन नहीं करता हूँ। लगता है उसी के कारण यह रोग फिर से हो गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमानुसार गुरु के प्रसाद के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दूसरी बार ग्रहण नहीं करते। लगता है, इसी कारण से ही आज कुछ दिनों से ठाकुर प्रत्येक दिन मुझे रात्रि में दूध-रोटी का प्रसाद दे रहे हैं। ठाकुर के आहार की मात्रा निर्दिष्ट है; मुझे प्रसाद देना है, इसके लिए वे परिमाण से अधिक कभी ग्रहण नहीं करते हैं, अपने आहार के ही अंश से दिया करते हैं। कदाचित् ऐसी ही व्यवस्था है। अपने इस रोग के सम्बन्ध में ठाकुर को कुछ भी पता चलने नहीं दिया, क्योंकि पता चलते ही तो वे मुझे बड़े भैया के पास जाने के लिए कहेंगे।

ठाकुर की अनुमति पाकर ही श्रीयुत् योगजीवन नौकरी की प्रत्याशा से

भागलपुर गए हैं। श्री मथुर बाबू ने उन्हें भरोसा देकर चिट्ठी लिखी थी। स्वामीजी (हरिमोहन) भागलपुर में बहुत दिन थे। वे भी अब अविलम्ब वहाँ जाने के लिए व्यग्र हो रहे हैं। सतीश को भी ठाकुर बार-बार मातृ-सेवा के लिए देश जाने को कह रहे हैं, किन्तु सतीश किसी भी तरह से ठाकुर का संग छोड़कर नहीं जाने की जिद कर रहे हैं। ठाकुर के साथ परम आनन्द में दिन व्यतीत हो रहे थे, किन्तु मस्तिष्क पीड़ा की तीव्रता से बीच-बीच में बड़ा ही अवसन्न हो जाता हूँ।

आज नित्यकर्म समाप्त करके ठाकुर के पास जाकर बैठते ही ठाकुर ने मेरी ओर देखकर कहा– **देख रहा हूँ, तुम्हारा शरीर बहुत ही कातर हो गया है; तुम्हें आधा सेर दूध पीने की आवश्यकता है। नहीं तो खूब अस्वस्थ हो जाओगे। और रात्रि में नियमित रोटी खाओ। ब्रह्मचर्य के सब नियम ठीक-ठीक मानकर चलना पहले-पहल सहज नहीं है; धीरे-धीरे अभ्यास करना होता है। शरीर के लिए जो आवश्यक है वह नहीं करने से कैसे होगा? शरीर ठीक नहीं रहने से कुछ भी नहीं कर पाओगे। मस्तिष्क का रोग बड़ा खराब है। मस्तिष्क को लेकर ही सब काज-कर्म हैं। वह खराब होने से जीवन तो व्यर्थ हो जाता है। बल्कि कुछ समय के लिए तुम अपने भैया के पास जा सकते हो। फैजाबाद बहुत अच्छा स्थान है। मस्तिष्क की अस्वस्थता भी दूर होगी, फिर साधना में कोई क्षति नहीं होगी। अपने भैया के संग से उपकार ही मिलेगा। शरीर थोड़ा स्वस्थ होने से फिर चले आना।**

ठाकुर की बात सुनकर समझ गया, शीघ्र ही मुझे फैजाबाद जाना होगा। स्वामीजी (हरिमोहन) मथुरा से स्वस्थ होकर यहाँ आ गए हैं। रोग की यन्त्रणा से अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने मुझसे कहा– "भाई, भागलपुर में अच्छा था, क्यों मेरी ऐसी दुर्मति हुई, यहाँ आ गया? देह का यह क्लेश तो अब सहन नहीं होता। किसी तरह थोड़ा स्वस्थ और सबल होते ही मैं फिर भागलपुर जाऊँगा। धर्म-कर्म तो सभी जगह हो सकता है, बल्कि आत्मीय स्वजनों के पास रहना सुरक्षित है। बात-बात में आज स्वामीजी का अनुतापित कथन मैंने ठाकुर से कहा। सुनकर ठाकुर कहने लगे– **तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुए बिना कर्म शेष नहीं होता है। जोर लगाकर क्या कहीं कर्म क्षय किया जाता है? हरिमोहन को मैंने बार-बार पहले ये सब कर्म शेष कर लेने के लिए कहा था। अब देखो, संन्यास लेकर पछतावा तक कर लिया है। इस अनुताप से उसका सब कुछ तो नष्ट हो गया है। अब रीति अनुसार कर्म शेष किये बिना आने से हरिमोहन किसी भी तरह से स्थिर नहीं हो पाएगा। और कुछ भी नहीं होगा।**

स्वामीजी ने भी ठाकुर की ये सब बातें सुनकर शीघ्र ही यह स्थान त्याग करने का निश्चय कर लिया।

वैराग्य, वासना और वैध कर्म

मैंने ठाकुर से पूछा– "कर्म शेष न करने से मुक्ति नहीं होती आप कहते हैं, किन्तु ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिसका अवलम्बन करके मनुष्य कर्म को काटकर मुक्त हो सके?"

ठाकुर ने कहा– **हाँ, है क्यों नहीं? तीव्र वैराग्य द्वारा भी मुक्त हुआ जा सकता है; किन्तु वैसा वैराग्य है कहाँ? जब मन को विषय से सम्पूर्ण रूप से भीतर की ओर आकर्षित कर सको, और प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर सको, तभी आशा की जा सकती है। एक भी श्वास या प्रश्वास व्यर्थ होने से यह नहीं होगा; क्योंकि उस छिद्र को पाते ही कितने शत्रु भीतर प्रवेश कर सकते हैं! इस निष्काम मुक्ति के पथ में कितने मनुष्य, गन्धर्व, देवतादि विभिन्न प्रकार से विघ्न उत्पन्न करेंगे; सभी इस पथ पर कठोर परीक्षा लेते हैं। वासनाहीन होकर तीव्र साधना के बिना इस पथ पर चला नहीं जाएगा। इसीलिए वैध कर्म की व्यवस्था है। वैध कर्म द्वारा भोग शेष कर लेना ही सहज होता है।**

मैंने कहा– जो कर्म शेष करने की बात कहे हैं, वह कर्म किस प्रकार का है? नौकरी करना, संसार-गृहस्थी चलाना ही क्या कर्म है?

ठाकुर ने कहा– **कर्म का अभिप्राय गृहस्थ होना या नौकरी करना नहीं है। जिसकी जिस विषय में आसक्ति है, उसका कर्म उसी में ही है।**

मैंने पूछा– वैध भोग की बात जो कहे हैं, वह किस प्रकार का है? शास्त्र के अनुसार भोग करना ही तो वह वैध भोग है?

ठाकुर ने कहा– **वैध भोग क्या है उसे समझना बड़ा ही कठिन है। शास्त्र के अनुसार भोग तो ठीक ही है; किन्तु शास्त्र में भोग काटने के लिए प्रकृति-भेद से भिन्न-भिन्न कर्म की व्यवस्था है। जिसकी जैसी प्रकृति है उसके लिए उसी के अनुसार कर्म की व्यवस्था है। इस प्रकार व्यवस्था के अनुसार कर्म का भोग ही वैध भोग है। शास्त्र देखकर प्रकृति के अनुरूप व्यवस्था ठीक कर लेना बड़ा ही कठिन काम है। प्रकृति के अनुरूप कर्म विधि अनुसार कर लेने से धीरे-धीरे भोग कट जाता है।**

मैं– शास्त्रोक्त लक्षण द्वारा क्या प्रकृति को नहीं जाना जा सकता है?

ठाकुर– **प्रकृति को जानना क्या इतना सहज है? शास्त्र पढ़कर या**

अन्य किसी प्रयास के द्वारा उसको कुछ नहीं जाना जा सकता।

मैं— तो फिर अन्दाज से किस प्रकार कर्म किया जाएगा?

ठाकुर— **स्वयं की प्रकृति कभी कोई समझ नहीं सकता। इसीलिए सद्गुरु का आश्रय लेना होता है; सद्गुरु, जिसकी जैसी प्रकृति स्पष्ट रूप से अनुभव करते हैं, उस प्रकृति के अनुसार कर्म की व्यवस्था कर देते हैं। बिना विचार किये उनके आदेशानुसार कर्म करते जाने से ही सहज में कर्म शेष हो जाता है। इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।**

मैं— अभी तक मेरा मानना था कि नौकरी करना, गृहस्थ होना ही कर्म है।

ठाकुर ने कहा— **वासना में ही कर्म है; वासना की निवृत्ति ही कर्म का उद्देश्य है। वैध भोग द्वारा ही वासना शेष करनी होती है। जिसकी वासना जिस ओर है, उसका कर्म भी उसी ओर है। केवल गृहस्थी करना या नौकरी करना ही कर्म नहीं है।**

मैंने पूछा— "धर्म प्राप्ति के लिए घर-बार, माता-पिता को छोड़कर जो लोग आते हैं, वही धर्म प्राप्ति भी तो उसकी वासना है। अतः वही तो उसका कर्म है ना?"

ठाकुर ने कहा— **वो तो है ही, फिर भी यदि केवल धर्म की ओर वासना रहे, तब तो वह निर्विघ्न उसको कर सकेगा। और यदि अन्य ओर भी वासना रहती है तो फिर स्थिर होकर धर्मानुष्ठान नहीं कर सकेगा। जिस परिमाण में अन्य ओर वासना रहेगी, उसी परिमाण में उसको अस्थिर होना होगा, भुगतना होगा। इसीलिए अन्य वासना शेष करके आना होता है।**

मैं— कर्म जिससे शेष हो जाए, सद्गुरु तो वही करने के लिए कहते हैं; किन्तु उस प्रकार करने से कर्म शेष हुआ कि नहीं कैसे समझेंगे?

ठाकुर ने कहा— **जब देखोगे किसी ओर भी कोई वासना नहीं है, विषय के सम्पर्क में भी सब इन्द्रियाँ सम्पूर्ण अनासक्त हैं, निवृत्त हैं, तभी समझना ये सब कर्म शेष हो गए हैं।**

गोसाँईजी प्रदत्त उपवीत की शक्ति

आज मध्याह्न में सतीश ने मुझे एकान्त में ले जाकर कहा— "भाई, क्या करूँ बोलो तो? मेरी दुर्दशा तो दिनोदिन बढ़ती जा रही है। प्रायः गोसाँईजी मुझे घर जाकर माँ की सेवा करने के लिए डाँटते रहते हैं— मेरी तो उसकी बिल्कुल इच्छा ही नहीं होती। कर्म में यदि मातृसेवा है, तो क्या गोसाँईजी उसको काट नहीं सकते

हैं?” मैंने कहा– “बिल्कुल भी भोगे बिना सहज में ये कर्म काटा जा सकता तो क्या वे फिर काट नहीं देते? ठाकुर ने जो कहा है, विचार किये बिना वैसा करना ही तो अच्छा है।” सतीश ने कहा– “भाई, वह तो नहीं कर पाऊँगा। वो बात और मत बोलना। गोसाँईजी इच्छा करने से सब कुछ कर सकते हैं। केवल व्यर्थ में हम लोग को भुगवाकर मार रहे हैं। मैं उनकी अद्‌भुत शक्ति देखकर अवाक् हो गया हूँ। जानते तो हो मैं कट्टर ब्राह्मसमाजी था। सहज में कुछ भी विश्वास नहीं करता था; किन्तु गोसाँईजी की अद्‌भुत शक्ति देखकर तो अविश्वास करने का मेरे पास कारण नहीं है। कुछ दिन पहले की एक घटना सुनो, समझ जाओगे।” इसके बाद सतीश मुझसे कहने लगे– “भाई, जनेऊ त्यागकर ब्राह्मधर्म में दीक्षा ली थी। वह सब बात तो तुम सभी जानते हो। कुछ दिन हुआ पिता की मृत्यु हो गई है। माँ ने मुझे घर आने के लिए संवाद भेजा है; किन्तु पिता की मृत्यु का संवाद सुनकर न जाने मैं कैसा हो गया। सभी छोड़-छाड़कर तुरन्त ही पैदल श्रीवृन्दावन की यात्रा की। रास्ते में कितनी परेशानियों का सामना करना पड़ा, कितना भोग भुगतना पड़ा, कह नहीं सकता। बहुत कष्ट के बाद श्रीवृन्दावन आया। तब प्रतिदिन ही गोसाँईजी के साथ झगड़ा होता। यहाँ आते ही गोसाँईजी ने मुझसे कहा– **‘तुम्हारे पिता की प्रेतात्मा सब समय तुम्हारे ऊपर रहती है, जाकर शास्त्र के अनुसार श्राद्धादि करो। उससे उनका भी विशेष कल्याण है; कल्याण तो होगा, तुम्हारा भी उपकार होगा।’** मैंने गोसाँईजी से कहा– जनेऊ त्यागकर मैं ब्राह्म हुआ था। शास्त्र के अनुसार श्राद्ध कैसे करूँगा? गोसाँईजी ने कहा– **‘जनेऊ फिर से ग्रहण करो, तब फिर हो जाएगा।’** मैंने कहा– यदि ग्रहण ही करूँगा, तो फिर त्याग क्यों किया था? जनेऊ का यदि वैसा कोई गुण ही होता, तो फिर क्या उसको त्याग करता– या त्याग कर पाता? गोसाँईजी ने मेरी यह बात सुनकर बड़ी दृढ़ता के साथ कहा– **अच्छा, जनेऊ का गुण नहीं है! उस भाव से जनेऊ मिला नहीं है, तभी; वैसे भाव से ब्राह्मण जनेऊ देता तो सामर्थ्य था जो तुम त्याग करते? उपवीत का गुण देखोगे? अच्छा मैं तुम्हें जनेऊ देता हूँ, तुम त्याग करो देखता हूँ!** यह कहकर कुछ क्षण बाद गोसाँईजी ने मेरे गले में जनेऊ पहनाकर कहा– **सतीश, इस जनेऊ को अब तुम फेंको तो देखूँ।** भाई, गोसाँईजी के जनेऊ देने से तुरन्त ही उसे मैं फेंक दूँगा, मन में पहले से ही सोचकर रखा था– जिद भी मेरी बहुत थी। गोसाँईजी जब यह बात कहकर मुझे जनेऊ दिये, मैं उसको उसी क्षण फेंकने के लिए जैसे ही जनऊ को स्पर्श किया, मेरी न जाने कैसी अवस्था हो गई, सारा शरीर बारम्बार सिहरने लगा, भीतर से वेग के साथ गायत्री-मन्त्र उठने लगा, भीतर में किसी प्रकार एक अपूर्व आनन्द की स्फूर्ति हुई। मेरा शरीर अवसन्न हो

गया, तब मैं रोने लगा, बारम्बार गोसाँईजी को प्रणाम करने लगा, इसीलिए कहता हूँ भाई, मैं तो बहुत बार देखा हूँ, गोसाँईजी सब कुछ कर सकते हैं। फिर हम लोगों को क्यों व्यर्थ में भुगता रहे हैं?" सतीश की बात सुनकर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। ठाकुर से ब्रह्मचर्य मिलने के बाद से मैं स्वयं ही जीवन में जिन सब अद्भुत घटनाओं को अनुभव कर रहा हूँ, उसका स्मरण करके सोचा– 'ये फिर क्या है?' अपनी अद्भुत अनुभुतियों की बात को गुप्त रखकर सतीश से कहा– "यह सब देखकर ही तो ठाकुर की किसी बात को अस्वीकार करने का साहस नहीं होता है।"

सतीश ने अपने रिपु की उत्तेजना के सम्बन्ध में जिन सब शोचनीय दुर्दशा की बात कही, उसे सुनकर विस्मित हो गया हूँ। मैं उसकी दुरावस्था का विवरण सुनकर दुःखित होकर चुपचाप बैठा रहा। कुछ देर बाद मैं ठाकुर के पास गया। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने कहा– **"सतीश ने अपनी जिन सब अवस्थाओं की बात तुमसे कही है, उससे समझा जाता है, यहाँ पर अब उसका रहना ठीक नहीं है। उससे कह दो, अन्यत्र जाकर रहे।"**

मैंने ठाकुर की बात आकर सतीश से सब कह दी। सतीश मेरे ऊपर विरक्त होकर, धमकाकर बोले– "जा जा, बेटा, गोसाँईजी मुझसे नहीं बोल सकते?" तब मैंने आकर, ठाकुर से यह बात कही तो ठाकुर ने सतीश को बुलाकर कहा– **"सतीश तुम्हारे भीतर की जो अवस्था है, स्त्री लोगों से दूर रहना ही अच्छा है। यहाँ पर जब स्त्रियाँ रहती हैं, तब तुम अन्यत्र जाकर रहो। भोजनादि यहाँ से करके जाओ, रहने का बन्दोबस्त अन्य कहीं कर लो।"**

ठाकुर की बात सुनकर सतीश एकदम उछल उठे। बड़े साहस के साथ कहने लगे– "क्यों, मैं क्यों जाऊँ? स्त्रियाँ सब यहाँ से चले जाएँ। उन लोगों को अन्यत्र जाने के लिए क्यों नहीं कहते हैं? संन्यासी के आश्रम में स्त्रियाँ क्यों रहेंगीं? मैं कभी यहाँ से नहीं जाऊँगा।" सतीश यह बात कहकर ठाकुर के उत्तर की प्रतीक्षा न करके नीचे चले गए। माता ठाकुरानी ने कहा– "सतीश की माँ की जो भयंकर अवस्था है, कहा नहीं जाता। समय-समय पर उनकी ज्वाला की आँच मेरे छाती में आकर लगती है। उसी से मैं अस्थिर हो पड़ती हूँ।" ठाकुर ने कहा– **"पिता का श्राद्ध किये बिना इस प्रकार से आए हैं, इसीलिए विभिन्न प्रकार के उत्पात भोग रहे हैं।"**

श्राद्ध से प्रेतात्मा की यन्त्रणा की शान्ति

तब मैंने पूछा, श्राद्ध से क्या यथार्थ में ही प्रेतात्मा को क्लेश से शान्ति मिलती है? ठाकुर ने कुछ-एक दिन पहले यहाँ पर हुई एक घटना का उल्लेख

करते हुए कहा– **"एक दिन मैं यमुना के किनारे-किनारे चलकर जैसे ही कालीदह के पास पहुँचा, एक प्रेत आकर मेरे सामने गिरकर भयंकर छटपटाने लगे। मैंने उनसे पूछा– 'इस प्रकार क्यों कर रहे हो?' प्रेत ने कहा– 'प्रभु, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, अब यह क्लेश सहन नहीं कर पा रहा हूँ। सैकड़ों-हजारों बिच्छू मुझे सब समय डंक मार रहे हैं। यन्त्रणा से छटपटाकर दिन-रात मैं इधर-उधर भाग रहा हूँ। क्षणभर के लिए भी मैं छुटकारा नहीं पा रहा हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिए।' मैंने उनसे कहा– 'आपके किस पाप से यह दण्ड मिला है?' प्रेत ने चीत्कार करके रोते हुए कहा– 'प्रभु, यहाँ मैं • • • मन्दिर में पुजारी था। ठाकुर सेवा के लिए जो अर्थादि मिलता, सेवा में न लगाकर उसे मैं भोग-विलास और बदमाशी में उड़ाता था। यही मेरा सबसे बड़ा अपराध है।' मैंने उनसे पूछा– 'आपके इस भोग की शान्ति कैसे होगी?' प्रेतात्मा ने कहा– 'मेरा श्राद्ध नहीं हुआ है; श्राद्ध होने से ही इस क्लेश की शान्ति होगी। आप दया करके मेरे श्राद्ध की व्यवस्था कर दें।' मैंने कहा– 'किस प्रकार व्यवस्था करूँगा?' प्रेत ने कहा– 'अपने श्राद्ध के लिए डेढ़ हजार रुपये अपने भतीजे के हाथ में दिया था; किन्तु उसने अभी तक मेरा श्राद्ध नहीं किया है। आप दया करके उस रुपये को लेकर कुछ तो ठाकुर की सेवा में दे दीजिए और बाकी रुपये द्वारा मेरे कल्याण के लिए श्राद्ध करें। महोत्सव करने से ही मैं इस यन्त्रणा से बचूँगा।' प्रेत की बात सुनकर मैं उसी मन्दिर के वर्तमान पुजारी के पास जाकर सब बतलाया। बाद में ये सब घटना उस प्रेत के भतीजे को भी विस्तारपूर्वक बतलाई गई। भतीजा सोच रहा था कि इस रुपये की अब कोई खबर ही नहीं लेगा। जो भी हो उसने सब रुपये देकर विधि अनुसार श्राद्धादि किया। महोत्सवादि भी हुआ। बाद में उस प्रेत की यन्त्रणा की शान्ति हो गई। कुछ-एक दिन ही हुआ, यहाँ पर इस घटना को हुए।**

चीरघाट में नौका-लीला

संध्या के कुछ पहले हम लोग ठाकुर के साथ बाहर निकले। यमुना के किनारे-किनारे चलकर चीरघाट पहुँचे। वहाँ पर ठाकुर एक वृक्ष के नीचे बैठकर दूसरे छोर के बेलबाग की ओर देखने लगे, थोड़ी देर के बाद ही वे समाधिस्थ हो गए। कुछ क्षण तक स्थिर भाव से नाम-जप करके संध्या के बाद हम लोग कुंज में लौटे। कुतु तुरन्त ही एक लोटा पानी लाकर ठाकुर के चरण धोकर सीढ़ी के किनारे खड़ी हो गई। ठाकुर तमाशा करके कुतु से बोले– **'कुतु आज कितनी**

ही बिल्लियों का गू रौंदकर आ रहे हैं। पैरों में सब गू सना हुआ है।' कुतु 'ओ, अच्छा, ओ अच्छा' कहकर जैसे ही पैरों को पकड़ने गई, ठाकुर दोनों पैर हटाकर बोले– **'अरे, रुक ना, पैर में दूषित गू लगा हुआ है।'** कुतु ने कहा– 'तो रहने दो ना, उससे मुझे थोड़ी भी घृणा नहीं है। मैं रगड़कर अच्छे से साफ करके धो देती हूँ।' ठाकुर ने कहा– **'अरे तेरे हाथ में यदि गू लगेगा।'** कुतु ने थोड़ा हँसकर कहा– 'ये क्या कहते हो, तुम्हारे पैर में जो लगा हुआ है वो फिर गू कैसा?' ठाकुर फिर कुछ बोले नहीं। मैं कुतु का यह भाव देखकर अवाक् रह गया। अहा! ठाकुर के श्रीपादपद्म में जो लगा है, वह फिर क्या गू है? उससे फिर घृणा क्यों? ठाकुर के प्रति कहाँ तक श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होने से इस प्रकार का भाव स्वाभाविक होता है, मैं उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। धन्य है कुतु!

हम सभी बरामदे में आकर ठाकुर के पास बैठे हैं, कुतु ने ठाकुर से कहा– "पिताजी, यमुना के किनारे में जब हम सभी बैठे थे, तब तुम समाधि की अवस्था में 'डूबोगे नहीं, डूबोगे नहीं' कहकर खूब हँसे क्यों थे? ये बात तुमने किससे कही थी?"

ठाकुर ने कहा– **'और किससे बोलूँगा?'** कुतु ने कहा– 'खुलकर क्यों नहीं कहते?' ठाकुर ने कहा– **"अरे यमुना के किनारे जाकर बैठते ही कृष्ण नौका लेकर आए, मुझसे बोले– 'उठ्' एक बार यमुना में जाकर 'बाच्' खेलें। कृष्ण के कहने पर नौका पर चढ़ गया। कृष्ण नौका के एक सिरे पर थे। यमुना के बीच में नौका को ले जाकर उस सिरे को पानी के भीतर दबा दिये। तब नौका मानो डूबने लगी। नौका में जो लोग थे, सभी एकदम चीत्कार करने लगे। मैंने भी देखा, कृष्ण नौका को डुबाने ही वाले हैं। तब मन में सोचा, कृष्ण केवल डरा रहे हैं। यह नौका कभी डूबेगी नहीं। नौका के डूबने से तो केवल हम लोग ही नहीं डूबेंगे, कृष्ण जब नौका में हैं, उस सिरे पर नौका में पानी चढ़ने पर पहले कृष्ण ही डूबेंगे। तभी सबसे कहा था, 'डर नहीं है, डूबोगे नहीं, डूबोगे नहीं; ये सब कृष्ण की चालाकी है!'**

कुतु– तुम कृष्ण के साथ हम लोगों को क्यों नहीं ले गए?

ठाकुर– **अरे, वह तो बहुत छोटी नौका थी; फिर उसमें क्या अधिक लोग आ पाते?**

माता ठाकुरानी ने कहा– अपना खेल कम-से-कम देखने देते। वह भी तो नहीं किये।

ठाकुर ने कहा– **उससे लाभ ही क्या होता? एक चित्र देखने की**

तरह देखना, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है।

माता ठाकुरानी ने कहा— उसमें भी हानि क्या थी? 'नहीं से तो काना अच्छा।'

माता ठाकुरानी, कुतु एवं ठाकुर, श्रीकृष्ण-लीला के सम्बन्ध में और भी कई बातें कहने लगे; किन्तु मैं उसको कुछ समझ नहीं पाया।

कुतु ने ठाकुर से कहा— पिताजी, जब गेण्डारिया में थी तब तुमने मुझे चिट्ठी क्यों नहीं लिखी?

ठाकुर ने कहा— **तेरे को क्या चिट्ठी लिखता? तू तो सब समय मुझे देख पाती थी।**

कुतु ने कहा— देख लेती थी, इसलिए तुमको क्या चिट्ठी भी नहीं लिखना चाहिए?

ठाकुर ने कहा— **देख पाने, बात सुन लेने के बाद भी चिट्ठी की आवश्यकता है?**

कुतु ने कहा— देख तो लेती थी; किन्तु बात तो सदा सुन नहीं पाती थी।

ठाकुर ने कहा— **सब समय बात सुनना भी क्या अच्छा लगता है?**

मैंने थोड़ा अवसर पाकर कुतु से पूछा— कुतु! आजकल तुम्हें मच्छर काटते नहीं?

कुतु ने कहा— काटेंगे क्यों? पिताजी ने मच्छर को जो मना कर दिये हैं।

बहुत देर उन लोगों की इस प्रकार बातचीत के बाद हम लोग शयन करने चले गए।

माता ठाकुरानी को ठाकुर के साथ रखने की बात

{बंगला सन् 1297, श्रावण 22, बुधवार। **(6 अगस्त, सन् 1890 ई॰)**}

कल सतीश ने क्रोधवश ठाकुर को जो सब बातें कही थीं उसका चिन्तन होने से सोचने लगा, ठाकुर फिर माता ठाकुरानी को अन्यत्र जाकर रहने के लिए कहेंगे। ठाकुर ने तो कहा ही था कि साथ में माता ठाकुरानी के रहने से आश्रम की मर्यादा का उल्लंघन होता है। माता ठाकुरानी को साथ में रखे हैं। यह क्या स्वयं ठाकुर की इच्छा है या परमहंसजी का आदेश, उसे समझ नहीं पा रहा हूँ। इस विषय में पूछना आरम्भ करते ही ठाकुर मन्द-मन्द मुस्कुराकर कहने लगे—

कुछ समय हुए एक दिन गुरुदेव मुझे सूक्ष्म शरीर से ले जाकर

पहाड़ों में घूमने-फिरने लगे। बाद में मुझे लेकर मन्दार पर्वत में पहुँचे। वहाँ पर वे दया करके मुझे ऊर्ध्वरेता कर दिये। बहुत समय से ऊर्ध्वरेता होने की मेरी एकमात्र इच्छा थी। मेरी ये अवस्था होने पर, मैंने उनके लिए भी विशेष रूप से कहा, तो दया करके उनको भी उन्होंने वह अवस्था दे दी। बाद में एक दिन गुरुदेव ने आकर मुझसे कहा, 'तुम तो सम्पूर्ण निरापद् हो गए हो। तुम पहाड़ों-जँगलों में रहो या घर-गृहस्थी में ही रहो, सभी जगह तुम्हारी अवस्था एक ही प्रकार की है। उनको तुम यहाँ पर ही रखो; अच्छा ही होगा।' गुरुदेव के आदेशानुसार ही फिर उन्हें लाया गया है अन्यथा मैं तो उत्तरकुरु में ही जाऊँगा, सोचा था।

ठाकुर की बात सुनकर बड़ा ही लज्जित हुआ। सोचने लगा, 'हाय रे! क्या दुर्दशा है। ठाकुर के कार्य में भी मेरी फिर प्रश्न करने की प्रवृत्ति हुई। जो भी हो, थोड़ी देर बाद ही पूछा– क्या उत्तरकुरु जाना सम्भव है?

ठाकुर ने कहा– **जा क्यों नहीं सकते? फिर भी बड़ा कष्टदायक है।**

मैंने कहा– सुना हूँ मानससरोवर और कैलास में कदाचित् कोई जा नहीं पाता?

ठाकुर ने कहा– **जा क्यों नहीं सकता? हठयोग का अच्छा अभ्यास रहने से ही जाया जा सकता है। नहीं तो जाना असम्भव होता है। उस दिन जो परमहंस यहाँ आए थे, वे कैलास से ही आए थे।**

कैलास यात्रा का विवरण

मैंने ठाकुर से पूछा– उस साधु के साथ क्या पहले से ही आपका परिचय था? वे किस प्रकार से गए थे– अकेले या साथ में कोई और भी था?

ठाकुर कहने लगे– **"कुछ-एक वर्ष पूर्व ये परमहंस के साथ भेंट हुई थी। एक हठयोगी साधु, ये परमहंस और मैंने कैलास जाने के संकल्प से यात्रा आरम्भ की। पहाड़ी रास्तों से बहुत दूर चलते-चलते एक बहुत बड़े पर्वत के समीप पहुँचे। एकजन ने आकर हम लोगों को जाने में बाधा देते हुए कहा– 'इस पहाड़ के ऊपर जाने का हुकुम नहीं है।' उनसे पूछा गया, क्यों? वे बोले, 'इस पहाड़ में चढ़ते ही मनुष्य पत्थर हो जाता है।' उनकी बात में सन्देह करने से उन्होंने हमारे से बहुत दूर में पहाड़ के ऊपर तीन मनुष्यों को दिखा कर कहा– 'वह देखो, वे लोग पूरा पत्थर हो गए हैं।' इस पहाड़ पर चढ़ने के पथ पर पहाड़ के ही किनारे एक बड़े पत्थर में बड़े-बड़े अक्षरों से खुदा हुआ है– 'अत्र अग्रे न गच्छन्ति।'**

(अब यहाँ से आगे नहीं जाना)। पहाड़ में ऐसी अवस्था देखकर युधिष्ठिर स्वर्ग में जाते समय ये बात लिख गए थे, बाद में कोई इस पथ पर चलकर संकट में न पड़े। हमने वह सब देखकर उस ओर से जाने का संकल्प त्याग दिया। हठयोग का मेरा अभ्यास नहीं था, मार्ग में और भी कितने प्रकार का विघ्न हो सकता है, यह सोचकर मैं लौट आया; किन्तु वे दोनों संन्यासी लौटे नहीं। उन लोगों ने कहा– 'अग्नि का अभाव हम लोगों को होगा नहीं, साथ में 'चकमक' पत्थर है। रास्ते में यदि पानी मिले तो फिर हम लोगों की क्रिया चलेगी; क्रिया चलने से हम लोगों के शरीर को कुछ नहीं होगा।' यह बात कहकर वे लोग अन्य पथ से थोड़ा घूमते हुए चले गए। इस बार श्रीवृन्दावन में आने से परमहंस के साथ मेरी भेंट हुई। उन्होंने रास्ते का समस्त विवरण मुझसे कहा। सुना– वे लोग पहाड़ी रास्ते से बहुत दिन चलकर मानससरोवर पहुँचे। कैलास जाने के लिए मानससरोवर होकर ही जाना पड़ता है। कैलास के सभी यात्री एक निर्दिष्ट दिन तक वहाँ पर प्रतीक्षा करते हैं। उसी निर्दिष्ट दिन में मानससरोवर के मध्य महादेव का रथ निकता है। जिन लोगों को उस रथ के चूड़े का भी दर्शन होता है, वही लोग ही कैलास यात्रा करते हैं, बाकी सब रह जाते हैं। यदि कोई रथ या चूड़ा का दर्शन किये बिना ही कैलास जाए, उनको कैलास जाकर महादेव का दर्शन ही नहीं होता। कैलास के यात्रियों के लिए महादेव दर्शन की यही परीक्षा है। हठयोगी और परमहंस ने मानससरोवर जाकर, निर्दिष्ट दिन आने में विलम्ब है जानकर, मानससरोवर की परिक्रमा की। परिक्रमा में उनको सत्रह दिन लगे थे। निर्दिष्ट दिन आने पर सरोवर के चारों ओर हजारों साधु-महात्माओं का 'हर हर बम बम' शब्द उठने लगा; फूल, बिल्व-पत्र, धूप-धूना, चन्दन आदि लेकर सभी सरोवर में महादेव की पूजा-आरती करने लगे। उस समय मानससरोवर का जल चक्कर मारता हुआ खूब घूमने लगा। सभी महादेव की स्तव-स्तुति करते-करते सरोवर की ओर स्थिर दृष्टि से देखते रहे। चक्कर मारते हुए जल के मध्य स्थल में स्वर्णरथ का चूड़ा निकला। परमहंस तो उसका दर्शन पाकर कैलास की ओर चल पड़े; किन्तु हठयोगी साधु को चूड़ा का दर्शन नहीं हुआ, इस कारण वे वहीं से लौट आए। परमहंस और भी कुछ-एक महात्माओं के साथ कैलास जाकर ठीक समय में उपस्थित हुए। कैलास पर्वत के एक सौ आठ शिखर एक-एक करके श्रृंखलाबद्ध ऊँचे हैं। प्रत्येक शिखर ही शिवलिंग के आकार के हैं। उन सभी शिखर को भी शिवलिंग कहते हैं।

उन सब शिवलिंग की परिक्रमा करके कैलास में चढ़ने का नियम है। एक-एक शिखर की परिक्रमा में प्रायः एक-एक दिन लगता है। सुना हूँ एक सौ आठ शिखर की परिक्रमा में उन लोगों को ठीक एक सौ आठ दिन ही लगे थे। ठीक शिवचतुर्दशी के दिन कैलास के ऊपर मन्दिर के समीप वे लोग उपस्थित हुए। यथासमय रात्रि में अपने-आप मन्दिर का दरवाजा खुल गया। तब सभी ने मन्दिर के मध्य में प्रत्यक्ष रूप से साक्षात् महादेव और भगवती का दर्शन पाया। वह दर्शन अधिक समय के लिए नहीं होता, मात्र तीन-चार मिनट ही होता है। परमहंस के साथ भेंट होने पर बहुत-सी बातें हुई। तीन-चार वर्ष बाद इस बार उनके साथ भेंट हुई।"

तिब्बत में बंगाली बाबू

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर पूछा– "सुना था तिब्बत देश में भी बहुत अच्छे-अच्छे बौद्ध लामा योगी हैं। उन सब स्थानों पर हम जा नहीं सकते?"

ठाकुर ने कहा– **पहले बल्कि इस देश के साधु लोग वहाँ जा सकते थे। अब तो वहाँ जाने का उपाय नहीं है। एक बंगाली बाबू के वहाँ पर जाने के बाद से बड़ा विघ्न हुआ था। वहाँ पर कानून निकल गया है। अब तिब्बत में और किसी को घुसने का हुकुम नहीं है।**

पूछा– बंगाली के जाने से क्या अनिष्ट हुआ था?

ठाकुर ने कहा– **कुछ दिनों पहले छद्म वेश में एकजन बंगाली बाबू तिब्बत जाकर उस देश की भाषा सीखने लगे और गुप्त रूप से उस देश का नक्शा अंकित करना आरम्भ कर दिया। अन्त में पकड़े जाने पर वे फिर देश में लौट नहीं पाएँगे, राजा का ऐसा आदेश हुआ। बंगाली बाबू ने राजा के पण्डित की शरण ली एवं जिससे अपने देश लौट पाएँ, ऐसी व्यवस्था कर देने के लिए उनसे प्रार्थना करने लगे। विपत्ति में पड़े शरणागत का परित्याग नहीं करना चाहिए, सोचकर पण्डितजी ने उनको आश्रय दिया। बाद में पण्डितजी के कथनानुसार उन्होंने शपथ ली कि देश में जाकर वह भाषा वे अन्य किसी को भी नहीं सिखाएँगे और तिब्बत के रास्ते, घाट इत्यादि की जानकारी किसी को भी नहीं देंगे। राजपण्डित बड़े ही धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने उस बात पर विश्वास करके, उस बंगाली बाबू को कन्धे पर उठाकर गहन रात्रि के समय पहाड़ी रास्ते से लगभग चार-पाँच कोस चलकर एक निरापद्**

स्थान पर पहुँचा दिया। बाबू ने कोलकाता आते ही सब प्रकट कर दिया एवं तिब्बती भाषा की भी शिक्षा देने लगे। उस बात का क्रमशः तिब्बत में प्रचार होने से वहाँ के राजा ने उस पण्डित को भयानक दण्ड दिया। एक चमड़े के भीतर उनको भरकर चारों ओर से सिलाई करके नदी में डुबा दिये। एक लामा-गुरु ने कुछ दिन पूर्व मुझे ये सब बातें बतलाई। उन्होंने और भी कहा— "राजा यदि हमारे जैसे दस हजार लोगों का सिर लेकर भी योगीश्रेष्ठ पण्डितजी को छोड़ देते तो देश के सभी लोग उससे खुश होते। गुरुजी सभी विषय में ही सर्वश्रेष्ठ थे, राजा भी उनका बहुत सम्मान एवं पूजा करते थे; किन्तु इस प्रकार कठोर शासन नहीं होने से, देश की रक्षा करना कठिन होगा, सोचकर उन्होंने देश के सर्वप्रधान व्यक्ति को इस प्रकार मृत्यु-दण्ड दिया। वह लामा-साधु आकर बारम्बार ही 'बेईमान बंगाली, बेईमान बंगाली' कहने लगा। बंगाली लोगों के ऊपर तिब्बती लोगों का अब और विश्वास नहीं रहा— वे लोग सभी को अब 'बेईमान बंगाली' ही कहते हैं।"

माता ठाकुरानी का योगैश्वर्य और आकांक्षा

श्रीवृन्दावन में आकर माता ठाकुरानी के असाधारण कार्य देखकर विस्मित हो रहा हूँ। ये सब घटना किस प्रकार घट रही हैं, कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ। माता ठाकुरानी ने आकर हम लोगों के आहारादि का समस्त भार स्वयं ही ग्रहण कर लिया है। हम इतने लोगों को जब जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, न बतलाने पर भी, माता ठाकुरानी स्वयं ही उसे समझकर जुगाड़ कर देती हैं। रुपया-पैसा पहले जैसा आता था, अब भी ठीक उसी प्रकार ही आ रहा है; और हम लोगों को किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है। भण्डार-घर सर्वदा ही वस्तुओं से परिपूर्ण है। प्रतिदिन हम कम-से-कम दस लोग दोनों समय भोजन किया करते हैं, उसके अतिरिक्त कुंज में निमन्त्रणादि भी दो-तीन दिन के अन्तर में चलता रहता है— माता ठाकुरानी छोटे-से एक 'पतीले' में केवल एक बार भात बनाती हैं; उस पात्र में एक सेर से अधिक चावल समाता नहीं है। दाल, तरकारी आदि पाँच-छह प्रकार के व्यंजन एक छोटी कढ़ाही में बना लिया करती हैं। पात्र छोटा होने पर भी एक वस्तु फिर से दूसरी बार बनाना माता ठाकुरानी का नियम नहीं है। समय-समय पर जब हम पन्द्रह-बीस लोग भोजन के लिए पहुँच जाते हैं एवं अतिरिक्त लोगों का भोजन के लिए निमन्त्रण होता है, तब भी माता ठाकुरानी नियमित परिमाण से अधिक रसोई नहीं बनाती हैं। रसोई हो जाने पर दाऊजी को भोग लगाती हैं, भोग उठाकर समस्त प्रसाद रसोईघर में रखा जाता है। रसोईघर

में ही हम लोगों के भोजन की व्यवस्था है। आश्चर्य का विषय यह है कि, केवल एक छोटे पतीले के प्रसाद से एवं निर्दिष्ट परिमाण के व्यंजनादि द्वारा हम जितने भी लोग उपस्थित क्यों न रहें, माता ठाकुरानी अपने हाथ से परिवेषण करके सभी को तृप्तिपूर्वक परिपूर्ण रूप से भोजन करा दिया करती हैं। सभी का भोजन हो जाने पर माताजी एवं कुतु प्रसाद पाते हैं। अतिरिक्त भात एवं सब्जी आदि की व्यवस्था कहाँ से किस प्रकार से होती है, समझ में नहीं आता। यह अद्‌भुत कार्य प्रतिदिन ही यहाँ हो रहा है। दाल, तरकारी आदि सभी व्यंजन का स्वाद भी एक नए प्रकार का देख रहा हूँ; इस तरह का स्वादिष्ट व्यंजन जीवन में और कभी कहीं खाया हूँ, स्मरण नहीं है। कुतुबुड़ी भोग की रसोई के समय माता ठाकुरानी की सहायता करती है। उस समय में हम लोगों को वहाँ जाने का हुकुम नहीं है। रसोई की समस्त व्यवस्था करके भात और पाँच-सात तरह के व्यंजन बना लेने में माता ठाकुरानी को दो-तीन घण्टे से अधिक समय किसी दिन भी नहीं लगता। किस कौशल से जो यह सब कार्य श्रृंखलाबद्ध रीति से पूर्ण करती हैं, विभिन्न प्रकार से अनुसन्धान करके भी उसको कुछ समझ नहीं पाया। एक दिन मध्याह्न में भोजन के बाद हरिवंश का पाठ करके माता ठाकुरानी के कमरे में जाकर बैठ गया। माता ठाकुरानी ने मुझसे कहा– "कुलदा, लगता है शीघ्र ही तुम्हें देश जाना होगा। देश जाकर माँ की सेवा अच्छे से करना।" माता ठाकुरानी की बात सुनकर मैं चौंक उठा। पूछा– "मेरा देश जाना होगा, क्या आप उसे स्पष्ट देखकर कह रही हैं?" माता ठाकुरानी ने कहा– "क्यों? देश जाने की तुम्हारी इच्छा नहीं होती? देश जाने से तुम्हारा अच्छा ही होगा।" मैंने कहा– "माँ, आपके विषय में तो मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। अपनी अवस्था की दो-एक घटना मुझे बताइए ना। आप कृपण की तरह सब छिपाकर क्यों रखी हैं? माताजी ने कहा– "तुमको एक बात कहती हूँ, यदि धर्म-जगत् में बड़े होना चाहते हो, धनी होना चाहते हो, तो कृपण बनो। अपनी कोई भी अवस्था किसी को मत बतलाना, बतलाने से फिर वह रहती नहीं है।"

मैंने पूछा– भविष्य की सब घटना क्या आपके सामने प्रकट होती हैं?

माता ठाकुरानी– होगी क्यों नहीं? फिर भी क्या सब प्रकट होता है? दूर की विशेषे-विशेष घटनाओं का पता चल जाता है; और आने वाले पाँच-सात दिन की घटनाएँ सदा ही प्रकट रहती हैं।

मैं– साधना के समय आपको दर्शनादि नहीं होते? क्या कभी समाधि लगी है?

माता ठाकुरानी– साधन-भजन फिर करती कहाँ हूँ? दिन का समय तो सेवा के काम-काज में बीत जाता है। मध्याह्न में अवसर मिलने पर थोड़ा विश्राम

करती हूँ। संध्या का समय भी ठाकुर-दर्शन में ही निकल जाता है, केवल रात्रि में ही थोड़ा बैठती हूँ। तब दर्शन भी होता है। एक-एक बार इच्छा होती है, समाधि लेकर पड़ी रहूँ, फिर वह इच्छा होती नहीं; समाधि की अपेक्षा इस तरह से सेवा का कार्य करके दिन शेष कर देना ही अच्छा है।

इस प्रकार कई बातें कहने के बाद माताजी ने मुझसे अपने-आप ही कहा– "भविष्य में किसकी क्या दशा होगी, वह अभी तो और कहा नहीं जा सकता। इसलिए तुमको कुछ-एक बातें कह रही हूँ, याद रखना। माँ के लिए मुझे बड़ा कष्ट होता है। मेरी माँ बड़ी दुःखी हैं। वे सदैव मेरे ही भरासे रही हैं। कितना ही कष्ट मिला हैं? एक दिन के लिए भी सुखी नहीं रह सकीं। भविष्य में माँ के भाग्य में क्या है, कह नहीं सकते। माँ को देखना। वृद्धावस्था में किसी के लिए भार स्वरूप न होकर, माँ यदि किसी भी तीर्थ में जाकर रहना चाहे तो चार-पाँच रुपये मासिक की व्यवस्था कर देना और उनको खूब सान्त्वना देना।"

मैंने कहा– नानी के लिए आप चिन्ता न करें। किसी समय भी उन्हें कष्ट नहीं होगा। अन्ततः भिक्षा करके मैं ही नानी का अभाव दूर करूँगा।

माता ठाकुरानी ने फिर कहा– "तुम्हें और एक काम करना होगा। शान्तिसुधा गर्भवती है। मैं उसको छोड़कर आ गई हूँ। माँ के साथ उसका वैसा सद्भाव नहीं है। शान्ति का दिमाग भी स्थिर नहीं है। गर्भावस्था में यदि सदा मानसिक कष्ट पाए तो गर्भस्थ सन्तान का अनिष्ट होगा। तुम शान्ति को मेरी ओर से एक पत्र लिख दो। मेरा जो कुछ है, सभी शान्ति का है। गेण्डारिया-आश्रम शान्ति का ही है। शान्ति जिससे वहीं पर स्थायी रूप से रहे।"

माता ठाकुरानी के आदेशानुसार उनके ही नाम से मैंने तुरन्त श्रीमती शान्तिसुधा को पत्र लिखा। उन्होंने उस पर हस्ताक्षर कर दिया। माता ठाकुरानी की ये सब बातें सुनकर मुझे कई तरह से चिन्ता होने लगी। ठाकुर ने कहा था कि माताजी का अब गेण्डारिया में लौटना नहीं होगा। इस समय मुझे उस बात का भी स्मरण हो आया। सोचने लगा, यदि माता ठाकुरानी शीघ्र ही देह त्याग करेंगी, उनकी तो मैं कोई सेवा ही नहीं कर पाया।

मैंने माताजी से पूछा– माँ, आपकी बात सुनकर मुझे कई प्रकार की आशंका होती है। आपके मन में किसी प्रकार की कुछ आकांक्षा है कि नहीं, जानने की इच्छा होती है।

माताजी ने कहा– कुतु का विवाह हिन्दू समाज में हो, और योगजीवन समाज में प्रतिष्ठित हो, मेरी यही दो आकांक्षाएँ है। और 'गोस्वामीजी महाराज' महाभारत पढ़ना चाह रहे थे, उनको एक महाभारत देने की इच्छा होती है। कुतु

बच्ची है, व्रजमाइयों की तरह उसके पैरों में एक जोड़ा पायल देने से अच्छा होता। मेरी और कोई वासना नहीं है।

माता ठाकुरानी कुतु के विवाह के लिए थोड़ा व्याकुल हैं, उनकी बातों से लगता है। उन्होंने इस सम्बन्ध में मुझसे और भी कई बातें कहीं।

स्वप्न में भूत का उपद्रव

{बंगला सन् 1297, श्रावण 23, बृहस्पतिवार। **(7 अगस्त, सन् 1890 ई.)**}

आज अवसर पाकर रात्रि का एक भयंकर स्वप्न का वृत्तान्त ठाकुर से कहा। "रात्रि में लगभग ढाई बजे देखा, मैं आसान पर बैठकर, स्थिर होकर नाम-जप कर रहा हूँ, अकस्मात् एक विशाल भूत आकर मेरे सामने उपस्थित हुआ। विभिन्न प्रकार से डराकर मुझे साधना करने से रोकने का प्रयास करने लगा। मैं डर के कारण बीच-बीच में काँपने लगता; किन्तु नाम-जप छोड़ते ही विपत्ति में फँसना पड़ेगा सोचकर खूब साहसपूर्वक नाम-जप करने लगा। तब वह भूत एक भयंकर खड्ग हाथ में लेकर मुझे काट डालने का भय दिखाने लगा एवं बोला– 'ये नाम लेगा, ये साधना करेगा तो तेरे को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। शीघ्र इस साधना को छोड़ दे।' मैं भूत की उस भीषण आकृति और आक्रोश को देखकर अत्यन्त व्याकुल हो गया। तब अचानक मुझे याद आया, गुरुदेव ने कहा है– **स्थिर होकर साधना करने से, नाम-जप करने से फिर कोई भी कुछ विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकता।** यह बात स्मरण होते ही, भूत की ओर दृष्टि रखकर, मैं नाम-जप करने लगा। तब भूत तो फिर मेरी ओर बढ़ न सका। 'नाम-जप छोड़, नाम-जप छोड़' बोलकर चीत्कार करने लगा। बाद में छटपटाते हुए लम्बी श्वास लेकर भागते हुए अदृश्य हो गया। मैं भी नाम-जप करते-करते जाग उठा।" स्वप्न का विवरण सुनकर ठाकुर ने कहा– **ये क्या? यह तो कुछ भी नहीं है! जिस पथ पर चले हो– कितने बाघ, साँप, कितने भूत-प्रेत, कितने देवी-देवता आकर बाधा उत्पन्न करेंगे। सभी साधना छुड़ाने की चेष्टा करेंगे। बहुत सावधान रहो, कभी किसी तरह से भी नाम-जप छोड़ना नहीं। नाम-जप करने से ही सब उत्पात दूर होंगे। नाम-जप छोड़ने के लिए अनेक लोग कहेंगे।**

प्रकृति का रोग : कर्म ही धर्म है

मैंने पूछा– हरिवंश-पाठ शेष हो जाने के बाद तब और कौन-कौन सा ग्रन्थ पढ़ूँगा?

ठाकुर ने कहा– **महाभारत आरम्भ से अन्त तक अच्छे से पढ़ो। उद्योगपर्व, शान्तिपर्व एवं अश्वमेधपर्व को खूब मन लगाकर पढ़ना। भागवत का एकादश और द्वादश स्कन्ध एवं तृतीय स्कन्ध पढ़ो। ये सब पढ़ने के बाद रामायण और योगवाशिष्ठ पढ़ सकते हो। अन्य कोई पुराणादि का पाठ अभी मत करना। इन्हीं कुछ ग्रन्थों को पढ़ लेने से ही काम चल जाएगा।**

मैंने कहा– जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी, ऐसी श्रेष्ठ अवस्था में आपने मुझे रखा है। काम-क्रोधादि के नाम की गन्ध भी मेरे भीतर है, पता नहीं चलता; किन्तु आपका साथ छोड़ने से, कितने प्रकार की परीक्षा-प्रलोभन में पड़ सकता हूँ! तब मेरे ब्रह्मचर्य की किस प्रकार रक्षा होगी?

ठाकुर ने कहा– **परीक्षा-प्रलोभन में पड़ने से भी क्या होता है? उसके लिए तुम्हें चिन्ता क्यों है? जहाँ भी रहो, ब्रह्मचर्य के नियम का प्रतिपालन करके चलने का प्रयास करो। इससे ही सब ठीक होने लगेगा। काम, क्रोध ये सब तो मनुष्य की प्रकृति नहीं है– ये सब मनुष्य की प्रकृति का रोग है। रोग होने से जिस प्रकार औषधि सेवन की आवश्यकता होती है, इन सब उत्पातों के प्रतिकार के लिए भी उसी प्रकार ब्रह्मचर्य आवश्यक है। शरीर के रस से ही इन सब प्रकार के विकारों की उत्पत्ति होती है। इसलिए शरीर के रस को घटा लेना चाहिए। रस को कम करने के लिए आहार के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहना होता है। इन सब विषय में जितना कर सकते हो प्रयास करो, क्रमशः सब ठीक हो जाएगा।**

इसके बाद ठाकुर से धर्म-कर्म, पाप-पुण्य एवं वैराग्य के सम्बन्ध में पूछा। उसके उत्तर में ठाकुर ने संक्षेप में कहा– **"जो सब कर्म धर्म प्राप्ति के अनुकूल हैं, वही करना होता है। धर्म के प्रतिकूल कर्म ही पाप है। मनुष्य, इच्छा होने पर दो दिन की साधना से ही हो सकता है पाप दूर कर ले; मनुष्य में पाप छोड़ने की क्षमता भी है, किन्तु कर्म छोड़ने की क्षमता नहीं है। कर्म करके ही, कर्म क्षय करना होता है। कर्म किये बिना किसी का भी निस्तार नहीं हो सकता। कर्म तो धर्म के बाहर का विषय नहीं है, कर्म ही धर्म है। धर्म-कर्म के अतीत अवस्था बहुत दूर की बात है। वैराग्य का अर्थ यह नहीं है कि काम-काज छोड़ दिया। भिक्षा करके निर्वाह कर लिया। समस्त विषयों से उन सब इन्द्रियों का सम्पूर्ण रूप से निवृत्त होना ही वैराग्य है। विषय के प्रति अनासक्त होने से ही समझो, वैराग्य हुआ है। कर्म किये बिना वैराग्य नहीं होता। तुम लोग यह निश्चित रूप**

से जान लो, जितना भी क्यों न करो, जिसका जितना कर्म है, आज हो, कल हो या दो दिन बाद हो, एक दिन करना ही होगा। उसको किये बिना किसी तरह से भी निस्तार नहीं हो सकता। एकमात्र भगवान की कृपा से ही क्षणभर के भीतर सब शेष हो सकता है, अन्यथा बलपूर्वक कर्म त्याग करने की किसी में सामर्थ्य नहीं है।

मातृ-सेवा एवं भातृ-सेवा का आदेश

ठाकुर की बात सुनकर मैं भयभीत हो गया। कितने कर्म का बोझ मेरे भाग्य में है, कुछ भी तो नहीं जानता। शीघ्र ही उन सबको दूर किये बिना किसी भी तरह से स्थिर नहीं हो पाऊँगा; निश्चिन्त होकर साधन-भजन, भगवान का नाम, कुछ भी नहीं कर पाऊँगा। गुरुदेव मेरा सब कुछ तो जानते ही है। मेरा क्या-क्या कर्म है, उनसे ही स्पष्ट रूप से पूछकर उसे शेष कर डालूँगा। इस प्रकार मन-ही-मन सोचकर, ठाकुर से मैंने कहा– "मेरा जो सब कर्म है, उसे मैं तो जानता नहीं। आप मुझे स्पष्ट रूप से बता दीजिए, मैं खूब उत्साहपूर्वक उसे ही करूँगा। सतीश को मातृ-सेवा करने के लिए प्रतिदिन ही तो कहते हैं; स्वामीजी को भी कर्म करने के लिए कितना ही कहते हैं, किन्तु उन लोगों की वैसी मति नहीं होती। इस प्रकार दुर्मति बाद में मेरी भी तो हो सकती है। इसलिए आप स्पष्ट रूप से बता दीजिए, मुझे क्या करना होगा?"

ठाकुर ने कहा– **तुम्हारा कर्म मातृ-सेवा ही है। उसे कर लेने से ही सब ठीक हो जाएगा। नियमानुसार ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए अभी जाकर माँ की सेवा करो। इससे ही सब ठीक होगा। कुछ समय माँ की सेवा करने से ही समझ पाओगे कि उससे कितना उपकार होता है? तुम्हें नौकरी करके अर्थोपार्जन की चेष्टा या गृहस्थी नहीं करनी पड़ेगी। माता की सेवा कर लोगे उसी से ही तुम्हारा सब कट जाएगा।**

मैंने कहा– मेरी सेवा से माँ सन्तुष्ट होकर, यदि मुझे धर्म प्राप्ति के लिए आशीर्वाद देकर छोड़ देती हैं, तब फिर आपके साथ रह पाऊँगा तो?

ठाकुर ने कहा– **सेवा से सन्तुष्ट होकर माँ तुम्हें छोड़ दें, तो माँ की अनुमति लेकर निश्चिन्त होकर हमारे साथ में रहना। वह सब हो जाएगा। अभी जाकर खूब भक्ति के साथ माँ की सेवा करो।**

ठीक इसी समय दस रुपये के एक मनी-आर्डर पर मेरे हस्ताक्षर करवाने के लिए पोस्टमैन मुझे पुकारने लगा। हस्ताक्षर करके मैंने दस रुपये ले लिए। देखा, फैजाबाद से बड़े भैया ने ये रुपये भेजे हैं। अचानक वे इस समय मुझे रुपये

क्यों भेजे हैं, समझ में नहीं आया। ठाकुर के पास जाकर यह बात बताते ही उन्होंने कहा– **अभी तुम यहाँ से अपने बड़े भैया के पास चले जाओ। कुछ दिन वहाँ पर उनकी सेवा करो। सन्तुष्ट होकर उनकी अनुमति मिलने से घर जाकर माँ की सेवा करना। सेवा द्वारा सब गुरुजनों को सन्तुष्ट करके उनकी अनुमति और आशीर्वाद लेकर फिर धर्म के पथ पर चलना होता है। ऐसा करने से ही सहज में इस पथ पर चला जा सकता हैं। गुरुजन और आत्मीय स्वजन में यदि एक व्यक्ति भी आपत्ति करे, तो धर्म पथ पर अनेक विघ्न आते हैं।**

इन सब बातों के बाद ठाकुर ने मुझे कंगाल फकीर का 'ब्रह्माण्डवेद' का पाठ करने के लिए कहा। ठाकुर की दीक्षा और हम लोगों की साधना में शक्ति-संचार की बात इस पत्रिका के स्थान-स्थान में कंगाल ने कुछ-कुछ लिखा है। ठाकुर के कहने पर उसे मैं पढ़कर सुनाने लगा।

कंगाल के ब्रह्माण्डवेद में ठाकुर की दीक्षा व शक्ति-संचार की बात

(कंगाल का ब्रह्माण्डवेद, प्रथम भाग, पृष्ठ– 392)

"बंगला सन् 1291(ई॰ सन् 1885), 11वाँ माघ, प्रातःकाल में, पण्डित विजयकृष्ण महाशय ने जिस समय कोलकाता के साधारण ब्राह्मसमाज की वेदी का कार्य सम्पादन किया, उसी समय ऐसा एक दृश्य प्रकाशित हुआ था; तब अनेक लोग 'माँ माँ' करते हुए उच्च स्वर में रो पड़े थे। इस दृश्य में मोहम्मद नानक का हाथ पकड़कर, फिर नानक अन्य भक्तों के साथ गले मिलकर 'एकमेवोऽद्वितीयम्' का कीर्तन करते हुए भावावेश में नाचे थे। महात्मा राजा राममोहन राय भी वहाँ उपस्थित थे। इसके अगले वर्ष, बंगला सन् 1292 (ई॰ सन् 1886), 11वाँ माघ, प्रातःकाल में, विजयकृष्ण महाशय ढाका के साधारण ब्राह्मसमाज की वेदी में उपासना कर रहे थे, उसी प्रकार का एक आध्यात्मिक दृश्य ही प्रकाशित हुआ। बंगला सन् 1293 (ई॰ सन् 1886) के वैशाख महीने में रंगपुर काकिनिया के जमींदार कुमार महिमारंजन राय ने जिस समय वहाँ ब्राह्म-मन्दिर की प्रतिष्ठा की एवं जिस दिन विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने प्रातःकाल वेदी का कार्य सम्पादन किया, उस दिन भी उस प्रकार का फिर एक दृश्य प्रकाशित हुआ था; किन्तु वह पहले की तरह स्पष्ट नहीं दिखा।"

(कंगाल का ब्रह्माण्डवेद, प्रथम भाग, पृष्ठ– 392)

असाम्प्रदायिक धार्मिक-प्रवर श्रीयुत् विजयकृष्ण गोस्वामी ने कहा है– "वे

एक बार पर्वतवासी कुछ-एक योगियों के साथ भेंट करने गए थे। उनके पथ-प्रदर्शक एक मद्रासी साथ में गए थे। पर्वत के निकट पहुँचते ही, ललाट आदि स्थानों में सिन्दुर लगाए हुए एक भीषणमूर्ति भैरव ने उन लोगों को आगे आने से रोकने के लिए पत्थर फेंकना आरम्भ किया। भैरव के इस व्यवहार से मद्रासी तो जातीय तेज से गरम हो उठे। गोस्वामीजी ने उनको रोककर कहा, 'गरम होने से काम नहीं होगा। मैं उनके पास पहुँचता हूँ।' इसके बाद भैरव के थोड़ा अन्यमनस्क होते ही गोस्वामीजी शीघ्रता से जाकर उनके दोनों पैर पकड़ लिए। भैरव ने हँसते हुए कहा, 'तुम लोग समझते हो मैं बड़ा पाखण्डी और निर्दयी हूँ, वास्तव में वैसा नहीं है। इस पर्वत में जो कुछ-एक योगी रहते हैं, वे लोग सिद्ध-पुरुष हैं। मैं उन लोगों की सेवा के लिए नियुक्त हूँ। विषयी लोग विषय का शुभाशुभ जानने के लिए योगियों को बार-बार विरक्त करते हैं। इससे साधना में विघ्न आता है। इसलिए वे लोग सुरंग के पथ से होकर पर्वत के भीतर अभी प्रवेश किये है। धर्म-जिज्ञासु लोगों के लिए वहाँ जाना निषिद्ध नहीं है। कौन धर्म-जिज्ञासु हैं और कौन विषयी हैं, मैं पत्थर फेंक-फेंककर उनकी परीक्षा करता हूँ। विषयी होने से भयभीत होकर चले जाएँगे और यथार्थ धर्म-जिज्ञासु होने से तुम लोगों की तरह उद्देश्य को नहीं छोड़ेंगे। यदि इच्छा हो, तो मेरे साथ चलो, योगीजनों को देख सकते हो; किन्तु वहाँ पानी नहीं है, यहीं पर कुछ खाकर झरने से पानी पी लो। यह कहकर वह भैरव नर-कपाल में नर-मांस लाकर उन लोगों को खाने के लिए दिया। 'मैं किसी प्रकार का मांस ही नहीं खाता' कहकर गोस्वामीजी ने उसे छोड़ दिया। इससे भैरव ने विरक्त होकर उन लोगों को धमकाया; किन्तु मार्ग-दर्शक बनकर उन्हें योगियों के पास ले गए। गोस्वामीजी सुरंग के मार्ग में लेटकर कोहनी के बल चलते हुए बड़े कष्ट से योगियों के पास पहुँचे और प्रणाम करके उन्होंने देखा, वह स्थान बिना छत का एक दरवाजे वाले कोठे की तरह अर्थात् चारों ओर दीवाल की तरह चट्टानें हैं, बीच का स्थान अति सुन्दर स्वच्छ एवं वृक्ष-लता से सुशोभित है। उन योगियों में से एक ने गोस्वामीजी से बिना कुछ पूछे ही भैरव को धमकाते हुए कहा— 'तुमने अघोरपन्थी का पथ अवलम्बन किया है, इसलिए नर-मांस तुम्हारा खाद्य है; किन्तु अन्य पथावलम्बी का जो खाद्य नहीं है, उनको तुमने वह क्यों दिया? इससे तुम्हारी विचित्र निर्लज्जता दिखाई पड़ती है। तुम क्या सोचते हो, अघोरपन्थी न होने से कोई सिद्ध नहीं हो सकता? यह तुम्हारी बहुत बड़ी भूल है। पथ कुछ नहीं है, वह केवल उपाय है। सिद्धि प्राप्त करना अलग बात है। हम जो चार लोग यहाँ पर हैं, सब क्या एक ही पथ का अवलम्बन करके साधना की थी? कोई वैष्णव, कोई अन्य प्रणाली अवलम्बन करके साधना करने में प्रवृत्त हुआ था। अभी सबका ही एक पथ है और एक उद्देश्य है। इसलिए इस समय अब कोई प्रणाली ही नहीं है।'

गोस्वामीजी ने योगियों से जो कुछ पूछने का विचार किया था, भैरव को दी गई चेतावनी के रूप में ही योगीवर ने उसका उत्तर दे दिया। 'योगी लोग बाहरी दोनों नेत्र की तरह ललाट के भीतर जो तृतीय नेत्र है, उससे सभी जान पाते हैं, देख पाते हैं'– उपरोक्त घटना से इस बात की पुष्टि होती है। उसके बाद योगियों ने गोस्वामीजी के साथ जिस प्रकार की बातचीत की, उसमें उन्होंने पृथ्वी के भिन्न-भिन्न देशों की भिन्न-भिन्न घटनाएँ कहीं। गोस्वामीजी को संवाद-पत्र पढ़कर जो ज्ञात हुआ था एवं परम्परा से जो सुने थे, उसके साथ योगियों की बात की समानता होने से गोस्वामीजी चकित हो गए। घने वनाच्छादित पहाड़ी प्रदेश में संवाद-पत्र तो दूर की बात है, सांसारिक लोगों का भी आवागमन नहीं है। विशेषकर, पृथ्वी के सब देशों का इतिहास और वर्तमान घटनाओं का संवाद, पाठक जिससे अवगत नहीं हैं, योगीगण उसे जानते हैं, यह जो दिव्य-दृष्टि का फल है, उसे कौन अस्वीकार करेगा?

ठाकुर से पूछा– भैरव जब पत्थर फेंकने लगे, तब आप लोगों ने क्या किया? वह क्या आप लोगों के शरीर में लगा था?

ठाकुर– **भैरव भयंकर चीत्कार करके गाली देते-देते ढेला फेंकने लगे, तब साथ के ब्राह्म मित्र तो दौड़कर भाग गए। मेरे शरीर में ढेले पड़ने लगे। पैर में एक ही स्थान पर दो ढेले पड़ने से चोट लगने के कारण झर-झर रक्त निकलने लगा। मैं पैर को झटकार कर उसी स्थान में ही हाथ जोड़कर भैरव की ओर एकदृष्टि से देखता रहा। भैरव तब अवाक् होकर हमारी ओर देखते रहे। इसी बीच दौड़कर मैं उनके पैरों पर गिर पड़ा। तब वे खूब आदरपूर्वक मुझे पकड़कर पहाड़ के एक निर्जन स्थान पर ले गए। वहाँ पर भैरव ने मुझे एक जले हुए हाथ की हथेली लाकर खाने के लिए देते हुए कहा, 'महाप्रसाद पाइए'। हाथ की हथेली उन लोगों के लिए बड़े सम्मान का आहार है। 'मैं मांस नहीं खाता' कहकर उसका परित्याग करने से वे बड़े ही दुःखी हुए। बाद में मुझे महापुरुष के पास ले गए। जाकर देखा एक कमरे के चार कोने में चार महात्मा समाधिस्थ बैठे हैं। पहले उनमें से एक आचारी, एक अघोरी, एक कापाली और एकजन नानकपन्थी, इस प्रकार परस्पर विरुद्ध पथावलम्बी थे। गया के गम्भीरनाथजी भी उनमें से ही एक थे। वे सभी एक ही स्थान पर परमानन्द से शान्तिपूर्वक थे। उन लोगों के साथ अनेक विषय में बातचीत हुई।**

मैं ठाकुर के कहने पर, तृतीय भाग ब्रह्माण्डवेद के 178 पृष्ठ में ठाकुर की दीक्षा के विषय में कांगाल का लेख पढ़ने लगा।

(कंगाल का ब्रह्माण्डवेद, तृतीय भाग, पृष्ठ– 178)

बहुतों को ही स्मरण हो सकता है, एक बार खूब चर्चा उठी थी कि असम्प्रदायिक धार्मिक-प्रवर श्रीयुत् पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी संसार-धर्म का परित्याग करके संन्यासी हो गए हैं। यह समाचार बिल्कुल निराधार नहीं है। गोस्वामीजी ने दार्जिलिंग के वनाच्छादित प्रदेश में षट्चक्रभेदी किसी योगी का साधन देखकर एवं उनके पास पहुँचकर, नर्मदा के किनारे उक्त षट्चक्रभेदी योगी के गुरुदेव के दर्शन करने के लिए अपने आत्मीय स्वजनों से बिदा माँग ली थी। घटनावश वे वहाँ न जाकर गयाधाम में स्थित ब्रह्मयोनि पर्वत पर पहुँचे एवं वहाँ के वैष्णव महन्त से उन्होंने साधन की शिक्षा लेनी चाही। इस समय वे विलास-वेश त्यागकर संन्यासी वेश में वहाँ आश्रम के महन्त परमहंस के पास लगभग नौ महीने तक ज्ञान, योग, भक्ति और कर्म की पद्धति को अनुष्ठान के साथ सीखे। अपने साधन के धन को इतना करके भी हृदयमन्दिर में न देख पाने से इस प्रकार व्याकुल हो गए थे कि वे एक निर्जन वन में अचेत अवस्था में कुछ-एक दिन पड़े रहे। फिर लगातार स्पर्श के अनुभव से जागने पर देखे, एक परमहंस की गोद में लेटे हैं। प्रकृतिस्थ होने पर गोद से उतरकर उस अपरिचित परमहंस को प्रणाम करके उनके चरणों में गिर पड़े एवं प्रार्थना की, "आप मुझे अपने आश्रम में ले चलिए, मैं जिससे साधन के धन को हृदय के मध्य देख सकूँ, वैसा उपदेश दीजिए; मैं गृहस्थाश्रम में अब प्रतिगमन नहीं करूँगा।" परमहंसप्रवर बोले– "वत्स! शान्त होकर हमारी बात सुनों, तुम्हारे स्त्री, पुत्र, कन्या एवं अनाथ सास तुम्हारे आश्रित हैं; तुम उन लोगों का परित्याग करोगे तो पाप होगा और कुछ भी साधन नहीं कर पाओगे।" गोस्वामीजी के स्त्री-पुत्र हैं, सम्पूर्ण अपरिचित बहुत दूर पर स्थित निर्जन पर्वतवासी उसे किस प्रकार जान गए! गोस्वामीजी इस कारण चकित दृष्टि से उनके मुख की ओर देखने लगे। बाद में फिर एक अन्य बात सुनकर और भी चकित रह गए; परमहंस हास्यपूर्वक बोले, "वत्स! तुम बहुत-से लोगों ने मिलकर एक घर को 'उजाड़' दिया है; घर का पुनः निर्माण कर सके, ऐसा एक भी व्यक्ति तुम लोगों के बीच नहीं देख पा रहा हूँ। जिस प्रकार उजाड़े हो, वैसा ही छाने का उपाय करो; अन्यथा ईश्वर के समक्ष अपराधी होगे।" गोस्वामीजी ने परमहंसजी के गुप्त उपदेश का तात्पर्य समझकर, उनके चरणों को पकड़कर कातर स्वर में कहा, "भगवान्! वह सामर्थ्य मुझमें जरा भी नहीं है। सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए ही इतने दिन आश्रम में वास किया और अब आपका अनुगामी होना चाहता हूँ।" परमहंसदेव ने कहा, "मैं मानससरोवरवासी योगी हूँ, तुम्हारे वैराग्य के बारे में जानकर तिब्बत छोड़कर इस गयाधाम में आया हूँ, अब डर नहीं है। मैं जो उपदेश दे रहा हूँ, उसके कार्य में परिणत होने से घर जैसा था नया छाने से फिर पहले जैसा हो जाएगा।"

यह बात कहकर उन्होंने ज्ञान, योग और भक्ति साधनोपयोगी सहज प्राणायाम सिखला दिया एवं कहा, "मैं आज से तुम्हारे साधन में सहायक हो गया हूँ। जो जिस देश में जिस साधन पद्धति का अवलम्बन करके साधना करते हैं, मैं उन लोगों की ही सहयता करता हूँ।" इस प्रकार विभिन्न वार्तालाप के बाद गोस्वामीजी समझ गए, वे सामान्य परमहंस नहीं हैं। उनका जो शरीर सामने दिखाई दिया, वह जड़मय देह नहीं है। परमहंसप्रवर ने सूक्ष्म शरीर में आकर उन पर कृपा की है। अतः उनके शिक्षा-साधन को आदरपूर्वक स्वीकार कर अपने विरही पुत्रादि को लेकर कोलकाता जाकर कार्यक्षेत्र में लग गए।

हम लोगों ने देखा है, विजयकृष्ण गोस्वामीजी जिस पद्धति से प्राणायाम की शिक्षा देकर साधन प्रदान कर रहे हैं, उसमें ज्ञान-साधना के साथ योग है और भक्ति-साधना संयुक्त है। इसलिए उक्त साधन-प्रणाली श्रीचैतन्यदेव द्वारा चलाई हुई साधन-प्रणाली के अनुरूप है एवं बहुत ही सहज है, विषयी लोगों के उपयुक्त है। जो लोग ब्रह्माण्डवेद में प्रदर्शित साधन-प्रणाली को कठिन समझते हैं, वे लोग गोस्वामीजी की प्रणाली का अवलम्बन करके साधना करते हुए सहज में ही कृतार्थ हो सकते हैं। हम लोगों ने उक्त प्रणाली का अवलम्बन करने वाले तीन-चार लोगों को कृतार्थ होते देखा है एवं गोस्वामीजी को उपदेश देने वाले परमहंसप्रवर जो साधनार्थियों को सहायता देते हैं, उसको निःसन्देह रूप से केवल समझ ही नहीं पाए हैं बल्कि कभी-कभी प्रत्यक्ष देखे भी हैं।

विभिन्न स्थानों से ठाकुर को मन्त्र प्राप्ति, विविध प्रकार की साधना, परमहंसजी से दीक्षा और तैलंग स्वामी की बात

ब्रह्माण्डवेद पाठ के बाद ठाकुर से पूछा— आपकी दीक्षा के सम्बन्ध में कांगाल जिस प्रकार लिखे हैं, वह क्या ठीक है?

ठाकुर ने कहा— **बहुत कुछ वैसा ही तो है। बीच-बीच में गड़बड़ भी है।**

इसके बाद सतीश, श्रीधर एवं मैंने ठाकुर के साथ बातों ही बातों में उनके मन्त्र प्राप्ति और साधनादि के विषय में बहुत-सी बातें पूछी। उत्तर में ठाकुर ने जिस प्रकार कहा, यथासाध्य लिखकर रखता हूँ—

ठाकुर कहने लगे— **बचपन में माताजी के साथ मुझे शिष्यों के घर जाना पड़ता था। हमारी कुल-प्रथा के अनुसार तब माताजी ने ही मुझे मन्त्र दिया था। उपनयन के बाद मैं खूब निष्ठापूर्वक प्रतिदिन संध्या करता था। कुछ समय बाद पाठशाला में संस्कृत पढ़कर वेदान्त की**

आलोचना से मैं अद्वैत मत को मानने लगा। मैंने तभी जनेऊ का त्याग कर दिया। चारों ओर हलचल मच गई। माताजी तो आत्महत्या करने के लिए तत्पर हो गईं। क्या करता? माँ की बात मानकर फिर जनऊ ग्रहण किया। तब तक मैं ब्राह्मसमाज में नहीं गया था। उसके बाद ब्राह्मसमाज में प्रवेश करने से लगा कि उपवीत जातिभेद का चिह्न है, उसे धारण करना बहुत बड़ा अपराध है। तब फिर से जनेऊ त्याग दिया। माताजी को बता दिया– यदि वे इस बार भी मुझे जनेऊ ग्रहण करने के लिए जिद् करेंगी तो मैं आत्महत्या करूँगा। माताजी फिर कुछ नहीं बोलीं। ब्राह्मसमाज में प्रवेश करके रीति के अनुसार उपासनादि करने लगा और विभिन्न स्थानों में ब्राह्मधर्म का प्रचार आरम्भ किया। तब मेरा एक विश्वास था, जो भी मेरा व्याख्यान सुनेगा, वही ब्राह्मधर्म अवलम्बन करेगा।

एक बार 13 नम्बर, मिर्जापुर स्ट्रीट (कोलकाता) में जब मैं था, एक दिन देर रात्रि में बैठकर उपासना कर रहा था; थोड़ी झपकी लग गई थी। अचानक दरवाजा खटखटाने का शब्द हुआ। तुरन्त दरवाजा खोला, देखा कि बिल्कुल महाप्रभु का दल है; कमरा भर गया; विद्युत की तरह प्रकाश है। अद्वैतप्रभु ने मुझसे कहा– 'मैं तुम्हारा पूर्वज हूँ, अद्वैत आचार्य। ये नित्यानन्द प्रभु हैं और ये महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य। प्रणाम करो। ये तुम्हें मन्त्र देंगे; स्नान करके आओ। मैंने तीनों प्रभु को प्रणाम करके बैठने के लिए आसन दिया। फिर कुँए पर जाकर स्नान करके आ गया। महाप्रभु ने मुझे नाम (मन्त्र) दिया। मैं अचेत हो गया। प्रातःकाल नींद से उठने पर सब घटना स्पष्ट स्मरण आने लगी। सोचा– लगता है स्वप्न देखा था; किन्तु कमरे में बैठने का आसन बिछा हुआ है और कुँए के किनारे गीला कपड़ा है, देखकर वह संशय दूर हुआ। तब मैंने विचार किया– मैं कैसा ब्राह्म हूँ, यही परीक्षा करने के लिए कितनी ही 'स्पिरिट' आई थीं। तब तो जानता नहीं था कि महाप्रभु स्वयं भगवान हैं। इसलिए वह 'नाम' भी ढँका ही रह गया।

ब्राह्मधर्म की पद्धति के अनुसार उपासना करने से मेरे भीतर विभिन्न प्रकार की अवस्था प्रकट होने लगी। अप्राकृत दर्शन, श्रवणादि सभी होने लगे, किन्तु कुछ भी स्थायी नहीं रहता था। होता था, फिर चला जाता था, ऐसी अवस्था थी। सत्य वस्तु प्रकट होकर फिर चली क्यों जाती है, यह संशय मुझे होने लगा। तब सत्य वस्तु के अनुसन्धान के लिए बाहर निकला। बहुत घूमा। कहाँ क्या है, देखने के लिए

कबीरपन्थी, दाउदपन्थी, गोरखपन्थी, सुन्दरपन्थी, बाउल, दरवेशादि समस्त सम्प्रदाय से जुड़ा। एक-एक करके उनकी प्रणाली के अनुसार साधना करके किस सम्प्रदाय में कहाँ तक क्या है देख लिया, किन्तु किसी तरह भी मेरी आकांक्षा की तृप्ति नहीं हुई। मैं जो चाहता था, वह कहीं भी नहीं मिला।

मैंने पूछा— आप क्या बाउल सम्प्रदाय से भी जुड़े थे? उनका साधन किस प्रकार है?

ठाकुर— **वह एक भयंकर काण्ड है। मैं तो विपद् में ही पड़ गया था। बाउल सम्प्रदाय में अनेक स्थानों पर बहुत ही निकृष्ट काम होता है। उसको फिर मुख से कहना ठीक नहीं है। बाउल सम्प्रदाय में अच्छे-अच्छे लोग भी हैं। वे सब चन्द्रसिद्धि करते हैं। शुक्र चाँद, शनि चाँद, गरल चाँद, उन्माद चाँद, ये चार चाँद सिद्ध करके ही समझते है कि सब हो गया है। शरीर का रक्त, मवाद, मल, मूत्र कुछ भी वे लोग फेंकते नहीं हैं, सब खा लेते हैं। एक दिन एक बाउल को खूनी आँव (मल) खाते देखकर मैंने बहुत अप्रसन्नता प्रकट की। यह सुनकर महन्त मुझे धमकाकर बोला, 'तुम्हें उन्माद चाँद, गरल चाँद सिद्ध करके मल-मूत्र खाना होगा।' मैंने कहा, 'वह तो मैं नहीं कर सकता। मल-मूत्र खाने से जो धर्म प्राप्त होता है, वह मुझे नहीं चाहिए।' महन्त बहुत क्रुद्ध होकर बोला, 'इतने दिन तुम हमारे सम्प्रदाय में रहकर हम लोगों का सब जान लिए हो और अब कहते हो साधन नहीं करोगे। तुमको वह सब साधन करना ही होगा।' मैंने कहा, उसे मैं कभी नहीं करूँगा! महन्त सुनकर गाली देते-देते मुझको मारने आया; शिष्य लोग भी 'मारो, मारो' कहते हुए आ गए। तब मैंने खूब धमकाकर कहा, 'हाँ, इतना साहस, मारोगे? जानते हो मैं कौन हूँ? मैं शान्तिपुर के अद्वैतवंश का गोस्वामी हूँ, मुझसे मल-मूत्र खाने को कहते हो?' मेरी धमकी से सभी चौंक गए। महन्त भयभीत होकर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा, 'प्रभु! आप गोस्वामी सन्तान हैं, अद्वैत प्रभु के वंशज, मैं जानता नहीं था। बड़ा अपराध किया हूँ, दया करके क्षमा कीजिए।' मैं तुरन्त ही वहाँ से चला आया। ऊर्ध्वरेता होना ही उन लोगों के साधन का लक्ष्य है। उस प्रकार के लोग भी बाउल के भीतर हैं।**

प्रश्न— ब्रह्मोपासना करने से ही जब धीरे-धीरे आपको सब अवस्थाएँ प्रकट हो रही थीं, तब फिर गुरु की आवश्यकता क्यों समझी?

ठाकुर– **प्रकट होने से क्या होगा? स्थायी तो होता नहीं था। एक दिन मछुआबाजार स्ट्रीट में एक महापुरुष का दर्शन हुआ। उनको अपनी समस्त अवस्था खुलकर बतलाने पर उन्होंने कहा, 'बहुत-सी अवस्था प्राप्त हो सकती है, उससे क्या होता है? रहती तो नहीं हैं। यथाशास्त्र गुरु के समक्ष दीक्षा लिए बिना कोई भी अवस्था स्थायी नहीं होगी– वे एक दिन अचानक ब्राह्मसमाज में आकर उपासना में सम्मिलित हुए। बाद में जाते समय कहने लगे, 'घर तो अच्छा बना है, किन्तु अलग खूँटे के ऊपर है, नीव नहीं है– खड़ा कैसे होगा? गुरु नहीं है; यह कभी भी टिकेगा नहीं।' मैंने उस महापुरुष के सामने दीक्षा के लिए प्रार्थना की थी। उन्होंने पीठ थपथपाते हुए आशीर्वाद देकर कहा, 'बच्चा, घबराओ मत। गुरु तो तुम्हारा है, बखत् पर मिल जाएगा।' मैं स्थिर न रह सका, विन्ध्याचल में, तिब्बत में, हिमालय में, बहुत से स्थानों और पहाड़ों में गुरु का अनुसन्धान किया। गुरु कहीं नहीं मिला। सब महापुरुष ही एक ही बात कहते, 'गुरु तुम्हारे निश्चित हैं, समय पर मिलेंगे।' अन्त में गया में आकाशगंगा पहाड़ पर रघुवर बाबाजी के आश्रम में जाकर कुछ दिन रहा। एक दिन इस पहाड़ के ऊपर एक स्थान पर एकान्त में अकेला बैठा हुआ था, गुरु नहीं मिला सोचकर मन निराश होने से कष्ट के कारण मूर्च्छित हो गया। चेतना आने पर देखा एक महापुरुष की गोद में सिर रखकर लेटा हूँ। वे खूब स्नेह के साथ मेरे शरीर पर हाथ फेर रहे हैं। मैंने तुरन्त उठकर उनके चरणों में गिरकर प्रणाम करके पूछा, 'आप कौन हैं? यहाँ कब आए?' उन्होंने कहा, 'मैं परमहंस हूँ, मानससरोवर में रहता हूँ। तुम्हारे इस क्लेश की अवस्था देखकर तुमको दीक्षा देने के लिए तुरन्त ही यहाँ आया हूँ।' मैंने पूछा, 'मानससरोवर से आप इतने शीघ्र किस तरह से आए?' परमहंसजी ने कहा, 'योगी लोग ऐसा कर सकते हैं। योगी लोग देह के पंचभूत को पंचभूत में मिलाकर, केवल चैतन्य का अवलम्बन करके जहाँ इच्छा हो जा सकते हैं; बाद में इच्छाशक्ति द्वारा उसी पंचभूत को आकर्षित करके फिर से स्थूल देह धारण कर लेते हैं। योगियों में ये सब क्षमता रहती है। मेरे जो इस स्थूल देह को देख रहे हो यह भी उसी प्रकार है। इस प्रकार कई बातें होने के बाद उन्होंने मुझे दीक्षा दी।**

मैंने पूछा– दीक्षा ग्रहण करने के बाद क्या किये?

ठाकुर– **दीक्षा ग्रहण करते ही मेरा बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। चेतना लौटने पर चारों ओर देखा, परमहंसजी नहीं हैं। मुझे भयंकर नशा हुआ**

था। अच्छी तरह से आँखें खोल भी नहीं पा रहा था। लड़खड़ाती अवस्था में किसी प्रकार उतरकर बाबाजी के आश्रम में आया। गुफा के किनारे बेल के पेड़ के नीचे बड़े पत्थर की चट्टान पर बैठ गया। ग्यारह दिन ग्यारह रात एक ही अवस्था में बीत गई। उस समय बाबाजी ने बड़े यत्नपूर्वक मेरे देह की रक्षा की थी। वे मुझको बहुत ही चाहते थे।

प्रश्न– तैलंग स्वामी ने भी क्या आपको दीक्षा दी थी?

ठाकुर– **तैलंग स्वामी ने भी मुझे मन्त्र दिया था। यह बहुत पहले की बात है। एक बार काशी में जाकर एक महीने रहा था। केदारघाट के पास होमियोपैथी डॉक्टर लोकनाथ बाबू के निवास पर ठहरा था। उन्होंने अपने निवास में रहने के लिए मुझसे बहुत आग्रह किया। मैंने कहा, आप लोगों को बहुत असुविधा होगी। मैं दिन-रात घूमता फिरूँगा; प्रयोजन के अनुसार निवास में आऊँगा। दिन में, रात में कभी एक निर्दिष्ट समय पर भोजन नहीं कर पाऊँगा। फिर मुझे एक कमरे की भी आवश्यकता होगी; उसमें अन्य लोगों का रहना नहीं चलेगा।' लोकनाथ बाबू सब बातों से राजी होकर अपने निवास पर ही रहने के लिए जिद् करने लगे। मुझको एक कमरा दिये। मैं दिन-रात इच्छानुसार घूमता-फिरता था; प्रयोजन के अनुसार निवास पर आता था। अधिकांश समय ही तैलंग स्वामी के पास रहता था। पहले-पहले कुछ दिन उन्होंने मेरी बहुत परीक्षा की थी। शरीर पर कुत्ते की बिष्ठा, मैला, कीचड़ मलकर रहते थे, पास जाने पर वही फेंकते थे। बाद में 'छोड़ेगा नहीं' देखकर खूब आदर करने लगे, जाते ही अपने पास बैठने के लिए कहते। समय अधिक होने से, 'भूख लगी है कि नहीं' संकेत द्वारा पूछते; पास में जो लोग रहते, उनसे कुछ खाने के लिए लाने को कहते। एकजन को खाना लाने के लिए इंगित करते ही पाँच-छह लोग दौड़ पड़ते। अधिक मात्रा में खाद्य-सामग्री आ जाती है; अपनी आवश्यकता के अनुसार निकालकर बाकी सब स्वामीजी से खाने के लिए कहता। वे भी मुझसे संकेत द्वारा खाना मुख में डालने को कहते। मैं उनके मुख में कौर दे देता। वे अच्छा खा सकते है। शरीर अच्छा सबल और स्वस्थ पहलवान की तरह था। कभी-कभी वे केदारघाट जाकर गंगा में गोता लगाते, फिर एकदम मणिकर्णिका में पहुँचकर जल से निकलते। तब मैं गंगा के किनारे-किनारे दौड़ता जाता था।**

एक दिन देखा, वे काली मन्दिर में जाकर काली के सम्मुख खड़े

होकर पेशाब कर रहे हैं और चुल्लू में उस पेशाब को भर-भरकर 'गंगोदकम्, गंगोदकम्' कहते हुए काली के ऊपर छिड़क रहे हैं। मैंने पूछा, 'यह क्या कर रहे हैं?' कहा, 'पूजा।' मैंने फिर पूछा, 'इस पूजा की दक्षिणा क्या है?' उत्तर दिये, 'यमालय।' रात्रि में भी कई बार तैलंग स्वामी के पास रहता था। वे मुझे कई प्रकार के अद्‌भुत योगैश्वर्य दिखलाते थे। एक दिन कहा, 'आप मुझे इतना दिखलाते हैं, किन्तु मुझे कुछ भी विश्वास नहीं होता। दया करके मुझे आशीर्वाद दीजिए जिससे विश्वास हो।' उन्होंने मुझे स्नान करके आने को कहा। रात्रि के एक बजे, कड़कती ठण्ड, मैं तो टाल-मटोल करने लगा। उन्होंने तुरन्त गर्दन पकड़कर मुझे अधर में उठा लिया और झप से गंगा में डुबाकर निकाल लिया। फिर मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए बोले, 'विश्वास बन जाए।' उसी दिन से सत्य विषय में फिर मुझे कोई संशय नहीं होता। आश्चर्य है! उन्होंने मुझे मन्त्र देना चाहा। मैंने कहा, 'मैं आपके पास से मन्त्र कैसे लूँ? आप साकार उपासक हैं, देखता हूँ आप सौ बेलपत्ता और गंगाजल शिव के ऊपर चढ़ाते हैं, शिव पूजा करते हैं, और मैं निराकार उपासक हूँ, मैं आपको गुरु नहीं बनाऊँगा।' उन्होंने सावलम्ब और निरवलम्ब उपासना के सम्बन्ध में अनेक उपदेश दिया। फिर बोले, 'नल राजा को जिस प्रकार सर्प ने डस लिया था, मैं भी उसी प्रकार तुमको थोड़ा स्पर्श कर रखा हूँ। इसका गूढ़ तात्पर्य है। मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ; तुम्हारे गुरु निर्दिष्ट हैं, वे ही तुम्हें यथासमय दीक्षा देंगे।' ऐसा कहकर उन्होंने मेरे कान में तीन मन्त्र सुना दिये। एक तो राधाकृष्ण के युगल उपासना का मन्त्र है। यही मन्त्र पहले मुझे माताजी ने भी दिया था। दूसरा सर्वदा जप करने के लिए, भगवान का नाम था। और एक संकट में पड़ने पर जप करने को कहा था। परमहंसजी से दीक्षा प्राप्ति के बाद जब तैलंग स्वामी के साथ मेरी भेंट हुई, तब लगभग बीस वर्ष पहले की घटना के सम्बन्ध में हाथ की हथेली पर लिखकर पूछे, 'याद है?'

मैंने पूछा– 'तैलंग स्वामी क्या मौनी थे?'

ठाकुर– **हाँ; बात नहीं करते थे, इंगित करके सब बतला देते थे, कभी-कभी लिख भी देते थे। रात्रि में कई बार वे मेरे साथ बात करते थे। उस समय उन्होंने अजगर-व्रत नहीं लिया था। अन्त में अजगर-व्रत लेकर सब कुछ छोड़ दिये थे। किसी प्रकार का संकेत भी नहीं करते**

थे। एक स्थान पर ही बैठे रहते थे। शरीर स्थूल हो गया था; वात रोग हो गया था। ऊपर से उनको जीवन्त शिव समझकर सब उनके सिर पर दूध, गंगाजल ढालने लगे। शेषरात्रि चार बजे से लेकर दिन के बारह बजे तक पौष-माघ की ठण्ड में भी इस प्रकार जल ढालने का क्रम जारी था। देह का धर्म है— अन्त में घाव होकर शरीर सड़-गल गया। एक भाव में निर्विकार अवस्था में रहकर, देह त्याग दिये। गंगा में उनको जल-समाधि दी गई।

महादेव का शिरोवस्त्र : यह साधन वैदिक है

इस बार श्रीवृन्दावन में आकर ठाकुर के सिर का बाल लगभग छह-सात इंच लम्बा देख रहा हूँ। इतने बड़े बाल ठाकुर के सिर पर और कभी नहीं देखा। यमुना में स्नान करके सिर के बालों को प्रतिदिन एक ही प्रकार से एक गेरुए कपड़े की पट्टी से बाँध रखते हैं। कपाल के ऊपर के समस्त बाल दोनों कनपटी के पास से तालू तक लपेटकर पट्टी को सिर के दोनों ओर ले जाते हैं; फिर कानों के ऊपर की दोनों समान लटों को पट्टी से लपेटकर पीछे की ओर के नीचे वाले बालों को एकत्र करके बाँध लेते हैं। ब्रह्मतालू के दोनों पार्श्व का अलग बाल पीछे की ओर के अवशिष्ट बालों के साथ अपने-आप लिपट जाता है। इससे ठाकुर के मस्तक पर कुल पाँच जटाएँ बन गई हैं।

गेरुए कपड़े की पट्टी को बहुत फटा-पुराना देखकर मैंने कहा— इस गेरुए कपड़े को फेंककर एक नया गेरुआ कपड़ा नहीं ले लेना चाहिए?

ठाकुर ने कहा— **राम, राम! वैसा नहीं होगा। यह साधारण कपड़ा नहीं है, महादेव के सिर का वस्त्र है। मेरे सिर पर बाँध दिये थे।**

मैंने पूछा— कब, किस स्थान पर बाँधे थे?

ठाकुर ने कहा— **श्रीवृन्दावन में आते समय काशी में विश्वेश्वर के दर्शन करने गया था, वहाँ मन्दिर पर मेरे सिर में यह वस्त्र लपेट दिये।**

मैंने पूछा— महादेव ही क्या इस साधन-मार्ग के प्रवर्तक हैं?

ठाकुर ने कहा— **महादेव इस साधन के प्रवर्तक नहीं हैं; वे भी यह साधन करके सिद्ध हुए हैं। वेद में इस साधन के विषय में उल्लेख है। अनेक योगी, ऋषि इसका अवलम्बन करके सिद्ध हुए थे। कुछ समय नियम के अनुसार इस साधन को किया जा सके तो इसका उपकार समझा जा सकता है। वीर्यधारण के साथ यह प्राणायाम और कुम्भक**

छह महीने करने से अन्यान्य सब प्रकार के प्राणायाम का फल प्राप्त किया जा सकता है। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर सकने से फिर किसी की भी आवश्यकता नहीं होती। इससे प्राणायाम, कुम्भकादि सब कुछ हो जाता है। अलग से प्रयास भी नहीं करना पड़ता। इस पथ की तरह सहज पथ और नहीं है। केवल श्वास और प्रश्वास में नाम-जप कर सकने से ही समस्त अवस्था प्राप्त होती है और कुछ करना नहीं होता!

मैंने कहा— प्राणायाम की प्रणाली कई प्रकार की है, ऐसा सुना है। हमारे इस प्राणायाम के विषय में क्या किसी भी शास्त्र में उल्लेख है?

ठाकुर— **शास्त्र में आठ प्रकार के प्राणायाम की प्रणाली बताई गई हैं; क्योंकि प्रथम शिक्षार्थी लोगों के लिए इसका ही प्रयोजन है। हमारे इस प्राणायाम के विषय में बहुत ही संक्षेप में किसी-किसी तापनी में, उपनिषद् में उल्लेख मात्र है। इसको सिद्धगुरु से सीखें, शास्त्र में इस प्रकार का संकेत कर गए हैं। चिरकाल से ही यह सिद्ध महर्षि लोगों के भीतर बहुत ही गुप्त रूप से चला आ रहा है। शास्त्र देखकर इसका अभ्यास करने से अचानक मृत्यु भी हो सकती है। देखा-देखी इस प्राणायाम को करने की चेष्टा करके अनेक लोग कठिन रोग की पीड़ा से आक्रान्त हुए हैं। इसलिए एवं अन्य अनेक कारणों से, चिरकाल से ही यह बहुत गोपनीय है। अत्यन्त विश्वस्त पात्र देखकर ही सिद्ध महापुरुष लोग यह प्राणायाम दिया करते हैं। अन्यान्य कुम्भक, प्राणायाम आदि से जो सब फल प्राप्त होते हैं, इस प्राणायाम का ठीक नियमानुसार अल्पकाल तक अभ्यास करने से वही सब फल प्राप्त होते हैं।**

मैं— हम लोग का यह साधन तान्त्रिक है या वैदिक? किन-किन ऋषियों ने इस साधन का सर्वप्रथम अवलम्बन किया था?

ठाकुर— **यह साधन आधुनिक नहीं है, यह तो बहुत प्राचीन वैदिक साधन है। पहले महादेव, दत्तात्रेय आदि योगीश्वर लोग इस साधन को करके सिद्ध हुए थे।**

मैं— साधन के समय जो विभिन्न प्रकार की ज्योति, आकृति अथवा छाया का दर्शन होता है, वह सब क्या है? उस समय क्या करना चाहिए?

ठाकुर— **जो कुछ भी दर्शन होता है उसका बहुत आदर करना चाहिए, अनादर नहीं करते। दर्शन होते ही उन सबकी खूब भक्ति करके सम्मान और पूजा करनी चाहिए।**

मैं— साधन करते-करते जो सब अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं, किसी प्रकार के

अपराध से उनके लुप्त हो जाने पर क्या पुनः साधन करके उन सबको प्राप्त किया जा सकता है?

ठाकुर– **हाँ, अवश्य, अवश्य; ठीक रीति के अनुसार साधन करने से पुनः उसे प्राप्त किया जा सकता है।**

मैं– मेरा कौन-सा विशेष कल्याण करने के लिए मुझे श्रीवृन्दावन लाए हैं?

ठाकुर– **क्या विशेष कल्याण हुआ है, उसको क्या अभी सहज में समझा जा सकता है? बाद में सब समझोगे।**

माता ठाकुरानी की पति-पूजा : वराह का दाँत

सुना हूँ पिछले वर्ष ठाकुर चार-पाँच महीने कोलकाता में रहकर एक दिन अचानक शान्तिपुर चले गए थे। बाद में किसी कारण से माता ठाकुरानी के साथ झगड़ा करके तुरन्त ही श्रीवृन्दावन के लिए रवाना हुए थे। रास्ते में काशीधाम में रुककर प्रायः महीने-भर से अधिक समय तक वहाँ रहे। इस समय मेरी अनुपस्थिति में कोलकाता, शान्तिपुर और काशी में जो सब घटनाएँ हुई थीं, उसमें से कुछ-एक श्रीयुत् कुंजबिहारी गुह ठाकुरता की डायरी से एवं श्रीधर, माता ठाकुरानी व सतीश आदि के मुख से निःसंशय रूप से ज्ञात होने पर लिख रखा हूँ–

बंगला सन् 1296 के श्रावण महीने (ई॰ सन् 1889) में, कोलकाता के सुकिया स्ट्रीट का 50/1 नं॰ मकान, ठाकुर के रहने के उद्देश्य से चार महीने के लिए किराए पर लिया गया। वहाँ पर वे शिष्यों के साथ सपरिवार आकर रहने लगे। इस मकान में माता ठाकुरानी प्रतिदिन निर्जन में ठाकुर की चरण पूजा करती थीं। दूब, चन्दन, फूल, तुलसी इत्यादि पूजा का सामान लेकर ठाकुर के आसन-घर में प्रवेश करतीं। भक्तिपूर्वक ठाकुर को प्रणाम करके उनके समीप बैठकर बड़ी लगन से उनके चरणों में तुलसी, चन्दनादि अर्पण करतीं। फिर ठाकुर के मस्तक में फूल, तुलसी प्रदान कर चन्दन का टीका लगा देतीं। उसके बाद ठाकुर के मुख में कुछ मिठाई देकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करतीं। ठाकुर भी उसी समय माता ठाकुरानी के मस्तक में चन्दन का टीका लगाकर, उनके सिर पर हाथ रखकर कुछ देर स्थिर होकर ध्यानस्थ रहते। यह पूजा किये बिना माता ठाकुरानी कभी जल भी ग्रहण नहीं करतीं। पूजा आरम्भ करने के प्रथम दिन नानीजी ने दरवाजे के दरार से देखा, माता ठाकुरानी ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करके पड़ी हैं और ठाकुर अपने आसन पर ही बैठे रहकर माता ठाकुरानी के सिर पर दोनों चरण रखकर स्थिर हैं। दोनों को ही बाह्य चेतना नहीं थी।

इस मकान में ही वे अपने जन्मदिन झूलन-पूर्णिमा तिथि पर पहने हुए वस्त्र

परित्याग करके डोर-कौपीन और बहिर्वास धारण कर धोती के बन्धन से मुक्त हुए। अपने हाथ से चिट्ठी-पत्र लिखना इस समय से ही बन्द हो गया। इस मकान में विभिन्न स्थानों के बहुत से सम्मानित परिवार और देश के उच्च शिक्षित माननीय सज्जनों ने अलौकिक रूप से ठाकुर से दीक्षा प्राप्त की।

इस मकान में निवास के समय एक दिन भाव में उन्मत्त श्रीधर सूर्योदय के पूर्व स्नान करके वराहरूपी भगवान का दर्शन पाकर गंगा के किनारे-किनारे दौड़-भाग करने लगे। प्रातः से संध्या तक बिना कुछ खाए काशीपुर, वराहनगर आदि स्थानों में दौड़-भाग करके संध्या के पूर्व नदी के किनारे एक पशु की हड्डी पड़ी हुई देखकर श्रीधर उसको तुरन्त उठा लिए और लम्बी श्वास लेकर दौड़ते हुए ठाकुर के पास आए। पसीने से लथपथ होकर ठाकुर के पास पहुँचकर उन्हें साष्टांग प्रणाम कर हड्डी उनके सामने रखकर बोले, यह लो अपना दाँत। ठाकुर उसे हाथ में लेकर भावावेश में अभिभूत हो गए।

देह की अनाहत ध्वनि

इस मकान में माता ठाकुरानी ठाकुर के पास बैठकर प्रायः रातभर उनको हवा करती थीं। कभी-कभी पैर दबाते-दबाते भाव में विभोर होकर ठाकुर के चरण-तल में पड़ी रहतीं। एक दिन माता ठाकुरानी ने बातों-ही-बातों में वृन्दावन बाबू से कहा कि रात्रि में समय-समय पर गोस्वामीजी के शरीर से एक प्रकार की मधुर ध्वनि बाहर होती है। वह इतनी सुमधुर होती है कि सुनते-सुनते वे मुग्ध हो जाती हैं। यह बात सुनकर इस ध्वनि को सुनने का वृन्दावन बाबू को बड़ा कौतुहल हुआ। उन्होंने अवसर देखकर गहन रात्रि के समय ठाकुर के आसन-घर में प्रवेश किया। ठाकुर तब ध्यानस्थ थे। वृन्दावन बाबू ठाकुर के चरण स्पर्श करके प्रणाम कर, कान लगाकर ध्वनि सुनने लगे। कुछ ही देर में ठाकुर ने सिर उठाकर कहा– **क्या बात है वृन्दावन?** वृन्दावन बाबू ने कहा– महाशय! सुना था आपके शरीर से एक प्रकार की ध्वनि बाहर होती है, वही सुनने आया था। ठाकुर ने पूछा– **अच्छा, सुना तो?** वृन्दावन बाबू ने कहा– हाँ, यह ध्वनि सुनने से आश्चर्य हुआ। ऐसी सुमधुर मनोहर ध्वनि लगता है जगत् में और नहीं है। यह किसकी ध्वनि है?

ठाकुर ने कहा– **इसे अनाहत ध्वनि कहते हैं। साधक लोगों के शरीर से यह ध्वनि उठती है। यह इतना मधुर होती है कि साँप सुन ले तो बिल्कुल साधक के शरीर पर चढ़ जाएगा।**

इस समय पूर्व बंगाल के कोई एक विशिष्ट सभ्य व्यक्ति, ठाकुर से दीक्षा लेने की प्रार्थना की सूचना देकर, कोलकाता आने के लिए व्याकुल हैं। इस पर

ठाकुर ने कहा– **"वे कोलकाता आ सकते हैं, लेकिन हमारे यहाँ उनकी कोई आवश्यकता नहीं है।"** कोई-कोई गुरुभाई उस सभ्य व्यक्ति के विविध सद्गुणों की बातें कर ठाकुर से उनकी दीक्षा की आकांक्षा प्रकट करने लगे। ठाकुर ने थोड़ा मुस्कुराते हुए उन लोगों से कहा– **जिन लोगों को साधन मिलना है उन लोगों को निश्चित ही मिलेगा। ऐसा कोई यदि मेरे पास न भी आए, मैं उनके पास जाकर दीक्षा दूँगा। वे यदि मुझे बाँस लेकर भगाए, तो मार खाकर भी उनको दीक्षा देकर आऊँगा।**

सूक्ष्म शरीर और परलोक के सम्बन्ध में श्रीयुत् देवेन्द्रनाथ ठाकुर की बात

ठाकुर एक दिन श्रीयुत् देवेन्द्रनाथ सामन्त, कुंजबिहारी गुह आदि गुरुभाइयों को साथ लेकर आचार्य श्रीयुत् नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय सहित महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के दर्शन करने गए थे। महर्षि ने उन्हें बहुत आदर करके पास में बैठाया एवं शिष्यों की कुशलादि पूछी। तरह-तरह की बातचीत के बाद उन्होंने कहा, मुझे बचपन से ही गरीब लोग किस प्रकार रहते हैं, उत्सवादि में क्या करते हैं, यह सब जानने की बड़ी इच्छा होती थी। उसके लिए कई बार गुप्त रूप से भिन्न-भिन्न वेश में उनके घर जाता था। उन लोगों के अनजाने में सब देखकर आ जाता था। अब भगवान दया करके मुझे साथ लेकर विभिन्न स्थानों पर घूमा लाते हैं। अभी तुम लोगों के आने के पहले ही उनके साथ विभिन्न स्थानों पर घूमकर आया हूँ। उनकी दया का अन्त नहीं है।'

बातों-ही-बातों में ठाकुर ने पूछा– **मृत्यु के बाद मनुष्य कहाँ जाता है?** महर्षि ने कहा– 'क्यों? जो सब ग्रह-नक्षत्र देखते हो उसमें जाता है!' परलोक के सम्बन्ध में इसी प्रकार की अनेक बातों के बाद महर्षि को प्रणाम करके ठाकुर संध्या के बाद मकान पर आ गए।

जातिभेद के सम्बन्ध में ठाकुर का उपदेश

हमारे गुरुभाई श्रीयुत् राखालचन्द्र राय बरीशाल में जाकर वहाँ के गुरुभाइयों के पास प्रचार करने लगे कि 'जातिभेद बुद्धि रहने से हम लोगों में से किसी की भी इस साधन में बिन्दुमात्र भी उन्नति नहीं होगी', ठाकुर ने इस प्रकार कहा है; इस बात को लेकर बरीशाल के गुरुभाइयों के मध्य तरह-तरह की आलोचना होने लगी। श्रीयुत् शिवचन्द्र गुह ने इस विषय में स्पष्ट जानने के अभिप्राय से कुंज बाबू को पत्र लिखा; वे ठाकुर को जब पत्र सुनाए तो ठाकुर ने तुरन्त ही कुंज बाबू के

द्वारा निम्नलिखित चिट्ठी शिव बाबू के पास भिजवाई–

26 सितम्बर, 1889 ई॰
50/1, सुकिया स्ट्रीट, कोलकाता।

परम पूजनीय, श्रीयुत् शिवचन्द्र गुह,
श्रीचरण कमलेषु,

जातिभेद के सम्बन्ध में बरीशाल में इस समय जो गड़बड़ हुई है, उसके सम्बन्ध में श्रीयुक्तेश्वर गोस्वामीजी से पूछने पर उन्होंने मुझसे तुरन्त जो लिखने को कहा है, उसे उनके सम्मुख ही लिख रहा हूँ– "सत्त्व, रजः, तमः ये तीन ही गुण हैं; ये तीन ही वास्तविक जाति हैं। ये तीन गुण त्याग किये बिना जाति परित्याग करना नहीं होता। एक बात में कहने जाओ तो अभिमान ही जाति है। इस अभिमान का त्याग किये बिना जाति का परित्याग नहीं होता। जिस किसी के भी हाथ का भोजन कर लेने से ही जातिभेद नहीं जाता। ऐसा आचरण जातिभेद त्याग का उपाय नहीं है। अभिमान त्याग करो, समदर्शी बनो, जातिभेद अपने-आप चला जाएगा। जो जिस सम्प्रदाय में हैं, वे उसी सम्प्रदाय की आचार पद्धति के अनुसार चलें। अवस्था हुए बिना देखा-देखी कोई कार्य नहीं करना। साधन के उद्देश्य से जीवन गठित होने पर, जैसा जीवन होगा बाहर में वैसा ही प्रकट होगा। भीतर और बाहर एक होना ही वास्तविक जीवन है। अतः विपक्ष में न चलकर साधन के पक्ष पर अग्रसर हो। इति–

सेवकाधम
श्रीकुंजबिहारी गुह।

श्रीयुत् कुंजबिहारी ने लिखा है– 'सुकिया स्ट्रीट, ठाकुर के निवास-स्थान पर एक दिन मध्याह्न के समय वहाँ के समस्त गुरुभाइयों को और विलायत से लौटे हुए श्रीयुत् द्विजदास दत्त आदि को भोजन का निमन्त्रण दिया गया। हम सभी एक साथ नीचे वाले कमरे के बरामदे में भोजन करने के लिए बैठे। इसी बीच जातिभेद की बात उठी; ठाकुर ने कहा– **गुरु के घर पर एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने में दोष नहीं है। मैं यदि तुम लोगों के देश में जाऊँ, तब ऐसा नहीं करना। सबको सामाजिक नियम के अनुसार चलना होगा।**'

ठाकुर का स्टार-थियेटर दर्शन

एक दिन 'स्टार-थियेटर' के श्रीयुत् गिरीशचन्द्र घोष ने 'चैतन्यलीला' देखने के लिए सब शिष्यों सहित ठाकुर को निमन्त्रण दिया। संध्या के बाद ठाकुर

यथासमय सबको लेकर नाट्यशाला में पहुँचे। थियेटर के अध्यक्ष श्रीयुत् अमृतलाल बसु ने तुरन्त बड़े आदरपूर्वक उन लोगों की अगवानी करके सबको रंगमंच के सामने बैठाया। ठाकुर अभिनय देखते-देखते भावावेश में अभिभूत हो गए।

केशव कुरु करुणा दीने कुंज काननचारी।
माधव-मनोमोहन,मोहन मुरलीधारी।
हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल मन आमार।
व्रजकिशोर कालियहर कातर भयभंजन;
नयन बाँका बाँका शिखिपाखा,
राधिका-हृदि-रंजन,
गोवर्धन-धारण, वन-कुसुम-भूषण,
दामोदर कंस दर्पहारी
श्याम रास-रस-विहारी
हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल मन आमार।

यह गान आरम्भ होते ही ठाकुर भाव का संवरण न कर पाने से एकदम उछल पड़े। 'जय शचीनन्दन', 'जय शचीनन्दन' कहते-कहते उद्दाम नृत्य करने लगे। तब भाव-विभोर गुरुभाई लोग भी सुधबुध खो बैठे। वे लोग बारम्बार हरिध्वनि करके ठाकुर के चारों ओर नृत्य करने लगे। 'गड़बड़ हो रहा है, गड़बड़ हो रहा है; रुक जाओ, रुक जाओ' इत्यादि शब्द भी जगह-जगह से उठने लगे। इस समय रंगमंच पर अमृतलाल बसु जी उपस्थित होकर, आज नाटक कराने का मेरा उद्देश्य सार्थक हो गया, आज मैं धन्य हो गया— ऐसे तरह-तरह के वाक्य वे बार-बार कहने लगे। फिर ताली बजाते हुए 'हरिबोल हरिबोल' कहकर अभिनेत्रियों का उत्साह बढ़ाने लगे। तुरन्त फिर गान आरम्भ हो गया।

चन्द्रकिरण अंगे, नम वामनरूपीधारी।
गोपीगण-मनोमोहन, मंजु-कुंजचारी।।
जय राधे, श्रीराधे।
व्रजबालकसंग, मदन-मानभंग।
दैत्यछलन नारायण, सुरगण-भयहारी,
व्रजविहारी गोपनारी-मान-भिखारी।
जय राधे, श्री राधे।।

इस समय भावावेश से परिपूर्ण नृत्य-गीत से दर्शक मण्डली का चित्त भी अभिभूत हो गया। देखते-देखते नाट्य-मन्दिर में बड़ा कोलाहल मच गया। हरिमोहन स्वामीजी भावावेश से दोनों हाथ ऊपर करके नृत्य करने लगे। भक्तप्रवर

श्रीधर क्षणभर के लिए ठाकुर की ओर स्थिर दृष्टि से देखकर काँपते हुए बेहोश हो गए। बाद में चेतना लौटने पर उच्च स्वर में हरिबोल कहते-कहते विविध प्रकार से नृत्य करने के साथ सभी को मतवाला कर दिये। ठाकुर के हाथ संचानलपूर्वक मधुर हरिध्वनि की तड़ित् झंकार से सभी का अन्तःकरण काँप उठा। नाटक का अभिनय स्थगित रखकर इस प्रकार बहुत देर तक कीर्तन का उत्सव हुआ। उसके बाद सभी अन्यंत प्रसन्न मन से अपने घर लौट गए।

वेश्या द्वारा समाज का परिणाम

कोलकाता की कोई एक प्रसिद्ध अभिनेत्री, वेश्या थी। उनकी एक ही कन्या थी, वह बेथुन स्कूल में पढ़ती थी। ब्राह्मसमाज के किसी एक व्यक्ति के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव हुआ। ठाकुर ने उसे सुनकर कहा– **वेश्या की लड़की को समाज में लेना कभी भी उचित नहीं है। इससे समाज कलुषित होगा। यद्यपि पहले बहुत भली एवं सच्चरित्र लगे, किन्तु समय पर भीतर का बीज अंकुरित होने से सब प्रगट हो जाएगा।**

ठाकुर इस विषय को समझाने के लिए 'नारद-पंचरात्र' से वेश्या की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें कही।

रोग अपने-आप हटता है, अविश्वासी के लिए उपाय क्या है?

गुरुभाई श्रीयुत् श्रीशचन्द्र मुखोपाध्याय दीर्घकाल दुःसह रोग भोगकर मरणासन्न अवस्था में पड़े हैं। अनेक लोग भी उनके जीवन से निराश हो गए हैं। एक बार रात्रि में मृत्यु के समस्त लक्षण प्रगट हो गए। श्रीश तब व्याकुल होकर साथियों से कहने लगे–'अभी मेरी मृत्यु हो जाएगी। इस समय एक बार दया करके तुम लोग ठाकुर को लाकर दिखा दो।' श्रीयुत् कुंजबिहारी गुह तुरन्त, रात्रि में दो बजे ही ठाकुर के पास दौड़े। ठाकुर श्रीश का कथन और उसकी अवस्था के सम्बन्ध में सुनकर बोले– **'जाकर उनसे कह देना कोई डर की कोई बात नहीं है। अस्वस्थता दूर हो जाएगी। अस्थिर न हो।'**

कुछ ही दिन बाद श्रीश की अस्वस्थता दूर हो गई। तब एक दिन ठाकुर गंगास्नान करके आते समय श्रीश को देखकर उनके घर पहुँच गए। वहाँ कुंज बाबू को ज्वर से पीड़ित देखकर उन्होंने पूछा– **तुम्हारी चिकित्सा अभी कौन कर रहा है?** कुंज बाबू ने एक विद्वान् चिकित्सक का नाम कहा। ठाकुर ने कहा– **डॉक्टर का साध्य नहीं है जो तुम्हारा रोग दूर कर दे। जब दूर होगा, अपने-आप दूर होगा। देखा तो, श्रीश का रोग कौन दूर कर पाया?**

कुंज बाबू ने कहा– आपने ही तो कहा था कि औषधि के सेवन से ही बहुत से कर्म-भोग कट जाते हैं।

ठाकुर ने कहा– **हाँ, वह ठीक है।**

श्रीचरण चक्रवर्ती ने कहा– मेरा अविश्वास तो किसी तरह से जाता नहीं– क्या करूँ?

ठाकुर– **जिन्होंने साधन प्राप्त किया है, उन सभी ने अपने भीतर में कुछ-न-कुछ विश्वास की वस्तु पाई है। अविश्वास के समय उसका स्मरण करने से और उसको पकड़ रखने से विशेष उपकार होता है।**

फिर उन्होंने कहा– **अविश्वास क्या, प्रलोभन के समय में यदि पाँच-छह बार भी नाम-जप किया जा सके तो भी बचाव है; किन्तु कैसा दुर्भाग्य है वह भी कोई कर नहीं पाता।**

पीड़ित कुंज बाबू ने कहा– मैं तो नाम-जप कर ही नहीं पाता।

ठाकुर ने कहा– नाम-जप करने की इच्छा होने से भी काम हो जाता है।

बातों-ही-बातों में ठाकुर ने और भी कहा– **हमारा जो योग है, वह नाम का योग है। गम्भीरनाथ बाबा से श्वास-प्रश्वास में नाम जप की बात सुनी थी। बीस वर्ष बाद उस बात का अर्थ समझा। माँझी और साधारण लोगों के मुख से भी तो कितनी बार सुना हूँ–**

मन पगला रे हर दम में गुरुजी का नाम लेओ।
दम दम में लेओ रे नाम कामाई (छोड़) नहीं दो।

एकजन ने पूछा– हरिदास ठाकुर एक दिन में कैसे तीन लाख नाम जपते थे?

ठाकुर ने कहा– एक लाख उच्च स्वर में, एक लाख मन-ही-मन में और एक लाख उनकी आत्मा में अपने-आप होता था।

कुंज बाबू ने लिखा है, इस मकान में रहते समय अर्थ का बहुत अभाव था। बिछौने के अभाव से माता ठाकुरानी एक फटी हुई चटाई के ऊपर हाथ का ही तकिया लगाकर शयन करती थीं। ठाकुर के व्यवहार के लिए बहुत कम मूल्य का केवल एक देशी कम्बल था। वे शयन के समय ग्रन्थ के ऊपर में एक बहिर्वास बिछाकर उसमें ही सिर रखते थे। कुंज बाबू ठाकुर के व्यवहार के लिए एक दिन एक तकिया बनवाकर लाए। इस पर वृन्दावन बाबू ने ठाकुर के सामने ही कुंज बाबू का उपहास करके कहा, "उन्होंने संन्यास लिया है, तुम उनके लिए तकिया लाए हो? अच्छा, एक गद्दा, एक छाता क्यों नहीं ले आए?" कुंज बाबू दुःखित मन

से चुप रहकर सोचने लगे– इस बात के बाद लगता है ठाकुर अब इस तकिये का उपयोग नहीं करेंगे। किन्तु, कुंज बाबू का अन्यंत आग्रह समझकर दयालु ठाकुर प्रतिदिन ही शयन के समय उसे ग्रहण करते थे।

जो मकान किराए पर लिए थे, वह चार महीने के लिए लिया गया था। निर्दिष्ट समय पूरा होते देखकर ठाकुर ने कम किराए का एक मकान देखने के लिए सभी को कहा। अनुसन्धान करने के बाद गुरुभाइयों ने आकर बतलाया कि कम किराए के मकान का जुगाड़ नहीं हो रहा है, तब ठाकुर ने कहा– **'कोई खपरैल वाला मकान होने से भी काम हो जाएगा।'** मणि बाबू ने किराए का मकान देखने का भार ग्रहण किया।

अगले दिन प्रातः लगभग आठ बजे ठाकुर केवल श्रीधर को लेकर अचानक मकान से बाहर निकल पड़े। दिन के दस बजे मकान में खबर आई– वे शान्तिपुर चले गए हैं। इस संवाद से सभी अत्यन्त दुःखित हो गए। किसी से बिना कुछ कहे अकस्मात् इस प्रकार ठाकुर के जाने के कारण का एक-एक लोग एक-एक प्रकार का अनुमान लगाने लगे। अगले दिन गुरुभाई श्रीयुत् पशुपतिनाथ मुखोपाध्याय जी की सहायता से बाजार का अस्सी रुपये का ऋण परिशोध हुआ। माता ठाकुरानी तुरन्त ही नानीजी और कुतु को लेकर योगजीवन एवं कुंज बाबू के साथ शान्तिपुर रवाना हो गईं। वहाँ जाकर देखीं, ठाकुरमाता उत्कट उन्माद रोग से पागल हो उठी हैं। ठाकुर को देखकर वे समय-समय पर थोड़ा शान्त रहती हैं।

ठाकुरमाँ का भयंकर पागलपन थोड़ा कम होने पर भी समय-समय पर वे शयन-कक्ष में मल-मूत्र त्यागकर उसे सब दिवाल और फर्श पर छिड़क देतीं। प्रातः में माता ठाकुरानी उसे साफ करतीं। नानी को यह बिल्कुल सहन नहीं होता था। वे इसको लेकर कई बार ठाकुर माँ से झगड़ा करती थीं। एक दिन प्रातःकाल में इन सब अनाचार, अत्याचार को लेकर दोनों के बीच भयंकर झगड़ा हो गया। तब ठाकुर ने दो मंजिल पर अपने रहने के कमरे में ठाकुर माँ को ले जाना चाहा। ठाकुर माँ की सेवा-सुश्रुषा, मल-मूत्र साफ करना इत्यादि समस्त ठाकुर स्वयं किया करेंगे कहने लगे। अकारण इस दुर्भोग को अपने सिर पर क्यों लेते हैं कहकर माता ठाकुरानी ठाकुर की बात पर आपत्ति करना आरम्भ कर दीं। नानीजी भी उसमें सम्मिलित होकर भयानक गड़बड़ करने लगीं। इस समय ठाकुर ने हठात् आसन से उठकर माता ठाकुरानी से कहा– **"मैं अभी काशी चला, किराए के लिए आठ रुपये दो।"**

अकस्मात् ठाकुर को काशी जाने के लिए उद्यत देखकर माता ठाकुरानी चौंक उठीं एवं ठाकुर के संकल्प में बाधा देने के अभिप्राय से रुपये देने में

टालमटोल करके कहने लगीं– 'तो फिर मुझे भी साथ में ले लो।' ठाकुर तब भयंकर क्रुद्ध हुए एवं माता ठाकुरानी को धमकाते हुए डण्डे से 'पोर्टमेंट' के ऊपर बारम्बार आघात करने लगे। माता ठाकुरानी ने तुरन्त बॉक्स की चाबी ठाकुर के सामने फेंककर कहा– 'बॉक्स को तोड़ो नहीं, ये लो चाबी।' ठाकुर ने बॉक्स खोलकर आठ रुपये गिनकर ले लिया। फिर माता ठाकुरानी के पास चाबी फेंककर तुरन्त अकेले ही राणाघाट की ओर रवाना हो गए। वहाँ जाकर नदी पार करते समय ठाकुर ने माझी के हाथ में एक रुपया देकर कहा– **"थोड़ी देर में यहाँ पर एक बाबाजी मुझे ढूँढ़ने आएँगे, उनको ये रुपया देकर कहना, मैं काशी जा रहा हूँ– जिससे वे काशी आकर मेरे साथ भेंट कर लें!"**

ठाकुर जब घर से बाहर निकल रहे थे, श्रीधर उस समय किसी कारण से बाहर गए थे। घर आकर श्रीधर ने जैसे ही सुना, ठाकुर काशी चले गए हैं, वे तुरन्त उसी अवस्था में ही पागल की तरह दौड़कर राणाघाट की ओर गए। नदी के किनारे पहुँकर, पार करने के लिए घाट पर पहुँचते ही माझी ने श्रीधर को देखकर कहा– 'कुछ देर हुआ एक साधु यहाँ से स्टेशन गए। वे काशी जाएँगे। मेरे हाथ में एक रुपया देकर बोले कि थोड़ी देर में यहाँ पर एक बाबाजी मेरी तलाश में आएँगे, उनको ये रुपया देकर कहना, मैं काशी जा रहा हूँ; जिससे वे भी काशी जाकर मेरे साथ भेंट कर लें।'

श्रीधर ने माझी से कहा– 'हाँ, वे मेरे गुरु हैं, मैं उनकी ही तलाश में आया हूँ।' माझी ने तुरन्त श्रीधर के हाथ में रुपया दे दिया। तब श्रीधर नदी के पार होकर शीघ्रता से राणाघाट स्टेशन पहुँचे, देखा– यात्री से परिपूर्ण एक ट्रेन स्टेशन पर है। इधर-उधर ताकते-ताकते ठाकुर को गाड़ी के भीतर देख लिए। ठाकुर भी श्रीधर को देखकर पुकारते हुए कहा– **'श्रीधर! मैं काशी जा रहा हूँ। तुम कोलकाता जाकर कुंज के घर में ठहरना। वहाँ से रुपये जुगाड़ करके काशी आना, मेरे साथ भेंट होगी। व्याकुल मत हो।'**

देखते-देखते गाड़ी छूट गई। श्रीधर भी कोलकाता जाकर कुंज बाबू के घर में जा पहुँचे। वहाँ से रेल-किराया के लिए रुपये संग्रह करके अगले दिन काशी के लिए रवाना हो गए। कुछ-एक दिन बाद माता ठाकुरानी नानीजी एवं योगजीवन आदि को लेकर कोलकाता में श्रीयुत् उमेशचन्द्र दत्त जी के निवास-स्थान पर आईं। वहाँ कुछ समय रहकर कुंज बाबू एवं श्रीयुत् विधुभूषण मजूमदार आदि के साथ भेंट करके, काशी जाने की सुव्यवस्था कर लीं। इसी समय एक दिन विष्णु बाबू ने बेंगाल फोटोग्राफर को लाकर माता ठाकुरानी का फोटो खिंचवा लिया। इस फोटो को अनेक गुरुभाइयों ने बहुत आग्रह के साथ ग्रहण किया। माता ठाकुरानी

विलम्ब किये बिना योगजीवन और देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि गुरुभाइयों के साथ काशी चली गईं।

ठाकुर की काशीधाम में अवस्थिति

ठाकुर श्रीकाशीधाम पहुँचकर पहले काकिनिया महाराज के छत्र में ठहरे। कुछ-एक दिन वहाँ रहकर अगस्त्य-कुण्ड के समीप में मानिकतला की माताजी के किराए के मकान में गए। माता ठाकुरानी भी उसी समय योगजीवन को लेकर कुछ-एक गुरुभाइयों के साथ उस मकान में ही उपस्थित हुईं। मकान में दश-बारह लोग हो गए। आहार त्यागी माताजी, चुल्लूभर पानी भी ग्रहण न करके, स्वच्छंद शरीर से, प्रफुल्लित मन से प्रतिदिन सभी को परिवेशनादि सब सेवा कार्य करने लगीं। ठाकुर काशी में महीनेभर से अधिक समय रहे। उनकी उस समय की अद्‌भुत घटनावली लिखने में बहुत बाधा देखकर मैंने उसे छोड़ दिया। कुछ-एक साधारण घटना का थोड़ा बहुत उल्लेख करके रख रहा हूँ।

ठाकुर को संन्यासीवेश में देखकर शहर के अंग्रेजी-शिक्षित वकील, अध्यापक आदि बंगाली बाबू लोग तरह-तरह से उपहास करने लगे। एक दिन श्रीकृष्णानन्द स्वामी और प्रसिद्ध श्रीनाथ राय आदि लोगों ने धर्म-सभा के अधिवेशन में ठाकुर को निमन्त्रित किया। ठाकुर यथासमय सभा में उपस्थित हुए, सभी ने आदर-सत्कार करके उनको संन्यासी मण्डली के अग्रभाग में बैठाया। बहुत-से सम्मानित लोगों के समागम से सभा-स्थल परिपूर्ण हो गया। अधिवेशन का कार्य समापन के बाद संकीर्तन का आयोजन होने लगा। ठाकुर अस्वस्थ रहने के कारण निवास-स्थान पर जाने का प्रयत्न करने लगे; किन्तु कार्यकर्त्ताओं के विशेष अनुरोध से वे संकीर्तन में रुकने के लिए सहमत हो गए। कुछ क्षण बाद ही कीर्तन आरम्भ हुआ। ठाकुर कुछ देर तक स्थिर बैठे रहे। फिर उच्च स्वर में 'हरिबोल, हरिबोल' कहकर नृत्य करना आरम्भ कर दिये। देखते-ही-देखते संकीर्तन में महाभाव की बाढ़ आ गई। सभी दर्शकवृन्द उसमें गोता खाने लगे। शीघ्र ही ठाकुर समाधिस्थ हो गए। कृष्णानन्द स्वामी और सभा के अन्यान्य प्रतिष्ठित व्यक्तिगण आकर ठाकुर की पदधूलि लेने लगे। तब विरोधी बंगाली बाबू लोग भी ठाकुर को प्रणाम करके उनकी अलौकिक शक्ति की प्रशंसा करते-करते चले गए। समाधि भंग होने पर ठाकुर निवास-स्थान पर लौट आए।

विश्वेश्वर की आरती दर्शन

ठाकुर एक दिन संध्या के कुछ पूर्व विश्वेश्वर की आरती दर्शन करने के

लिए मन्दिर में गए। मन्दिर में बहुत भीड़ होने के कारण भीतर प्रवेश न कर पाने से मण्डप के एक किनारे बैठे रहे। रात्रि में लगभग आठ बजे आरती आरम्भ हुई। ठाकुर दूर से ही हाथ जोड़कर खड़े-खड़े आरती दर्शन करने लगे। उनका सारा शरीर थर-थर काँपने लगा। फिर उच्च स्वर में 'बम् भोला, बम् भोला' कहकर नृत्य करना आरम्भ कर दिये। चारों ओर सभी लोगों के आनन्द का मधुर कोलाहल होने लगा। आरती दर्शन न करके सभी उल्लसित भाव से ठाकुर की ओर देखने लगे। ठाकुर नृत्य करते-करते विश्वेश्वर की ओर अग्रसर होते-होते दरवाजे तक आकर फिर पीछे की ओर हटने लगे। तब पण्डे लोग आग्रहपूर्वक वहाँ अबाध गति से नृत्य करने की व्यवस्था कर दिये। ठाकुर 'बम् भोला, बम् भोला' शब्द से सभी को मुग्ध करते हुए उद्दण्ड नृत्य करने लगे। श्रीधर, स्वामीजी आदि लोग भी मतवाले होकर जय-ध्वनि करते हुए ठाकुर के दोनों ओर नृत्य आरम्भ कर दिये। सेवकगण बड़े उत्साह के साथ उच्च स्वर में स्तोत्र-पाठ करके आरती करने लगे। ठाकुर दर्शन करते-करते भावावेश में आकर अचेत हो गए। ठाकुर का दर्शन और स्पर्श करने के लिए लोगों की भीड़ जमा हो गई। रात्रि में ठाकुर बहुत देर से निवास-स्थान पर लौटे।

अन्य एक दिन ठाकुर विश्वेश्वर की आरती देखने मन्दिर के भीतर प्रवेश किये। वहाँ एक कोने में खड़े रहकर दर्शन करने लगे। विश्वेश्वर के दर्शन करते-करते ठाकुर भाव के आवेश में अधीर हो गए; सिसक-सिसककर बालक की तरह रोने लगे। तब अद्भुत रूप से ठाकुर के दोनों नेत्रों से बड़े वेग के साथ अश्रु निकलकर विश्वेश्वर के सामने गिरने लगे। इस अद्भुत घटना को देखकर पण्डे, पुजारी और दर्शकवृन्द आश्चर्य से ठाकुर की ओर देखने लगे। निर्दिष्ट समय बीत जाने के बाद भी वे लोग आनन्द, उत्साह के आवेग में आधा घण्टा अधिक आरती किये।

इसके बाद प्रतिदिन ही दल के दल लोग आकर ठाकुर का दर्शन करने लगे। ठाकुर किस दिन कब विश्वेश्वर के दर्शन के लिए जाएँगे, बंगाली टोला के निवासी नित्य आकर खबर लेकर जाते थे।

भास्करानन्द स्वामी एवं पाल महाशय

ठाकुर एक दिन भास्करानन्द स्वामी के दर्शन करने शिष्यों के साथ दुर्गाबाड़ी गए। एक व्यक्ति ने ठाकुर को स्वामीजी के पास जाने से रोकते हुए कहा, 'उस ओर मत जाइए। इस समय स्वामीजी के साथ भेंट नहीं होगी, वे ध्यानस्थ हैं।' ठाकुर उसे कुछ न कहकर एक वृक्ष के नीचे नेत्र बन्द करके बैठ गए। दो-एक

मिनट में ही स्वामीजी मुस्कुराते हुए 'आनन्द है, आनन्द है' कहते-कहते ठाकुर के सामने आ पहुँचे। स्वामीजी को साष्टांग प्रणाम करने के लिए ठाकुर जैसे ही प्रयत्न करने लगे, स्वामीजी ने तुरन्त उन्हें छाती से लगा लिया। परस्पर आलिंगन करने से दोनों को ही बाह्यज्ञान न रहा। इसी प्रकार स्तब्ध अवस्था में ही बहुत समय बीत गया। उसके बाद दो-एक बातें करके ठाकुर निवास-स्थान पर लौट आए।

ठाकुर के मुख से श्रीयुत् द्वारकानाथ पाल की बातें कई बार सुनी है। ठाकुर ने कहा है, 'ये एक कुशल दार्शनिक पण्डित थे; सब कुछ त्याग करके दीन-हीन कंगाल की तरह काशी के एक प्रान्त दुर्गाबाड़ी की ओर एक निर्जन बागान में वास करते हैं। लोगों के आगमन से भजन में विघ्न होगा, इसलिए वे कुटीर के द्वार पर बाहर से ताला लगा देते हैं; फिर एक छोटी खिड़की से भीतर प्रवेश करते हैं। उसके बाद उसको भी बन्द करके निर्जन कमरे में सारा दिन एक आसन पर ध्यान-मग्न रहते हैं। ठाकुर उनके दर्शन करने के मनोभाव से उनके आश्रम में पहुँचे; कुटीर का द्वार बन्द देखकर दीवाल पर अपना नाम व ठिकाना लिखकर आ गए। अगले दिन दुबले-पतले वृद्ध पाल महाशय, ठाकुर के साथ भेंट करने अगस्त्य-कुण्ड में आए। ठाकुर जितने दिन काशी में थे, पाल महाशय प्रायः ही आते थे। उनके आगमन से ठाकुर के निवास-स्थान पर शिक्षित लोगों का अत्यधिक समागम होने लगा। सनातन धर्म के सूक्ष्म तत्व की आलोचना में और समस्त दर्शन-शास्त्र में उनका अगाध पाण्डित्य देखकर उच्च शिक्षित व्यक्तिगण विस्मित हो गए। शास्त्र अभ्रान्त है यह उनका दृढ़ विश्वास है। विशुद्धानन्द स्वामी, पूर्णानन्द स्वामी इत्यादि और भी कुछ-एक संन्यासी एवं परमहंस के साथ भेंट करके, काशी का प्रयोजन पूर्ण होने पर, ठाकुर फैजाबाद रवाना हो गए।

परमहंसजी का आह्वान

अवसर देखकर ठाकुर से पूछा, 'माता ठाकुरानी के साथ झगड़ा होने से ही क्या आप शान्तिपुर छोड़कर आए थे?'

ठाकुर– **मैं अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं करता। परमहंसजी के आह्वान से ही आया हूँ। झगड़े के समय उन्होंने कहा, 'अभी तुम काशी चले जाओ। काशी में मेरे से भेंट न होने पर अयोध्या जाना। वहाँ भी भेंट न हो तो श्रीवृन्दावन जाना। श्रीवृन्दावन में मेरे साथ भेंट होगी।' झगड़े के समय जैसे ही परमहंसजी का आदेश मिला, मैं तुरन्त ही निकल पड़ा।**

एक दिन ठाकुर शौच के लिए गए थे; कोई समारोह का कीर्तन मकान के

समीप के रास्ते से निकला। ठाकुर उसे सुनते ही शौचालय से हरिबोल, हरिबोल कहते-कहते दौड़कर बाहर निकल पड़े। संकीर्तन के साथ-साथ बहुत देर तक आनन्द करके कुंज में लौट आए। तब अचानक ठाकुर को स्मरण हुआ शौच के बाद जल से धोया नहीं।

और एक दिन भोजन करते-करते खोल-करताल की आवाज सुनकर, बिना मुँह धोए ही दौड़कर बारह आ गए। संकीर्तन उत्सव में आनन्द करके अपराह्न में निवास-स्थान पर लौटे। तब मुख-प्रक्षालनादि किये।

गुरु द्वारा आह्वान के संकेत के अतिरिक्त ठाकुर को इस प्रकार अद्‌भुत आवेग फिर कैसे हो पाता है, पता नहीं।

गुरुभाई के संस्पर्श से विलुप्त गुरु-शक्ति का स्फुरण

कोई यदि कभी सिद्ध महात्मा या महापुरुष से दीक्षा ग्रहण करके इष्ट मन्त्र भूल जाते हैं, गुरु को भी भूल जाते हैं, तो फिर उनके किसी गुरुभाई के साथ किसी प्रकार से थोड़ा संस्पर्श होने से ही, गुरु-शक्ति की थोड़ी क्रिया उनके भीतर होने लगे; ठाकुर के मुख से इस प्रकार का वृत्तान्त सुनकर, इस विषय को समझा हूँ। ठाकुर ने वृत्तान्त इस प्रकार से कहा—

गया में एक समृद्धशाली सभ्य व्यक्ति बचपन में किसी सिद्ध महात्मा से दीक्षा ग्रहण किये थे। बाद में रुपये-पैसे, धन-सम्पत्ति के सम्पर्क में वे साधन-भजन, इष्ट मन्त्र, यहाँ तक कि गुरु को भी भूल गए; क्रमशः घोर विषयी हो गए। एक दिन एक उदासी साधु उनके द्वार पर पहुँचकर बोला, 'हम भूखे हैं, हमको कुछ भोजन दीजिए।' घर का नौकर एक मुट्ठी चावल लाकर साधु से बोला, 'ये लो, चले जाओ।' साधु ने कहा, 'दाना मैं नहीं माँगता, हमको थोड़ा भोजन दो।' बाबू ने साधु की बात सुनकर धमकाते हुए नौकर से कहा, 'यह क्या गड़बड़ हो रही है? अच्छा उपद्रव है! उसको धक्का मारकर भगा ना।' नौकर तुरन्त साधु को धक्के-पर-धक्का मारने लगा। तब साधु बैठ गया एवं कहने लगा 'हम बहुत भूखे हैं, जरा भोजन दे दीजिए।' साधु की जिद देखकर, बाबू एकदम आग-बबूला हो गए; 'ठहर बदमाश, भोजन देता हूँ' कहकर, साधु को जाकर पकड़ लिए, घूँसा, चाँटा और लात मारते-मारते उसको धराशायी कर दिये। साधु 'अहा रे गुरुजी' कहकर चीत्कारने लगे। इस समय बाबू को क्या हुआ भगवान जाने, वे लात मारते-मारते अचानक रुककर खड़े हो गए, थर-थर काँपते हुए गिरकर साधु को जकड़ लिए

एवं बारम्बार साधु के चरणों में गिरकर रोते-रोते कहने लगे, 'अरे तुम कौन हो, अरे तुम कौन हो?' साधु उनके शरीर पर हाथ फेरते-फेरते बोले, 'अरे, हम तेरे गुरुभाई हैं, हम तेरे गुरुभाई हैं।' यह कहकर साधु तुरन्त दौड़कर एक ओर चले गए। फिर बाबू बहुत प्रयास करके भी उनको नहीं ढूँढ पाए। इस घटना के बाद से बाबू का स्वभाव आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित हो गया। वे साधन-भजन करने लगे, अल्प दिनों के मध्य ही वे सदाचारी, निष्ठावान्, भजनानन्दी हो गए।

नन्दोत्सव, दर्शन के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर

{बंगला सन् 1297, श्रावण 24, शुक्रवार। **(8 अगस्त, सन् 1890 ई०)**}

आज जन्माष्टमी है। पूरा वृन्दावन आज बड़े आनन्द उत्सव में मतवाला हो रहा है, ठाकुर के साथ हम लोग शृंगार-वट गए। श्रीयुत् राखाल बाबू, प्रबोध बाबू, दक्ष बाबू एवं अभय बाबू भी हमारे साथ गए। शृंगार-वट के आँगन को लोगों से परिपूर्ण देखा। हाँडियों में दही ला-लाकर उसमें बहुत सारी हल्दी मिलाकर उसे व्रजवासी और वैष्णव बाबाजी लोग उछाल-उछालकर चारों ओर फेंकने लगे। सभी एक-दूसरे के अंग में बड़े आनन्दपूर्वक पीला दही मलकर अत्यन्त उत्साह के साथ नृत्य आरम्भ कर दिये। नन्दोत्सव का महासंकीर्तन आरम्भ हो गया। क्रमशः कीर्तन खूब जम गया। उत्साह के साथ बाबाजी लोग नृत्य करते-करते आँगन में फिसल-फिसलकर 'धमाधम्' गिर पड़ने लगे। श्रीधर सर्वांग में पीला दही मलकर व्रजवासियों के साथ मतवाले हो गए। वे समय-समय पर दोनों हाथ उठाकर आकाश की ओर दृष्टि करके 'जय निताई, जय निताई' कहते-कहते गिर पड़ने लगे। ठाकुर भावावेश में बालक की तरह संकीर्तन-स्थल पर इधर-इधर दौड़ने लगे। फिर भूमि पर गिरकर साष्टांग प्रणाम करके अचेत हो गए। ठाकुर लगभग तीन घण्टे तक समाधिस्थ अवस्था में रहे। अपराह्ण में हम सभी यमुना में स्नान करके कुंज में लौट आए। श्रीधर कीर्तन-स्थल में नित्यानन्द और अद्वैतप्रभु के विभिन्न प्रकार से नृत्य करने का विवरण ठाकुर को बतलाकर आनन्द करने लगे।

श्रीधर चले गए। फिर मैंने ठाकुर से पूछा– 'जन्माष्टमी में उपवास की व्यवस्था भिन्न-भिन्न प्रकार की है। शाक्त लोगों के साथ कभी-कभी वैष्णवों का मत मिलता नहीं, मैं किस मत से उपवास करूँगा?'

ठाकुर ने कहा– **"व्रत-उपवास आदि वंश-परम्परा में जिसका जो नियम है, वे उसी मत से ही करें।"**

मैंने कहा– हमारा लक्ष्य क्या है? किस रूप में भगवान हम लोगों के समक्ष

प्रकट होंगे?

ठाकुर ने कहा— **"हमारे इस साधन में कोई देवता लक्ष्य नहीं हैं। एकमात्र भगवान ही लक्ष्य हैं। फिर भी जिनका जैसा भाव है, जिनके जो कुल देवता हैं, भगवान उनको उसी भाव से उसी रूप में ही आरम्भ में दर्शन दिया करते हैं।"**

मैंने पूछा— हम लोगों के मध्य जो लोग ब्राह्मसमाज में थे, वे लोग तो किसी देवी-देवता का विचार नहीं करते थे, मानते भी नहीं थे; उनके समक्ष भगवान किस भाव से प्रकट होंगे?

ठाकुर ने कहा— **मैंने कुछ-एक ऐसी घटनाएँ देखी है, कोई-कोई अच्छे-अच्छे ब्राह्म बहुत दिन उपासनादि करके मुझसे आकर कहते हैं, 'महाशय, अमुक देवता के भाव और रूप मन में क्यों आते हैं? कभी तो वह सब विचार किया नहीं, कल्पना भी किया नहीं; फिर भी ऐसा क्यों हुआ?' मैंने उनकी बात का विचार करके देखा, जिनके जो कुल देवता हैं, उनके भीतर उसी देवता का ही रूप और भाव आ जाता है। पितृ-पितामह आदि वंश के पूर्वजों से जो सब भाव रक्त मांस के साथ हमारे भीतर जड़ित रहता है, वह क्या सहज में ही जाता है? ब्रह्मोपासक होने से क्या होता है? ब्रह्म जब प्रकाशित होंगे, तब एक भाव में, एक रूप में ही तो प्रकट होंगे? अनेक स्थानों में देखा गया है, जिनके वंश के जो देवता हैं, ब्रह्म उनके समक्ष उसी रूप में ही आरम्भ में प्रकट होते हैं, फिर उससे अन्यान्य देवी-देवता और जो कुछ हैं धीरे-धीरे प्रकट होते रहते हैं।**

मैंने कहा— मुझे लगता है ब्राह्मसमाज के पल्ले में पड़कर मेरी बहुत हानि हुई है; सरल विश्वास अब नहीं रहा। सब में ही सन्देह है, सब टूट-फूटकर एक हो गया है। वहाँ गया ही क्यों?

ठाकुर ने कहा— **सरल विश्वास जिन्होंने तोड़ा है, अब फिर से गठन भी वे ही करेंगे। फिर इसके लिए तुम सोचते क्यों हो? अब जो होगा वह ठीक होगा। वह अब टूटेगा नहीं। ब्राह्मसमाज में जाकर हानि कुछ भी नहीं हुई है, बहुत उपकार हुआ है। ब्राह्मसमाज में जाने से ही नीति, चरित्रादि की रक्षा हुई है। फिर प्रथम अवस्था में ब्रह्म-ज्ञान ही होना आवश्यक है। ब्रह्म-ज्ञान हुए बिना किसी प्रकार से ठीक तत्त्व जानने का अधिकार नहीं होता। इसलिए ऋषि लोग प्रथम अवस्था में ब्रह्म-ज्ञान की ही शिक्षा देते हैं। ब्रह्म सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप, पवित्रस्वरूप, मंगलमय, निर्विकार, निराकार इत्यादि सब भावों का ध्यान करते-करते, जब**

धीरे-धीरे उसके भीतर से होकर अलौकिक रूप की अद्‌भुत छटा प्रगट होने लगती है, तभी उसे समझा जाता है, पकड़ा जाता है।

मैंने फिर पूछा– हम लोगों के मध्य ब्रह्मसमाज के भीतर से होकर सब तो आए नहीं हैं, जो लोग हिन्दू समाज में रहकर इस साधन को प्राप्त किये हैं, उन्हें सब तत्त्व का बोध होता है कि नहीं?

ठाकुर ने कहा– **वह क्यों नहीं होगा? फिर भी थोड़ा कठिन हैं। प्रथम अवस्था में जो लोग ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करते हैं, सब तत्त्व ग्रहण करने में उन लोगों को वैसा कुछ कष्ट नहीं होता; बहुत सहज में ही अर्जित कर सकते हैं। और ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त हुए बिना तो कुछ होने का उपाय ही नहीं है। इसीलिए प्रथम अवस्था में वह होना अच्छा है, इससे सब कुछ सहज हो जाता है। जिससे ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त हो, वही करना कर्तव्य है, वही करो।**

ठाकुर थोड़ी देर चुप रहकर फिर स्वयं-ही कहने लगे– **निश्चय ही ब्राह्मसमाज में जाकर अनेक लोगों को बहुत हानि भी हुई है। ब्राह्मसमाज में जितनी भी अच्छाई है, उसे तो सहज में सभी ग्रहण कर नहीं पाते; जिससे अनिष्ट होता है, ऐसे सब विषयों में ही साधारण लोग प्रायः आसक्त हो जाते हैं। अविश्वास, सन्देह आदि कितने ही वृथा संस्कार से कोई-कोई बड़ा ही कष्ट भोगते हैं। सहज में वह संस्कार जाता नहीं; इन सब में संशोधन होना बड़ा ही कठिन है।**

इन सब बातचीत में बहुत समय बीत गए; ठाकुर के आदेशानुसार महोत्सव की पुरी, कचौरी, मिठाई आदि प्रसाद पूर्ण रूप से भोजन किया। ठाकुर के पास बैठकर नाम-जप करते-करते देखा– बारम्बार एक अति उज्ज्वल चिकनी काली ज्योति झिलमिल करके एक-एक बार प्रगट होकर फिर अन्तर्धान होने लगी; कितनी देर तक इस ज्योति के सौन्दर्य के प्रति मुग्ध रहा। भोजन के थोड़ी देर बाद प्राणायाम आरम्भ करने पर माता ठाकुरानी ने उसे करने के लिए मना किया।

ठाकुर ने कहा– **बहुत खाली पेट में या भरपूर पेट में प्राणायाम नहीं करते। भोजन के लगभग तीन घण्टे बाद करना चाहिए।**

अभय बाबू के प्रति कृपा; गोसाँईजी और काठिया बाबा का प्रथम साक्षात्कार

आज श्रीयुत् अभयनारायण राय के साथ बातचीत में उनके जीवन की एक अच्छी घटना सुनकर बड़ा ही आनन्द हुआ। अभय बाबू के साथ मेरा परिचय नया

नहीं है, पहले भी फैजाबाद में भैया के निवास पर उनके साथ मेरी भेंट हुई थी। तब उनको कोई धार्मिक वेश धारण करते देखा नहीं था। इस बार श्रीवृन्दावन में अभयबाबू को संन्यासी के वेश में देख रहा हूँ। उनके ही मुख से सुना– कुछ समय पूर्व, एक दिन वे मानसिक ज्वाला की यन्त्रणा से पागल की तरह होकर आत्महत्या करने का संकल्प किये। यमुना में डूब जाएँगे स्थिर करके, उसके किनारे पहुँच गए। उसी समय श्रीवृन्दावन के चौरासी कोस के महन्त सिद्ध महापुरुष श्रीरामदास काठिया बाबा, अभय बाबू का अभिप्राय समझकर अचानक उनके पास आकर खड़े हो गए। अज्ञात महापुरुष ने अपने-आप ही स्नेहपूर्वक सान्त्वना देकर भरोसा दिलाते हुए कहा, 'तुमको मैं दीक्षा दे रहा हूँ; समस्त अशान्ति दूर हो जाएगी। तुम वैसा संकल्प त्याग दो।' सिद्ध महात्मा ने ऐसा कहकर अभय बाबू को दीक्षा प्रदान की। तब अभय बाबू मन्त्र-शक्ति के प्रभाव से एक तरह से बाह्य-ज्ञान से दूर होकर उन्मत्तवत् कूदने लगे एवं उसी अवस्था में ही, सामने एक वृक्ष की डाल पकड़कर उसमें झूलने लगे। उसके बाद काठिया बाबा धीरे-धीरे उनको स्थिर करके चले गए। अभय बाबू ने कहा, 'इस बार श्रीवृन्दावन में आने के पूर्व कुछ समय गया के आकाशगंगा पहाड़ में था। एक दिन स्वप्न में देखा, काठिया बाबा ने मुझसे कहा कि चलो, तुमको एक असली महात्मा का दर्शन कराएँगे। यह कहकर मुझे साथ में लेकर दाऊजी के मन्दिर में गोस्वामी प्रभु के पास पहुँचे। वे दाऊजी के 'जगमोहन' (सभा-मण्डप) में बैठे हुए थे। बहुत-से व्रजवासी, साधु, ब्राह्मणादि को गोसाँईजी के पास खड़े देखा। गोस्वामी प्रभु ने दया करके अँगुली से निर्देशपूर्वक मुझे दाऊजी ठाकुर का दर्शन कराया एवं आदेश किया कि, 'भक्तमाल ग्रन्थ का पाठ और निराहार रहकर एकादशी व्रत करना।' इस मन्दिर एवं गोस्वामी प्रभु के बारे में मैं कुछ-भी नहीं जानता था। स्वप्न दर्शन के कुछ समय बाद, घटना-क्रम से मैंने श्रीवृन्दावन की यात्रा की एवं दाऊजी के मन्दिर में आया। यहाँ गोस्वामीजी को देखते ही, स्वप्न में दिखे महात्मा के रूप में उनको पहचानकर, आश्चर्यचकित रह गया। गोस्वामीजी के आश्रम में ही मैं रहने लगा। एक दिन सुना, श्रीवृन्दावन में काठिया बाबा आए हैं। तुरन्त मैं उनके दर्शन करने गया। उन्होंने मुझे देखकर कहा, 'देख स्वप्न तो प्रत्यक्ष हुआ! उन्हीं का नाम साधु है। वही सच्चा साधु है। चल हम भी दर्शन करने के वास्ते तुम्हारे साथ जाएँगे।' यह कहकर काठिया बाबा मेरे साथ गोसाँईजी के सम्मुख उपस्थित हुए। उन दोनों ने एक-दूसरे को दण्डवत् प्रणाम करके अपने-अपने आसन पर बैठकर सम्पूर्ण रूप से अपरिचित की तरह बातचीत करने लगे। यह देखकर बड़ा ही विस्मित हुआ। इस दिन गोस्वामीजी ने काठिया बाबा को बड़े आदरपूर्वक भोजन कराया। अगले दिन मेरे साथ गोस्वामीजी काठिया बाबा के दर्शन करने गए। दोनों एक ही स्थान पर बैठकर ध्यान-मग्न

अवस्था में बहुत समय अतिवाहित किया; एक बात भी नहीं हुई। इस प्रकार लगातार तीन-चार दिन वे लोग परस्पर मिले; किन्तु एकदम नीरव रहे, एक वाक्य भी नहीं कहे। तब एक दिन मैंने गोस्वामीजी से पूछा, 'आप लोग तो कोई बातचीत ही नहीं करते हैं?' गोसाँईजी ने कहा– **'मुख से न बोलकर भी महापुरुषों की समस्त बातें अन्तर में प्रवेश करती है, भीतर ही भीतर बातें होती है।'** एक दिन गोस्वामीजी काठिया बाबा को प्रणाम करके उनके पास बैठ गए। दोनों ही अपने-अपने भाव में निर्वाक एवं एकाग्र अवस्था में रहे। अचानक काठिया बाबा, गोस्वामीजी का घुटना स्पर्श करके प्रणाम करते हुए बोले, 'बाबा! हम आपके बालक हैं।' गोसाँईजी तुरन्त काठिया बाबा को दोनों हाथों से पकड़कर छाती से लगा लिया।

काठिया बाबा बहुत समय से प्रतिदिन दिन में अधिकांश समय सेवाकुंज के द्वार पर आसन बिछाकर बैठते आ रहे हैं। इसका कारण क्या है पूछने पर बोले थे कि इस स्थान पर ही उन्हें सर्वप्रथम अप्राकृत-लीला का दर्शन हुआ है। इसीलिए प्रतिदिन इस स्थान में बैठकर वे अभी भी नित्य-लीला का दर्शन करते हैं।

गोसाँईजी की अनुकम्पा

बातों-ही-बातों में अभय बाबू ने कहा– एक दिन मथुरा के सरकारी डॉक्टर श्री मनोमोहन दास, एक थाली-भर बड़े-बड़े लड्डू लेकर कुंज में उपस्थित हुए। गोस्वामीजी को न पाकर उनकी सेवा के लिए उसे दामोदर पुजारी के हाथ में देकर चले गए। दामोदर इन लड्डुओं में से थोड़ा-सा यहाँ रखकर बाकी सब अपने घर भेज दिया। अगले दिन प्रातःकाल दामोदर ने आकर गोस्वामीजी से कहा– "बाबा, मनोहर बाबू ने छह लड्डू दिये थे; आपके लिए दो रखकर, दाऊजी ठाकुर को दो लड्डू, अभय बाबू को एक और श्रीधर बाबू को एक दे दिया।" यह बात मैंने कुछ ही दूर में रहकर सुनी। बाद में दामोदर के ऊपर बहुत अप्रसन्न होकर, गोस्वामीजी से कहा– 'मनी-आर्डर जो आता है, उसमें तो आप केवल हस्ताक्षर करते हैं; पूरा दामोदर ले जाता है, और जो मन में आवे वह भोजन देकर आपको कष्ट देता है। कल भी सब लड्डू अपने घर भेज दिया, यह कैसा व्यवहार है?' गोस्वामीजी खूब हँसकर प्रफुल्ल मुख से मेरी ओर देखकर बोले– **'अहा, अहा! अच्छा किया है। छोटे-छोटे लड़के-बच्चे, परिवारादि है वे लोग खाएँगे। अच्छा ही तो है।'** मैं सुनकर अपनी क्षुद्रता अनुभव करके बहुत लज्जित हुआ। कुछ ही देर बाद गोसाँईजी ने कहा– **"मेरे गुरु का आदेश है, एक वर्ष इसी आसन पर मुझे रहना होगा, उससे जितना क्लेश-कष्ट होता है, होने**

दो। मैं जानता हूँ हम लोगों को आहारादि में कष्ट हो रहा है। अपना-अपना कुछ-कुछ खर्च करके बाजार से लाकर खा लिया करो। फिर रूखा-सूखा खाना भी अच्छा है, उससे इन्द्रिय-संयम होता है।"

महात्मा गौर शिरोमणि

{बंगला सन् 1297, श्रावण 25, शनिवार। **(9 अगस्त, सन् 1890 ई०)**}

आज भोजन के बाद गौर शिरोमणि जी की बात उठी। सुना हूँ, एक दिन श्रीधर, शिरोमणि जी के दर्शन करने हेतु उनके कुंज में जाकर देखे, वे सो रहे हैं, इसलिए उसी अवस्था में ही उनका दर्शन करके, उनके चरणों की ओर जाकर उसने कुछ दूरी से प्रणाम किया। निद्रित अवस्था में भी शिरोमणि जी के दोनों चरण उसी समय घूम गए। श्रीधर ने फिर उनके चरणों की ओर जाकर प्रणाम किया; उठकर देखे, शिरोमणि जी के दोनों चरण फिर से अन्य ओर हो गए। श्रीधर ने पुनः चरणों की ओर चार-पाँच हाथ के अन्तर से साष्टांग प्रणाम किया; इस बार भी श्रीधर उठकर देखे, दोनों चरण फिर वहाँ पर नहीं हैं। निद्रित अवस्था में ही शिरोमणि जी के चरण हट जा रहे हैं। तीनों बार एक ही प्रकार की घटना देखकर वे अवाक् होकर चले आए। शिरोमणि जी के पैर छूकर प्रणाम करने का सामर्थ्य किसी का नहीं है। दूर से भी, उनको ज्ञात रहने पर कोई उन्हें पहले प्रणाम नहीं कर पाता। बिना विचार किये, वे सभी को साष्टांग होकर प्रणाम करते हैं। रास्ते में उनके साथ चलना एक बहुत ही मुश्किल काम है। वे चलते-चलते रास्ते के दोनों ओर बिल्ली, बन्दर, गाय, स्त्री, पुरुष एवं विग्रह आदि सबको ही एक भाव से साष्टांग प्रणाम करते-करते अग्रसर होते हैं। श्रीवृन्दावन के सभी स्त्री-पुरुष लोग शिरोमणि जी को सिद्ध महापुरुष कहकर उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखते हैं। ठाकुर ने कहा– **'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।'** (अर्थ– साधक अपने को तृण से भी छोटा माने, वृक्ष से भी अधिक सहनशील होवे। स्वयं सम्मान की आशा किये बिना दूसरों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करे। इस प्रकार अपना आचरण रखकर सर्वदा नाम-कीर्तन करता रहे।) इस श्लोक का यथार्थ दृष्टान्त देखना है तो शिरोमणि जी को जाकर देखो; वर्तमान समय में इस तरह प्रायः देखा नहीं जाता।

शिरोमणि जी की पूर्वकालीन घटना ठाकुर बतलाने लगे– **शिरोमणि जी देश के एक विद्वान् पण्डित थे; समस्त दर्शन, स्मृति और पुराणादि में इनकी विशेष ख्याति थी। एक दिन देश में एक ब्राह्मण के घर पर वे श्रीमद्भागवत सुनने गए। बहुत से सम्मानित ब्राह्मण पण्डित उसी सभा**

में उपस्थित थे। पाठक भक्त-ब्राह्मण, भागवत-पाठ के पूर्व गौर-वन्दना पढ़ने लगे। सर्वत्र ही यही नियम है, किन्तु शिरोमणि जी, वह सुनते ही भड़क उठे। पाठक ब्राह्मण को बुलाकर बोले, "यह क्या है महाशय, यह क्या भागवत पाठ हो रहा है? आप भागवत पाठ करने बैठे हैं, सामने भागवत खुली हुई है; उधर देखकर आप गौर-चन्द्रिका पाठ क्यों कर रहे हैं? ब्राह्मण, पण्डितों के मध्य बैठकर, सामने शालिग्राम रखकर, भागवत पढ़ने के नाम से इन सब मिथ्या वचनों की आवृत्ति किसलिए? भागवत में यह सब कहाँ लिखा है?" भक्त ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर शिरोमणि जी से कहा, "प्रभो! मैं भागवत का ही पाठ कर रहा हूँ। यह सभी भागवत में है। मैं असत्य वाक्य उच्चारण नहीं कर रहा हूँ।" शिरोमणि जी तब आसन से उछल उठे, पाठक के पास आकर बोले– महाशय, 'अनर्पितचरीं' भागवत में कहाँ है देखूँ, एक बार दिखाइए?" ब्राह्मण ने तुरन्त प्रत्येक दो लाइन के बीच रिक्त स्थान दिखाकर कहा, 'इस सफेद स्थान पर दृष्टि रखकर देखिए।' शिरोमणि जी से कहा, 'कहाँ है? यह तो सफेद स्थान दिख रहा है।' ब्राह्मण ने कहा, 'आपकी दृष्टि-शक्ति नहीं है, किस प्रकार देखेंगे? दोनों आँखें थोड़ा साफ कर लीजिए, फिर देख पाएँगे।' शिरोमणि जी अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले, 'शालिग्राम सामने रखकर, भागवत स्पर्श करके, इतने ब्राह्मणों के मध्य आप अनायस झूठ बोल रहे हैं।' ब्राह्मण तब बड़े पराक्रम के साथ कहा, 'आप ऐसी बात न कहें, चुप रहिए। इस ब्राह्मण सभा में शालिग्राम को साक्षी करके, भागवत स्पर्श करके मैं सत्य ही कह रहा हूँ भागवत की प्रत्येक दो लाइन के बीच 'गौर-वन्दना' लिखी हुई है। मैं देख रहा हूँ। आप किसी सिद्ध वैष्णव महात्मा के पास जाकर दीक्षा लेकर आइए, फिर मैं जो सब नियम बताऊँगा ठीक उसके अनुसार एक सप्ताह चलिए; आठवें दिन यहाँ आइए, तब भागवत के प्रत्येक लाइन के बीच-बीच में गौर-चन्द्रिका यदि स्पष्ट रूप से नहीं दिखा सका तो अपनी जीभ काट दूँगा, सभी के समक्ष मैं यह शपथ ले रहा हूँ।' शिरोमणि जी बड़े तेजस्वी पुरुष थे। उसी समय वे जाकर सिद्ध चैतन्यदास बाबाजी से दीक्षा लिए, बाद में पाठक ठाकुर के पास आकर उनकी नियम प्रणाली ग्रहण किये। सात दिन ठीक उसी के अनुसार चले, फिर ब्राह्मण के पास पुनः आकर बोले, 'महाशय, अब आप भागवत में उस गौर-वन्दना को दिखलाएँगे तो?' पाठक ब्राह्मण तुरन्त भागवत खोलकर बोले, 'अच्छा, एक बार आकर देखिए।' तब गौर शिरोमणि जी भागवत के श्लोक के प्रत्येक दो लाइन के भीतर दृष्टि देते

ही देखा, उज्ज्वल स्वर्ण अक्षरों में गौर-वन्दना स्पष्ट लिखी हुई है। तब वे भूमि पर गिरकर लोटने लगे; रोते-रोते अस्थिर हो गए। तुरन्त सब छोड़कर, श्रीवृन्दावन की पैदल यात्रा किये। तब से वे यहीं हैं। ऐसी अवस्था के लोग श्रीवृन्दावन में और नहीं हैं। वे ही यथार्थ वैष्णव हैं।

मत्स्याहार की अनिष्टकारिता, अशुद्ध देह का आशय और परिणाम एवं शुद्धि का उपाय

ठाकुर, गौर शिरोमणि जी की बात कहते-कहते वैष्णवाचार की प्रशंसा करने लगे। तब मैंने अवसर पाकर पूछा– 'योग-साधना के पक्ष में मछली, मांस खाने से क्या कुछ अनिष्ट होता है?'

ठाकुर ने कहा– **कुछ क्या? बहुत ही अनिष्ट होता है।**

मैंने फिर पूछा– मांस खाने से क्षति होती है, यह तो सुना ही हूँ; क्या मछली खाने से भी क्षति होती है?

ठाकुर ने कहा– **मछली खाने से भी क्षति होती है। फिर भी पहले-पहल जो लोग योग का अभ्यास करते हैं, उनको उतनी क्षति नहीं होती, थोड़ा उन्नति होने पर उससे कितनी क्षति होती है, उसे वे लोग अच्छे से समझ पाएँगे। मछली खाने से सूक्ष्म-शरीर के क्रिया-कलाप में बड़ा ही क्लेश होता है, इसलिए अनेक लोग बाध्य होकर उस समय मछली खाना छोड़ देते हैं। मैंने मुसलमान फकीरों एवं बौद्ध योगियों में भी बहुतों को देखा है जिन्होंने बहुत समय तक मांस-मछली का सेवन किया है, वे भी योग आरम्भ करने के बाद कुछ उन्नति प्राप्त होते ही सब छोड़ देने के लिए बाध्य हुए है।**

मैंने कहा– सूक्ष्म-शरीर की गतिविधि तो बहुत उच्च अवस्था की बात लगती है। मांस-मछली खाने से और भी कोई अनिष्ट होता है?

ठाकुर ने कहा– **भोजन के साथ मन का बहुत ही निकट सम्बन्ध है; भोजन सात्त्विक होने से मन भी सात्त्विक होता है। राजसिक और तामसिक भोजन होने से मन भी वैसा ही हो जाता है। मांस-मछली तमोगुणी आहार है, इन सब के आहार के विषय में सर्वदा ही बहुत सावधान रहना होता है।**

माता-पिता आदि गुरुजनों के ऊपर भक्ति क्यों नहीं होती? उसका उपाय क्या है? किसी व्यक्ति के इस प्रश्न पर ठाकुर ने कहा– **पूर्वजन्म में शरीर अशुद्ध रह जाने से माता-पिता एवं अन्य गुरुजनों के ऊपर अभक्ति और घृणा**

होती है। उनके स्नेह करने पर भी अश्रद्धा होती है। यहाँ तक कि भगवान के ऊपर भी भक्ति नहीं होती। पूर्वजन्म के सूक्ष्म परमाणु बाद के जन्म के सूक्ष्म देह के साथ स्थूल देह में प्रविष्ट होते हैं, इसलिए बाद के जन्म में भी माता-पिता आदि के ऊपर अश्रद्धा होती है। इस भक्ति का शरीर के साथ योग है। इसके साथ आत्मा का विशेष कोई योग नहीं है। माता-पिता के साथ देह का योग है। पिता के वीर्य और माता के रक्त से देह की सृष्टि होती है। इस देह को शुद्ध करना होगा, शुद्ध रखना होगा अन्यथा माता-पिता के प्रति भक्ति नहीं होगी। गंगास्नान, तीर्थ-भ्रमण, एकादशी उपवास, पूर्णिमा और अमावस्या का निशिपालन आदि व्रत करने से देह शुद्ध होता है।

ठाकुर कुछ-एक दिन हुए मेरे शरीर को अस्वस्थ देखकर भैया के पास जाने के लिए कह रहे हैं। कल ही मैं फैजाबाद जाऊँगा, निश्चय करके ठाकुर की अनुमति माँगी। उन्होंने बहुत सन्तुष्ट होकर मुझे अनुमति देते हुए कहा– **श्रीवृन्दावन के सब मन्दिरों में जाकर ठाकुरजी का दर्शन करके आओ।** मैं संध्या तक घूमकर श्रीवृन्दावन के प्रसिद्ध विग्रह आदि के दर्शन करके कुंज में लौटा।

ठाकुर से बिदा ग्रहण; माता ठाकुरानी का अन्तिम आदेश

{बंगला सन् 1297, श्रावण 27, सोमवार, एकादशी। **(11 अगस्त, सन् 1890 ई॰)**}

प्रातःकाल झोला, कम्बल बाँधकर फैजाबाद रवाना होने के लिए प्रस्तुत हुआ। गुरुभाइयों से बिदा लेकर दामोदर पुजारी के पास पहुँचा। आठ आना पैसे देकर उनके चरणों में प्रणाम करते ही उन्होंने मेरी पीठ तीन बार ठोकते हुए कहा, 'सुफल, सुफल, सुफल। अब तुम्हारा श्रीवृन्दावनवास सुफल हो गया।' मैं ऊपर आकर गुरुदेव के चरणों में प्रणाम करके बिदा लेने के लिए जैसे ही पहुँचा, उसी समय माता ठाकुरानी मुझे बुलाकर कमरे के भीतर ले गईं। उनके चरण स्पर्श करके प्रणाम करते ही उन्होंने मेरे सिर पर दाहिना हाथ रखते हुए कहा– "कुलदा! भविष्य की बात कही नहीं जा सकती, मेरी इन कुछ बातों का सर्वदा स्मरण रखना; योगजीवन जैसे मेरा पुत्र है, तुमको भी मैं ठीक वैसा ही पुत्र के समान मानती हूँ। इसको केवल एक कहने की बात न समझना; तुमसे सच कह रही हूँ– अपने लड़के की तरह तुम्हें देखती हूँ। तुम योगजीवन के सगे भाई हो, यह मानकर सर्वदा उनका सहारा होकर रहना। शान्तिसुधा के क्लेश से कोई सहानुभूति नहीं रख पाता। उसको क्लेश के समय सान्त्वना देना; और भविष्य में माँ जिससे दस लोगों

के लिए भार न बन जाए, इस विषय का ध्यान रखना। ब्रह्मचर्य लिए हो, अच्छा ही हुआ; शरीर अच्छा स्वस्थ होने पर विवाह करने में क्षति क्या है? गोसाँईजी की अनुमति लेकर, उसके बाद विवाह कर सकते हो, उससे धर्म-कर्म का, साधन-भजन का कोई अनिष्ट नहीं होगा।" यह सब बातें कहकर माता ठाकुरानी ने मुझे आशीर्वाद दिया। मैं गुरुदेव के पास आकर, उनको चरण स्पर्श करके प्रणाम किया। वे स्नेहपूर्वक मेरी ओर कुछ देर तक देखते रहे, फिर मुस्कुराते हुए बोले– **अच्छा अब जाओ– जो कह दिया हूँ वह करने का प्रयास करो; समय-समय पर चिट्ठी लिखना, प्रयोजन के अनुसार उत्तर मिलेगा।**

मेरी फैजाबाद यात्रा : रास्ते में संकट

{बंगला सन् 1297, श्रावण 28, मंगलवार। **(12 अगस्त, सन् 1890 ई०)**}

श्रीवृन्दावन से ट्रेन में चढ़कर सीधे कानपुर आ गया। मन्मथ भैया के घर में पहुँचा। मुझसे मिलने की आकांक्षा उनकी बहुत समय से थी। मुझसे मिलकर उनको बहुत ही आनन्द हुआ। कल या परसों मेरे फैजाबाद जाने की बात सुनकर वे बड़े ही दुःखी हो गए। दश-पन्द्रह दिन रखे बिना वे मुझे कभी छोड़ेगे नहीं, ऐसा बारम्बार कहने लगे। मन्मथ भैया से कहकर मेरा अविलम्ब फैजाबाद जाना असम्भव लगने लगा। तीसरे दिन मध्याह्न में वे जैसे ही कचहरी गए, मैं भी गुप्त रूप से एक इक्का (घोड़ा-गाड़ी) करके कानपुर स्टेशन पहुँच गया। दुर्भाग्यवश उसी समय ट्रेन छूट गई। एक सभ्य व्यक्ति ने मुझसे कहा– अभी इसी इक्के से पोल-घाट चले जाने पर ट्रेन मिल जाएगी। मैं तुरन्त उसी इक्के से पोल-घाट गया। स्टेशन पहुँचकर देखा, कुछ ही पहले ट्रेन छूट गई। तब मैं बड़ी ही मुश्किल में पड़ गया; इधर इक्का वाला किराया देने के लिए बोलने लगा। कागज में मोड़कर पाँच रुपये अंटी में रखा था, किराया देने के लिए जब अंटी में हाथ लगाकर देखा रुपये उसमें नहीं हैं; मैं चौंक उठा! ये रुपये ही मेरे लिए रास्ते का सहारा था। मैं विषम संकट में पड़कर गुरुदेव को स्मरण करके प्रार्थना करने लगा– 'ठाकुर! इस विपद से मेरी रक्षा कीजिए।' सोचा, कानपुर स्टेशन में जहाँ पर बैठा था, रुपये वहीं पर गिर गए हैं। झोला-कम्बल इक्के में ही रखकर हित-अहित का विचार किये बिना उस विशाल रास्ते में दौड़ पड़ा। दो-तीन मिनट दौड़कर, अचानक रास्तें के ऊपर रुपये पड़े देखकर रुक गया। मुड़े कागज से अलग कुछ दूरी पर पाँच रुपये पड़े देखकर उसे उठा लिया। विशाल राजपथ पर सैकड़ों कुली-मजदूर, दीन-दुःखी नियत यातायात कर रहे हैं, इतनी देर में किसी की भी दृष्टि उस रुपये पर पड़ी नहीं– यह कैसी घटना है! रास्ते के बीचोंबीच न चलकर यदि मैं किसी भी किनारे से दौड़ता हुआ जाता तो कभी मेरी दृष्टि उस

रुपये पर नहीं पड़ती। यह सोचकर और भी आश्चर्य हुआ। तुरन्त ही स्टेशन आकर इक्के वाले को किराया दिया। अब दूसरी गाड़ी न मिलने तक कानपुर स्टेशन में जाकर प्रतीक्षा करूँगा, यह निश्चय किया।

इसी समय एक हिन्दुस्तानी सभ्य व्यक्ति ने आकर मुझसे कहा– 'महाशय, आप फैजाबाद जाएँगे, मुझको भी आज ही लखनऊ जाना होगा। चलिए तीन कोस चलकर नावघाट चलते हैं, वहाँ से निश्चय ही गाड़ी मिलेगी। यह गाड़ी नावघाट जाकर दो घण्टे खड़ी रहती है। हम लोगों को वहाँ पहुँचने में अब समय ही कितना लगेगा?' मैंने इस युक्ति को ठीक समझकर झोला, कम्बल सिर पर उठा लिया एवं उनके साथ द्रुत गति से नावघाट के लिए पक्के रास्ते से चलने लगा। पक्के रास्ते के एक ओर बड़ी नदी है और दूसरी ओर विशाल मैदान है। इस समय वर्षा का जल बढ़ जाने से नदी, मैदान, रास्ता सब एकाकार हो गए हैं। नदी का पानी प्रबल वेग से रास्ते के ऊपर से होकर मैदान की ओर जा रहा है। रास्ते के ऊपर लगभग ढाई फुट पानी है; दोनों ओर बड़े-बड़े वृक्ष होने के कारण ठीक रास्ता समझने में कोई भी असुविधा नहीं हुई। हम लोग कमर तक जल में स्रोत को काटते हुए अग्रसर होने लगे। प्रायः एक मील चलने से ही मेरा शरीर अवसन्न हो गया। उसके ऊपर प्रत्येक कदम में कांटे की तरह पत्थर और कंकड पैर में चुभने लगे। इसी समय अकस्मात् चारों ओर अन्धकार हो गया एवं मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गई; सिर का बोझा भीगकर चार गुना भारी हो गया। विषम संकट में पड़कर गुरुदेव को स्मरण करने लगा। सिर का बोझा फेंक देने के लिए तत्पर हुआ। इसी समय साथी ने आकर मेरा बोझा अपने सिर पर उठा लिया एवं हाथ पकड़कर खींचते हुए स्रोत काटते हुए अग्रसर हुए। इस प्रकार दो कोस चलकर हम लोग नावघाट पहुँचे। स्टेशन पहुँचते ही अपना बोझा कन्धे पर लेकर लम्बी श्वास लेकर फाटक की ओर दौड़ा। वहाँ पहुँचकर देखा प्लेटफॉर्म में जाने का फाटक बन्द हो गया है। तब एक हाथ सिर के बोझा पर और दूसरा फाटक पर रखकर खड़ा रहा। उसी समय ट्रेन छोड़ने की सीटी बज उठी, तब मानो मेरे सिर पर बिजली गिर पड़ी; मैं अवाक् होकर गाड़ी की ओर देखता रहा। तभी दूर से गार्ड साहब मेरी दुर्दशा देखकर दौड़ते हुए फाटक के पास आए एवं मेरा हाथ पकड़कर 'जल्दी चलिए, जल्दी चलिए' कहते हुए खींचकर चलती ट्रेन में चढ़ा दिये। 'टिकिट बाद में मिल जाएगा' कहकर गार्ड साहब दौड़ पड़े। अगले स्टेशन पर ही मुझे टिकिट मिल गया।

अकस्मात् एक विषम संकट में पड़कर, बिना प्रयास के ही साथ-साथ संकट निवारण होने से वह आकस्मिक घटना ही लगती है, किन्तु एक के बाद एक विषम संकट में, साथ-साथ रक्षा का उपाय घटने से उसे किस प्रकार आकस्मिक मानें?

प्रत्येक चाल में 'पौ बारह' पड़ना, हाथ के कौशल के बिना सोचा नहीं जा सकता। इन सब असंभव संयोग में गुरुदेव का ही हाथ समझकर मैं उनके अभय चरणों का स्मरण करने लगा। प्रातःकाल फैजाबाद पहुँचा।

नौकरी का दबाव; संघातक रोग; माता ठाकुरानी का पत्र

{बंगला सन् 1297, भाद्र। **(अगस्त, सितम्बर, सन् 1890)**}

फैजाबाद पहुँच गया। बाद में, बहुत समय पुराने मेरे शूलरोग से मुझे मुक्त देखकर भैया अवाक् रह गए। किस प्रकार आरोग्य प्राप्त किया सुनकर उन्होंने कहा— 'यह केवल तुम्हारे ठाकुर की ही कृपा है। गोस्वामीजी का ऐसा संग छोड़कर तुम क्यों आए?' मैंने कहा— 'अभी आपकी सेवा करने का उन्होंने मुझे आदेश दिया है। माँ की एवं आपकी सेवा न करने से मेरा कल्याण नहीं होगा।' भैया ने कहा— 'सेवा के लिए लोगों का तो मेरे पास अभाव नहीं है। अच्छा, तुम यहाँ रहकर उनके आदेशानुसार साधन-भजन करो; उससे ही मैं समझूँगा, मेरी यथेष्ट सेवा कर रहे हो।' भैया के कथनानुसार मैं समय निर्धारित करके साधन-भजन करने लगा। अवसर के अनुसार भैया के साथ ठाकुर के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। फैजाबाद में भैया के निवास पर ठाकुर कुछ-एक दिन रहकर जो सब कार्य किये थे, जिन-जिन स्थानों में गए थे वह सब सुना। अच्छा आनन्दपूर्वक, साधन-भजन, सत्प्रसंग में मेरा दिन बीतने लगा।

इस समय मँझले भैया बहुत दिनों की सरकारी नौकरी छोड़कर वकालत करने के अभिप्राय से फैजाबाद आए हैं। मेरा शरीर सबल एवं स्वस्थ देखकर एक नौकरी का जुगाड़ करके मुझे फैजाबाद में ही रखने के लिए उन्होंने बड़े भैया से कहा। बड़े भैया भी उनके अनुसार एक अच्छे काम का जुगाड़ कर दिये। इधर नौकरी की बात सुनकर मेरा सिर घूम गया। 'ब्रह्मचर्य-व्रत में नौकरी करना निषेध है' भैया को समझाकर कहा। भैया ने कहा— "व्रत भंग करके नौकरी करो, मेरी ऐसी इच्छा नहीं है; केवल तुम्हारे मँझले भैया के कहने से ही मैंने नौकरी जुगाड़ कर दी है; उनको तुम समझाकर बोलो।" मँझले भैया को यह सब बात कहने से उन्होंने कहा— "वो सब कुछ नहीं, नौकरी करने की इच्छा नहीं है, इसीलिए यह सब बात कह रहे हो। अच्छा, नौकरी न करके व्यवसाय करो; भैया की पेटेन्ट औषधि घर में बैठकर बनाओ और बिक्री करो। संवाद-पत्र में औषधि का विज्ञापन दे देते हैं।" मैंने कहा— 'इससे भी व्रत भंग होगा। अर्थोपार्जन की चेष्टा करना भी निषिद्ध है।' मँझले भैया ने विरक्त होकर कहा— "वो सब कुछ नहीं है, चतुराई है।"

इस संकट में 'मैं क्या करूँगा' ठाकुर से पूछने के लिए श्रीवृन्दावन में पत्र

लिखा। इधर मेरे सिर में बहुत तीव्र यन्त्रणा होने से मैं बिस्तर पर पड़ गया। एक सौ पाँच डिग्री ज्वर हो गया। मानो सिर पर अँगार रखा है, ऐसा लगने लगा। भैया बहुत प्रयास करके भी मेरे सिर की असह्य यन्त्रणा को बिन्दुमात्र भी दूर नहीं कर पाए; वरन् और भी अनेक प्रकार के रोग प्रस्तुत हो गए। बारम्बार मूर्च्छा के कारण निरर्थक बकने लगा। भैया डर गए, 'इस बार देख रहा हूँ बचा नहीं सके' कहकर वे भयंकर चिन्ता में पड़ गए।

दो सप्ताह बाद मेरी चिट्ठी का उत्तर आया। माता ठाकुरानी ने पत्र का उत्तर दिया–

कल्याणवरेषु,

कुलदा, तुम्हारा पत्र पाकर सब ज्ञात हुआ एवं गोस्वामीजी को सब पढ़कर सुनाई। उन्होंने कहा, तुम्हारे शरीर की जो अवस्था देखे हैं उससे विषय कर्म में लगे रहने से पीड़ा और भी बढ़ जाएगी। अपने भैया लोगों से कहिए कि उनके संसार का जो कार्य तुम कर सकते हो वह तुमसे कराए। उनका दासत्व करने को कहा है। भगवान के राज्य में एक मुट्ठी आहार भगवान किसी भी प्रकार से देते रहते है। सबके लिए एक जैसा कार्य नहीं होता। जिसे जिस भाव से रखें। मन स्थिर रखकर चलना, संसार में कितनी अवस्था में पड़ना होता है! धैर्य ही सहारा है। भगवान तुम्हारा मंगल करें। यहाँ एक प्रकार से सब ठीक है।

आशीर्वादिका,
योगमाया।

पत्र पढ़कर बड़े भैया और मँझले भैया सब समझ गए। उन्होंने मुझसे कहा– 'नौकरी अब तुम्हें नहीं करनी होगी; अभी ठीक हो जाओ, इतना ही बहुत है।' रोग के अठारहवें दिन में भैया लोगों के मुख से यह बात सुनकर मेरा अन्तःकरण मानो शीतल हो गया; उन्नीसवें दिन अचानक मेरे सिर का दर्द कम हो गया, अब कोई शारीरिक दुर्बलता न रही। बीसवें दिन हल्का भोजन पाकर चलने-फिरने लगा।

इतने समय से साधन-भजन, व्रत के नियमादि सब बन्द हो गए थे। स्वस्थ होने के बाद पुनः साधना करने की प्रबल अभिलाषा होने लगी। मैंने नियम से ठीक उसी प्रकार चलना आरम्भ कर दिया। प्रातःकाल थोड़ा जलपान करके छह बजे से ग्यारह बजे तक नाम-जप, प्राणायाम, पाठ एवं ध्यान करने लगा। भोजन के बाद बारह से पाँच बजे तक नाम-जप करके समय अतिवाहित करने लगा। रात्रि में थोड़ा जलपान करके कभी बारह कभी एक बजे तक सोने के बाद प्रातः तक प्राणायाम, कुम्भक, नाम-जप और ध्यान करके समय काटता था। इस प्रकार परमानन्द से मेरा दिन-रात बीतने लगा।

सद्‌गति के लिए शक्तिशाली मृतात्मा का उपद्रव

इस बार फैजाबाद आकर बहुत-सी नई-नई घटनाएँ देखीं। उनमें से कुछ-एक घटनाओं का उल्लेख कर रहा हूँ। यहाँ आकर निर्जन में साधन-भजन की सुविधा के लिए पूजा-घर में आसन रखा। ऊपर में केवल दो कमरे हैं। भैया के कमरे के दक्षिण ओर ही पूजा-कमरा है; इस कमरे में दक्षिण ओर एक बड़ी खिड़की है। नीचे विशाल बगीचा है। खिड़की के पाँच-छह हाथ के अन्तर में ही एक सुन्दर बेल का पेड़ है। इस बेल के पेड़ के नीचे थोड़ी दूरी पर बाहर का शौचालय है। पूजा-घर में एक परमहंस द्वारा दिया गया भैया का शालिग्राम रखा है। इस कमरे के एक कोने में आसन बिछाकर मैं साधना करने लगा। इस समय श्वास-प्रश्वास की स्पष्ट ध्वनि मेरे कान में आने लगी। ठीक जैसे कोई सामने बैठकर जोर-जोर से दीर्घ श्वास-प्रश्वास में प्राणायाम कर रहा है। मैं आँख खोलकर चारों ओर देखने लगा; खाली कमरे में बारम्बार तीव्र श्वास-प्रश्वास की ध्वनि सुनकर अवाक् रह गया। परन्तु कुछ भी समझ नहीं पाया। आसन पर स्थिर होकर बैठते ही इस प्रकार की ध्वनि होने लगती है, जितनी देर आसन पर बैठा रहता, इस ध्वनि का विराम नहीं होता; इससे मुझे बड़ी ही घबराहट होने लगी। तीन-चार दिन बाद भैया से इस विषय में पता चला। भैया ने कहा– 'गोस्वामीजी के जाने के बाद से यहाँ पर यह एक नई घटना आरम्भ हो गई। पूजा-घर में जाने से ही मुझे श्वास-प्रश्वास की भयानक ध्वनि सुनने को मिली। घर के कोई भी लोग सहज में उस कमरे में नहीं जाते; सभी इस प्रकार की ध्वनि सुनते है, किन्तु अभी तक किसी ने कुछ देखा नहीं। मैं कभी अकले इस कमरे में नहीं बैठता। तुम इतने दिन जो इस कमरे में हो, इससे बहुत आश्चर्य होता है।' मैंने भैया से पूछा– 'गोस्वामीजी जब यहाँ आए थे तब क्या उन्होंने यहाँ कोई भूत-प्रेत है ऐसा कहा था?' भैया कहने लगे– "गोसाँईजी जिस दिन यहाँ आए, प्रातः बाहर के शौचालय में जाते ही एक भूत उनके पास पहुँचा, और तरह-तरह से गड़बड़ करना आरम्भ कर दिया। इधर चाय बन गई थी, सभी गोसाँईजी की प्रतीक्षा करने लगे। गोसाँईजी को आने में विलम्ब होते देखकर सभी व्याकुल होने लगे। कोई-कोई दूर से ही देखने लगे गोसाँईजी आ रहे हैं कि नहीं। बाद में मुझसे उन लोगों ने पूछा तो मैंने कहा 'गोसाँईजी को भूत ने पकड़ा है।' वे लोग मेरी बात को मजाक समझने लगे। आधे घण्टे बाद गोसाँईजी आए। हाथ-मुँह धोकर दरवाजे के सामने खड़े होकर दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए गोसाँईजी ने कहा–

दुर्गा! दुर्गा! बाबा!! कैसा उपद्रव है! कैसा उपद्रव है! बच गया!

श्रीधर ने पूछा– 'क्या हुआ?'

गोसाँईजी ने कहा– **बेल के पेड़ में एक भूत है, उसके साथ इतना समय लगा। सामने आकर खड़े हो गए; जाते ही नहीं, बड़ा मुश्किल! इसीलिए विलम्ब हुआ।**

भूत ने क्या कहा पूछने पर गोसाँईजी ने कहा– **शौचालय जाते ही भूत सामने आकर खड़े हो गया। मुझसे कहा– 'आप यहाँ आएँगे जानकर बारह वर्ष से आपकी प्रतीक्षा में यहाँ हूँ, अब मेरा उद्धार कीजिए।' मैंने उनसे कहा– 'आप यहाँ से हट जाइए, मैं शौच से निवृत्त हो जाऊँ; फिर जो है उसे सुनुँगा।' वे किसी भी तरह से दरवाजा छोड़े नहीं; रोना-धोना करके गड़बड़ करना आरम्भ कर दिये; अपनी सद्‌गति के लिए मुझसे प्रतिज्ञा करा लिए। यहाँ पर वे किसी का भी कुछ भी अनिष्ट नहीं करेंगे, यथासाध्य उपकार ही करेंगे, स्वीकार किया। उनको और भी कुछ समय प्रतीक्षा करना होगा, कहा। बाद में उनके हटने पर शौच से निवृत्त होकर आया; इससे इतना विलम्ब हुआ।**"

भैया की यह सब बातें सुनकर मेरा सन्देह दूर हो गया। मैं पूजा-घर में ही आसन रखकर निश्चिन्त मन से दिन-रात बिताने लगा। गुरुदेव ने कहा था, **'प्रथम अवस्था में ब्रह्मोपासना अच्छा है। ब्रह्मज्ञान होने से सहज में तत्त्व उपलब्धि होती है।'** मैं नाम-जप करते समय गुरु का ध्यान त्याग करके सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, निराकार परब्रह्म के अस्तित्व मात्र का ध्यान करने लगा। पहले के अभ्यास के कारण इस तरह की उपासना से मुझे बहुत ही आनन्द होने लगा। अन्यान्य दिनों की तरह रात्रि एक बजे उठा; हाथ-मुँह धोकर, सूखे मोटे काठ की धूनी जलाकर आसन पर बैठा। प्राणायाम, कुम्भक रीति अनुसार करके नाम-जप करना आरम्भ किया। शरीर थोड़ा सुस्त लगने पर, तकिये के ऊपर एक भुजा रखकर करवट लेकर, ऊपर के एक पैर को मोड़कर रखा, दूसरे पैर को दीवार की ओर फैला दिया। मेरे सामने धू-धू करके धूनी जलने लगी। कभी आँख खोलकर, कभी बन्द करके नाम-जप करना आरम्भ किया। थोड़ी देर बाद ही स्पष्टरूप से ठाकुर का रूप मेरे मन में बारम्बार उदित होने लगा; किन्तु मैं उसे मन से हटाकर, ब्रह्मध्यान में चित्त को निविष्ट करने लगा। इसी समय अचानक आँख खोलकर देखा मेरे पैर की ओर आसन के ऊपर एक व्यक्ति बैठा है। उसकी आकृति भयंकर पहलवान की तरह– वर्ण काला, मुण्डित मस्तक, दोनों नेत्र अत्यन्त उज्ज्वल हैं। उसके साथ आँख मिलने पर उसने मुझे उठकर आसन पर बैठने के लिए संकेत द्वारा कहा एवं अपने साथ प्राणायाम करने का संकेत दिया। साधना के आसन पर दूसरे के बैठने से साधना का एकाग्र भाव नष्ट हो जाता है, दूसरे

के भाव से आसन दूषित होता है, इसलिए दूसरे को साधना के आसन पर बैठने नहीं देते, यह बात ठाकुर के मुख से सुनी थी। इसलिए उसको अपने आसन पर बैठा देखकर ही मेरा सिर गरम हो गया। उतरकर बैठने के लिए एक बार मैंने विरक्त होकर उससे कहा, किन्तु मेरी बात वह न मानकर स्थिर भाव से मेरी ओर देखता रहा। तब मैं क्रुद्ध होकर मुड़े हुए बायें पैर को खींचकर जोर से उसकी छाती को लक्ष्य करके मारा। पैर उसके शरीर को भेदकर धम् शब्द के साथ दीवार से जाकर लगा; किन्तु उसके शरीर का बिन्दुमात्र भी स्पर्श अनुभव नहीं हुआ। मेरे लात मारते ही उस व्यक्ति ने एक अद्‌भुत शक्ति का प्रयोग किया। अचानक प्राणायाम में बहुत दम लगाकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसके दोनों भुजा की, गले की एवं मस्तक की नसें फूल गईं यह स्पष्ट देखने लगा। तब मेरे भीतर की वायु उस भूत ने प्राणायाम के प्रबल आकर्षण से खींचकर क्रमशः दम चढ़ाना आरम्भ किया। मैं बहुत प्रयास करके भी वायु खींच न पाया। कुम्भक द्वारा कमरे की पूरी हवा को रोककर रखा है यह मैं समझ गया। तब सर्वांग अवसन्न हो गया, मुझमें हिलने की भी शक्ति नहीं रही। मृत्युकाल आ गया समझकर मैं अभ्यासवश निराकार ब्रह्म का ध्यान करने लगा। इस समय भाँग के नशे की तरह मानो कोई मुझे बार-बार अधर में उठाकर फेंकने लगा। खड़े होने का स्थान न पाकर भयानक आतंक और यन्त्रणा से मैं चारों ओर अन्धकार देखने लगा। उठा-पटक के चक्कर से अस्थिर होकर तब गुरुदेव के श्रीचरण का स्मरण करने लगा। मेरी चेतना लगभग विलुप्त हो गई। इस अवस्था में कितनी देर रहा, कुछ पता नहीं। फिर धीरे-धीरे मेरी अज्ञान अवस्था में ही पल-पल श्वास चलने लगी, कुछ देर बाद ही मैं चौंककर उठा, मैं तुरन्त आसन पर बैठ गया। तब पराक्रम के साथ बारम्बार उच्च स्वर में भूत को पुकारने लगा; किन्तु फिर उसको देख नहीं पाया। श्वास-प्रश्वास की ध्वनि भी इस दिन से बन्द हो गई। जागृत अवस्था में इस प्रकार भूत के उपद्रव में फिर कभी पड़ा नहीं। यह भूत तो बहुत शक्तिशाली था उस विषय में कोई सन्देह नहीं है।

इस घटना के कुछ-एक दिन बाद, एक बार रात्रि में लगभग एक बजे के समय स्वप्न देखा— एक डकैत भैया के कमरे में प्रवेश करके भैया की हत्या करने के उद्देश्य से एक पेड़ की बड़ी लाठी से भैया के सिर पर ठनाठन प्रहार कर रहा है, फिर मैं भैया की रक्षा करने के लिए दौड़कर जा रहा हूँ, इतना देखकर ही निद्रा टूट गई। जागते ही भैया के कमरे से 'गों, गों' शब्द सुना एवं वहाँ कुछ गड़बड़ लगा। मैं चौंक गया। मैं भैया के कमरे में दौड़कर गया; जाकर देखा भैया बिछौने पर बैठकर हाथ-पैर पटक रहे हैं। श्वास बन्द हो गई है। मैंने 'जयगुरु, जयगुरु' कहते-कहते भैया को जकड़ लिया। कुछ क्षण बाद भैया श्वास-प्रश्वास लेने में

समर्थ हुए। स्वस्थ होकर भैया ने कहा, 'स्वप्न देखा– एक व्यक्ति ने मुझे दबाकर पकड़ लिया है; उससे ही मेरा श्वास बन्द हो गई थी।'

सत्य स्वप्न, आँख का कष्ट

अन्य एक दिन, नाम-जप करते-करते रात्रि के अन्तिम प्रहर में निद्रा के आवेश में आ गया। स्वप्न देखा– एक गौरवर्ण, पवित्रमूर्ति ब्राह्मण ने आकर कहा, 'अरे, आज तुम्हारी बायीं आँख उठेगी, तीन-चार दिन थोड़ी यन्त्रणा होगी, फिर हट जाएगी; डरना नहीं।' प्रातः उठकर हाथ-मुँह धोकर भैया को दोनों आँख दिखाकर पूछा– 'क्या मेरी आँख उठ रही है?' भैया ने देखकर कहा– 'आँख तो ठीक है, आँख आने का कोई लक्षण भी नहीं देख रहा हूँ।' कुछ देर बाद, स्वप्न की बात भूल गया। दिन में आठ बजे आँख थोड़ी भारी-भारी जैसे लगी। थोड़ी ही देर बाद बायीं आँख लाल हो गई, भयंकर ज्वाला आरम्भ हो गई; भैया आकर आँख की अवस्था देखकर अवाक् रह गए। चार दिन बहुत यन्त्रणा सहन किया, फिर दूर हो गई, कोई भी औषधि व्यवहार नहीं किया। सम्पूर्ण स्वप्न की सत्यता देखकर बड़ा ही आनन्द मिला।

क्षुधार्त शालिग्राम

एक दिन प्रातःकाल आसन पर बैठकर नाम-जप कर रहा था, यज्ञ के धुएँ की पवित्र सुगन्ध आने लगी। कहाँ से वह सुगन्ध आ रही थी, अनुसन्धान करके भी कुछ जान नहीं पाया। अन्य कहीं भी वह सुगन्ध नहीं थी, केवल पूजा-घर में ही सुगन्ध फैली हुई थी। प्रातः से संध्या तक एक ही तरह की वह अद्‌भुत सुगन्ध दिनभर रही। सुगन्ध के गुण से चित्त प्रफुल्लित होने लगा था। पूजा-घर में दिनभर यह सुगन्ध पाकर सभी लोग चकित हो गए। सुगन्ध आने का किसी प्रकार का कारण स्थिर न कर पाने पर भैया ने कहा– 'यह मेरे शालिग्राम ठाकुर के देह की ही सुगन्ध है, अन्यथा कमरे के बरामदे में सुगन्ध क्यों नहीं है?' मैं भैया की बात सुनकर हँसने लगा। तब भैया शालिग्राम के विषय में कहने लगे– "मेरे नारायण पर तुम विश्वास नहीं करते हो। मैं भी उनको पत्थर के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता था; किन्तु अब शालिग्राम के अद्‌भुत प्रभाव को देखकर विश्वास किये बिना रह नहीं सका। एक दिन एक विशालकाय जटाधारी, सौम्यमूर्ति संन्यासी आकर मुझे पुकारने लगे। उनके पास पहुँचते ही उन्होंने मेरे हाथ में शालिग्राम देकर कहा– 'इस शालिग्राम को घर में रखकर आप इसकी सेवा-पूजा करें, आपका विशेष कल्याण होगा।' मैं इन सब में विश्वास नहीं करता, सेवा-पूजा भी नहीं कर

पाऊँगा कहकर उसे लेने से अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा– 'अच्छा, आप केवल इस चक्र (शालिग्राम) को रख लीजिए, वे स्वयं ही अपनी सेवा-पूजा की व्यवस्था कर लेंगे।' मैंने संन्यासी के कथनानुसार, घर के एक स्थान पर उसे रख दिया, उसकी कोई खोज-खबर नहीं रखता था। एक बार रात्रि में स्वप्न में शालिग्राम ने कहा– 'देख इस कचरे के भीतर मुझे फेंक दिया है!' प्रातः उठकर कचरे के भीतर से शालिग्राम को उठाकर ले आया। कौन, कब, क्या सोचकर उसे फेंक दिया था, कुछ पता नहीं। इससे थोड़ा आश्चर्य हुआ। इस घटना से शालिग्राम के ऊपर थोड़ी भक्ति भी हुई। मैंने शालिग्राम को लाकर कमरे में एक छोटी चौकी पर रख दिया; प्रतिदिन मैं स्नान के बाद कुछ समय आसन पर बैठता हूँ, उसी समय शालिग्राम को स्नान कराकर फूल, तुलसी देने लगा। इसके बाद से ही शालिग्राम स्वप्न में मुझ पर इस प्रकार कृपा करने लगे कि उसको किसी प्रकार से भी छोड़ नहीं पाया। जिस प्रकार शालिग्राम का परिचय मिलने लगा, वैसे ही मेरी भी श्रद्धा-भक्ति बढ़ने लगी। गोस्वामीजी के यहाँ आने के बाद से, उनके कहने पर यथारीति शालिग्राम की सेवा-पूजा करता हूँ। मेरे ठाकुरजी पत्थर नहीं हैं, जागृत देवता हैं; वे भी यही कह गए हैं। एक दिन वे अयोध्या जाकर समस्त ठाकुरजी का दर्शन करके आए। घर पहुँचते ही, मेरे ठाकुरजी का दर्शन करने पूजा-घर में प्रवेश किये। कुछ समय तक शालिग्राम की ओर देखकर वे बालक की तरह रोने लगे, आँखों से झरझर अश्रु गिरने लगा; वे व्याकुल होकर इधर-उधर ताककर फिर अपने ही अलखल्ला के पॉकेट में हाथ डाले एवं कुछ पेड़ा, बरफी बाहर करके ठाकुरजी के पास रख दिये। कुछ क्षण बाद साष्टांग प्रणाम करके बाहर आ गए। मिठाई कहाँ से मिल गई, हम लोगों ने पूछा। उन्होंने कहा– **"मैंने कुछ मिठाई संग्रह करके रख ली थी; पूजा-घर में जाते ही, ठाकुरजी प्रकट होकर मेरे पास दोनों हाथ फैलाकर बोले, 'शीघ्र मुझे कुछ खाने के लिए दो; बहुत दिनों से मैं उपवास हूँ, ये लोग मुझे खाना नहीं देते।' मेरे पॉकेट में जो था, वही नारायण को दे दिया। समस्त मन्दिर और देवालय देखकर आया, किन्तु इस प्रकार और कहीं नहीं देखा। यहाँ पर वामनदेव सर्वदा जीवन्त अवस्था में प्रकट रहते हैं। ठाकुरजी की नियमित सेवा-पूजा करनी होगी।"**

भैया ने कहा– 'अस्पताल का काम-काज निपटाकर शालिग्राम की पूजा करने में बड़ी ही असुविधा होती है, भोग का यहाँ पर बन्दोबस्त करना और भी कठिन है।' गोसाँईजी ने यह बात सुनकर कहा– **"अस्पताल जाने के पूर्व हाथ-मुँह धोकर कपड़ा बदलकर, एक बार जाकर नारायण को स्नान कराने के बाद चन्दन-तुलसी देना; फिर थोड़ी मिठाई और जल में**

तुलसी देकर निवेदन करने से ही हो जाएगा।" मैंने भैया से कहा, 'यहाँ पर जब ठाकुर आए थे, तब उनके साथ और कौन-कौन थे? घर में सुविधा के अनुसार सबके रहने की व्यवस्था तो हो गई थी? ठाकुर कहाँ-कहाँ गए थे? दिनभर कहाँ-कहाँ घूमते थे? इन सब विषय में जानने की इच्छा हुई।'

फैजाबाद में गोसाँईजी की अवस्थिति

भैया कहने लगे– तुम्हारा पत्र पाकर ही मैं तीन-चार दिन की छुट्टी लेकर गोस्वामीजी का दर्शन करने काशी गया। उनको बहुत समय बाद देखा, देखने से ही लगा कि अब वे पहले जैसे मनुष्य नहीं रहे, अब वे आकृति व प्रकृति से साक्षात् महादेव हो गए हैं। मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ। छुट्टी बहुत कम दिनों की थी, इसलिए मुझे शीघ्र ही लौटना पड़ा। आते समय गोस्वामीजी से श्रीवृन्दावन जाने पर रास्ते में फैजाबाद होकर जाने का अनुरोध करके आया; वे दया करके मेरी बात पर सहमत हो गए। गोसाँईजी कुछ-एक दिन बाद ही यहाँ आ गए; उनके साथ उनकी पत्नी, योगजीवन, हरिमोहन, देवेन्द्र चक्रवर्ती, मानिकतला की माँ और उनके पति व्रज बाबू आए थे। तब मेरे घर में भी देवेन्द्र पाल आदि चार-पाँच लोग थे। स्थानाभाव के कारण बाहर के बैठकखाने में एक साथ बिछौना करके हम सभी रहते थे। मैं गोस्वामीजी के पास ही शयन करता था, देवेन्द्र मेरी दूसरी ओर रहते थे। गोसाँईजी सोते नहीं थे, सारी रात बैठकर बिताते थे। एक बार रात्रि में ढाई बजे, कोई जानता नहीं, देवेन्द्र ने मेरी छाती पर एक थप्पड़ मारा। शक्ति चोरी और वशीकरण की क्षमता उनमें थी। थप्पड़ खाकर मैं जाग गया। मेरा अन्तःकरण मानो निस्तेज, शून्य हो गया, मन बहुत ही मलिन हो गया। तब गोसाँईजी अचानक कह उठे– **"अविश्वासी के संसर्ग से साधु सावधान! सावधान!! सावधान!!!"** गोसाँईजी के इस कथन के साथ-साथ मेरे भीतर ऐसी एक शक्ति का संचार हुआ कि मानो इच्छा करने पर सारा मकान, कमरा, बैठक और कोठा को लात मारकर चूर्ण-विचूर्ण कर सकता हूँ। तब देवेन्द्र मेरे पास फिर रुक न सका, उठकर अन्य कमरे में चला गया।

एक दिन गोस्वामीजी सबको लेकर नागा बाबा का दर्शन करने गए। गोसाँईजी को देखकर नागा बाबा आनन्द से विह्वल हो गए। फिर स्थिर होकर, गोसाँईजी से एक रात्रि वहाँ पर वास करने के लिए अनुरोध किये। वे सहमत हो गए। बाबाजी ने मोटे चावल का भात एवं लहसून वाली दाल बनाकर प्रस्तुत करके अतिथि-सेवा की। शीतकाल की रात्रि में सरयू नदी के खुले मैदान में सब नहीं रह पाएँगे, इसलिए केवल श्रीधर, हरिमोहन और देवेन्द्र चक्रवर्ती गोसाँईजी के साथ रह गए, बाकी सब चले आए। मेरे मित्र देवेन्द्र ने वहाँ रात्रि बिताने की इच्छा व्यक्त

की, किन्तु नागा बाबा ने उनको रुकने नहीं दिया। देवेन्द्र घर में आकर, एकान्त में मेरे पास सबकी निन्दा करने लगा; गोस्वामीजी को भी एक बार परखकर देखेंगे, इस प्रकार अभिमान करना आरम्भ कर दिया। उसकी बात सुनकर मेरा मन बहुत ही खराब हो गया। अगले दिन प्रातःकाल सबको लेकर गोस्वामीजी घर आ गए। वे घर में प्रवेश करते समय दरवाजे के पास आते ही बोले— **'अरे! यहाँ साधु निन्दा हुई है; अब यहाँ रहना ठीक नहीं, तुम सब यहाँ से आसन उठाओ।'** यह कहकर गोसाँईजी घर में प्रवेश किये। आसन पर बैठकर खूब पराक्रम के साथ अपने-आप कहने लगे— **"इनको समझने में तेरे को बहुत समय लगेगा! क्या समझता है? कितना जानता है? हुआ क्या है? कुछ नहीं— बहुत चक्कर खाना होगा, बहुत भुगतना होगा। तू मेरी क्या परीक्षा करेगा?"**

गोसाँईजी जब ये सब बातें कहने लगे, देवेन्द्र चौंक उठा। उसका मुँह काला हो गया, वह घबराहट से चारों ओर ताकने लगा और तुरन्त कमरे से बाहर निकल गया।

चाय पीने के बाद, सभी बैठकर कल रात्रि के दर्शनादि के विषय में बातचीत आरम्भ किये। भूत-प्रेत के साथ महादेव का, डाकिनी-योगिनी के साथ काली का एवं महावीर का जिन्होंने जिस भाव से दर्शन किया था, उसकी ही परस्पर चर्चा करने लगे। सब सुनकर गोसाँईजी ने कहा— **"नागा बाबा के प्रार्थना से ही सब आकर दर्शन दिये थे। नागा बाबा ने तुम लोगों पर बहुत कृपा की है! उनके अद्‌भुत शक्ति के प्रभाव से ही इस प्रकार के मैदान में हम लोग ठण्ड का जरा भी अनुभव नहीं किये। यह कोई सहज बात नहीं है।"**

भैया ने पूछा— आप सभी लोगों के पास तो मात्र एक-एक कम्बल ही थे, इस कड़ाके की ठण्ड में रातभर सरयू के खुले मैदान में क्या आप लोगों को शीत का कष्ट नहीं हुआ?

ठाकुर ने कहा— **कहा तो, हम लोगों को तो कोई कष्ट ही नहीं हुआ, छप्पर के नीचे बड़े आराम से थे।**

हरिमोहन ने हँसते-हँसते कहा— 'हाँ, चमत्कारी छप्पर, दोनों ओर केवल दो टूटी हुई टट्टियाँ थी, सामने और पीछे खुला, सिर के ऊपर स्वच्छ आकाश में असंख्य तारों का छप्पर था; किन्तु आश्चर्य की बात है कि कुछ क्षण बाद ही शरीर से कम्बल हटा देना पड़ा। गरमी लगने लगी थी। तब योगजीवन ने कहा— मुझे भी ऐसा लगा जैसे गरम हवा की कुण्डली में हूँ। भोर चार बजे वह कुण्डली अन्तर्धान हुई। तब कुछ हल्की ठण्ड का बोध हुआ था। इस समय ठाकुर ने भैया

से पूछा– **नागा बाबा ने कौन-सी साधना की थी, जानते हो?** भैया ने कहा– सुना हूँ, शव-साधना करते थे।

ठाकुर ने कहा– **"हाँ, तभी सम्भव है; अन्यथा ऐसी शक्ति इतने सहज में प्राप्त होना प्रायः देखा नहीं जाता; किन्तु यह शक्ति अधिक दिन नहीं रहती। इस साधन-मार्ग के साधुओं की प्रकृति जिस प्रकार उग्र होती है, नागा बाबा की वैसी नहीं है। वे बहुत शान्त हैं।"** यह कहकर नागा बाबा की तपस्या की बहुत प्रशंसा करने लगे।

एकजन ने पूछा– इन सब तपस्या में सिद्ध होने पर ही क्या मनुष्य दीर्घजीवी होता है?

ठाकुर ने कहा– **नहीं, सिद्ध होने से ही मनुष्य दीर्घजीवी होगा वैसा नहीं है। कायाकल्प में सिद्ध होने से शरीर दीर्घकाल तक स्थायी होता है।** यह कहकर उन्होंने एक फकीर साहब की कथा सुनाई–

कायाकल्प फकीर की कथा

(यह कहानी ठाकुर के मुख से मैं जिस प्रकार सुना था, भैया की डायरी में भी बिल्कुल वैसा ही देखकर लिख लेता हूँ।)

ठाकुर ने कहा– **जब गया में था, प्रायः एक फकीर के पास जाना-आना करता था। फकीर निर्जन स्थान में जंगल के भीतर एक टूटी हुई मस्जिद में रहते थे। एक दिन जाकर देखा, फकीर साहब मस्जिद के बरामदे में लम्बवत् अचेत अवस्था में उल्टे पड़े हुए हैं। उस दिन वहाँ पर कुछ क्षण चुपचाप बैठे रहकर चला आया। इस प्रकार पाँच-सात दिन हो गए। रोज एक बार मैं फकीर साहब को देखने जाता था। एक दिन जाकर देखा, फकीर साहब का शरीर भयंकर फूल गया है और उसमें विष्ठा के कीट की तरह पूँछ वाले बड़े-बड़े कीड़े पूरे शरीर में बैठ कर रक्त चूस रहे हैं। सरसों के बराबर भी जगह खाली नहीं है। फकीर साहब कीड़ों के काटने की यन्त्रणा से समय-समय में 'ऊह, ऊह' कर रहे हैं। देखकर बड़ा ही कष्ट हुआ; वहाँ ऐसा एक पक्षी भी नहीं था जो आकर कीड़ों को खाए। ऐसी ही भगवान की लीला है।**

तब एक दिन एक मुसलमान जमींदार आकर मुझसे फकीर साहब की बात पूछे। मैं उनको फकीर साहब के पास ले गया। वे जिससे उनका किसी प्रकार से प्रतिकार करने का प्रयास करके फकीर साहब को विरक्त न करें, यह विशेष रूप से कह दिया; किन्तु उन्होंने मेरी बात

सुनी नहीं। धीरे-धीरे फकीर के पास जाकर बैठ गए और बड़ी सावधानी से दो-तीन कीड़ों की पूँछ पकड़कर खींचकर निकाल दिये। फिर तुरन्त उस स्थान से निरन्तर रक्त निकलने लगा। फकीर साहब चीत्कार उठे। जमींदार तब चौंक गए। उन कुछ कीड़ों को उठाकर फिर से उसी-उसी स्थान पर बैठा देने के लिए फकीर साहब बारम्बार चीत्कार करके कहने लगे। मुसलमान के वैसा ही करने के बाद फकीर शान्त हुए। जमींदार बहुत दुःख प्रकट करते हुए चले गए। मैं भी निवास-स्थान पर आ गया। इसके कुछ-एक दिन बाद जाकर देखा, फकीर साहब मस्जिद के बरामदे में चहल-कदमी कर रहे हैं। सुन्दर प्रफुल्लित मुख, शरीर में मानो एक ज्योति खेल रही है। तब समझा फकीर साहब का संकल्प सिद्ध हो गया है; कुछ दिन बाद फिर उनको देखा नहीं गया। कहीं चले गए।

सुना है– देहकल्प में तीन सौ वर्ष, पाँच सौ वर्ष, हजार वर्ष की परमायु प्राप्त करने के लिए संकल्प करके भिन्न-भिन्न प्रकार की साधना, आचार, नियम और औषधि ग्रहण करना होता है। पक्ष के आरम्भ से अन्त तक पन्द्रह दिन, या कोई एक मास, फिर वैसा कोई समर्थ तपस्वी व्यक्ति हुआ तो दीर्घ परमायु प्राप्ति के लिए औषधि सेवन करके डेढ़ मास नियम-निष्ठा से रहकर देहकल्प सिद्ध होते हैं।

मैं जब भागलपुर में था, तब दो साधु गंगा के किनारे स्थित बारोरी के निर्जन में एक बहुत प्राचीन अन्धकार गुफा में तीन सौ वर्ष के जीवन प्राप्ति का संकल्प करके पन्द्रह दिन के लिए इस साधन में प्रवृत्त हुए। कदाचित् औषधि के गुण से दिनोदिन उनके शरीर का मांस धीरे-धीरे गलकर गिरने लगा, फिर उसी समय साथ-साथ उसी-उसी स्थान पर नया मांस बनना आरम्भ हो गया; एक साधु की यन्त्रणा से मृत्यु हो गई। दूसरा सिद्धि प्राप्त करके पन्द्रह दिन बाद कहीं चला गया, पता नहीं चला। भगवान की सृष्टि में कितना कुछ है जानने के पूर्व उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती!

गोस्वामीजी को एक दिन गाड़ी में बैठकर अयोध्या जाने के समय, रानुपाली के विशाल मैदान में, अपूर्व राजवेश में राम-सीता के दर्शन मिले। उस दिन वे सरयू में स्नान करके हनुमानगढ़ी, रंगमहल, सीता-राम के मन्दिर आदि बहुत-से देवस्थान में गए थे। माधोदास बाबाजी के आश्रम में जाकर, उनके शिष्य नारायण दास से भेंट की। मणिबाबा के आश्रम में गए। अयोध्या में सभी मणिबाबा को सिद्ध महात्मा के हिसाब से जानते हैं। गोसाँईजी का दर्शन करके वे आनन्द से अचेत हो गए। कुछ देर बाद उठकर हाथ जोड़ते हुए गोसाँईजी से बोले– "कृपा करके

दर्शन तो दिये, अब हमारे रहने का प्रयोजन क्या है? आप हमारे स्थान पर रहिए, हम देह छोड़ देते हैं।" गोसाँईजी भी मानो कितने पुराने परिचित लोग मिल गए, उसी भाव से उनके साथ बातचीत करने लगे। गोसाँईजी पतितदास बाबाजी के भी दर्शन करने गए थे। उन लोगों के परस्पर मिलन से जो आनन्द की स्फूर्ति और भाव का आवेश हुआ था उसे हम लोग क्या समझेंगे?

भैया ने कहा– हम सभी लोगों का भोजन एक साथ ही होता था। जो लोग मछली खाते थे वे लोग पहले ही भोजन कर लेते थे। मैं गोस्वामीजी के साथ उनके पास ही बैठता था। एक दिन भोजन करते-करते उन्हें पता चला कि मैं मछली खाता हूँ, तुरन्त उन्होंने रसोइये ब्राह्मण को बुलाकर मुझे मछली देने के लिए कहा। मैं बारम्बार मना करने लगा। अन्त में उनके अत्यन्त आग्रह को टाल न सका, मैंने मछली खाई। गोसाँईजी ने कहा– **"आप निःसंकोच मछली खाएँ, उससे मुझे कोई असुविधा नहीं होगी।"** भोजन के समय मेरे मुख से चबाने की ध्वनि निकलती थी। उसे सुनकर एक दिन बोले– **"भोजन में चबाने का शब्द न होना ही अच्छा है।** मैं तब से सावधान होकर भोजन करता हूँ। मानिकतला की माँ ने बहुत समय से भोजन त्याग दिया है, वे एक चुल्लु पानी भी नहीं पीतीं; अनुरोध करके कोई अच्छी वस्तु खिला भी दे तो उनको तुरन्त उल्टी हो जाती है। ऐसी अद्भुत अवस्था कहीं देखी नहीं।

धर्म के सम्बन्ध से ठाकुर के परम आत्मीय नानकपन्थी सिद्ध महात्मा माधोदास बाबाजी के एक शिष्य, भजननिष्ठ कन्हाईलाल बाबा प्रायः सब समय ही गोस्वामीजी के पास रहते थे। वे एक दिन अप्राकृत जलराशि के मध्य मत्स्यावतार भगवान को गोसाँईजी के सामने अपनी इच्छानुसार तैरते देखकर आनन्द से मूर्छित हो गए। माधोदास बाबाजी के बहुत से सम्मानित अंग्रेजी शिक्षित शिष्यगण अधिकांश समय ही गोस्वामीजी के पास रहते थे। वे लोग वहाँ पर विभिन्न प्रकार के अलौकिक दृश्य देखकर और अपने इष्टदेव के आविर्भाव से मुग्ध हो जाते थे।

ठाकुर के फैजाबाद में रहते समय अच्छी-अच्छी घटना हुई थी। चर्चा होने पर उसे ठाकुर के मुख से सुनकर लिखने की इच्छा है।

फैजाबाद में लगभग दो महीना भैया के साथ अच्छे आनन्द से बिताया, अचानक एक दिन घर से खबर आई, माताजी अस्वस्थ हो गई हैं। भैया ने मुझसे कहा, 'तुम ये कुछ महीने जिस भाव से मेरे पास बिताए, उससे मैं बड़ा ही सन्तुष्ट हूँ। मैं भगवान से हार्दिक प्रार्थना करता हूँ, वे तुम्हें कर्म-बन्धन से मुक्त करें। गोस्वामीजी ने तुम्हें माँ की सेवा करने के लिए कहा है; अब तुम घर जाकर माँ की सेवा करो, उससे ही तुम्हारा यथार्थ कल्याण होगा।' भैया के आदेशानुसार मैं

घर के लिए रवाना हुआ; काशी में, भागलपुर में, कोलकाता और ढाका में रुकने से मुझे लगभग एक महीना देरी हो गई। रास्ते में जिन-जिन स्थानों पर जिन सब अवस्थाओं में पड़ा, उसे विस्तारपूर्वक लिखना अनावश्यक है। वृन्दावन में गुरुदेव की दया से ब्रह्मचर्य ग्रहण करके जिस दुर्लभ अवस्था का भोग किया था, एक आकस्मिक दुर्घटना में पड़कर उससे भ्रष्ट हो गया हूँ। किस प्रकार की दुर्घटना से कैसे और कहाँ तक मेरी दुर्दशा हुई है, उसे स्मरण में रखने के लिए ही घटना का संकेत में सामान्य रूप से उल्लेख करके रख रहा हूँ।

ब्रह्मचर्य की अद्‌भुत अवस्था

गुरुदेव ने जिस दिन मुझे ऋषियों की प्रतिष्ठा का परम पवित्र ब्रह्मचर्य-व्रत दिया, उस दिन उन्होंने मुझे क्या कर दिया, वे ही जानते हैं। मुझे ऐसा बोध होने लगा— मैं अब पहले जैसा मनुष्य नहीं रहा। मेरा सारा शरीर, मन अन्य प्रकार का हो गया है, अपने शरीर के प्रति जब मैं देखता था तो चर्म-मांस से वर्जित स्वच्छ काँच का शरीर लगता था। रास्ते में, घाट में चलते-फिरते समय रूई की तरह हल्का शरीर मानो भूमि से ऊपर वायु का अवलम्बन करके चल रहा है ऐसा अनुभव करता था। जनेऊ को स्पर्श करते ही ब्रह्मचर्य का वैदिक मन्त्र अपने आप स्मृति में आकर, 'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं ऋषि हूँ' ऐसे एक भाव का संचार कर देता था। जप के समय 'नाम' एक सारवान् सजीव शक्तिशाली मन्त्र के रूप में बोध होता था। उससे नई-नई स्फूर्ति और भाव की तरंग अन्तःकरण में प्रायः सब समय ही खेलती रहती थी। बहुत दिनों के अभ्यस्त कामिनी-कल्पना और सुख-कामना भूल से भी अन्तःकरण में उदित होने से बहुत विरक्ति उत्पन्न होती, ज्वाला होने लगती। केवल शुद्ध देह का अद्‌भुत आनन्द उपभोग करके ही समय-समय पर मुग्ध हो पड़ता था। सोचा 'ये क्या हुआ? गुरुदेव ने मुझे ये क्या कर दिया?' गुरुदेव के श्रीचरणों से बिदा ग्रहण करने के बाद भी कई दिन तक वे मुझे इस अपूर्व अवस्था का उपभोग करने दिया था। बाद में पता नहीं क्यों, दयालु ठाकुर एक सुन्दर नारी को माध्यम बनाकर मेरे अचल व्रत में प्रलय ला दिये। मैं भी धीरे-धीरे निस्तेज, शक्तिहीन हो गया।

प्रलोभन में अविकार; अहंकार से पतन

माताजी अस्वस्थ हैं, यह संवाद पाकर उनकी सेवा के लिए अविलम्ब घर पहुँचने का संकल्प किया, किन्तु विधि के चक्कर से, दुर्मतिवश यहाँ-वहाँ महीनाभर घूमता-फिरता रहा। इस समय में कुछ दिन एक परिचित के घर में मुझे रहना पड़ा। वे एक के बाद एक कई संकट से उत्तेजित होकर, उसके उपशम के प्रयोजन

से अन्यत्र जाने के लिए बाध्य हुए। घर में एकमात्र पत्नी रह गईं। नौकर-नौकरानी के अतिरिक्त अन्य परिजन के न रहने से पत्नी की देख-रेख का भार बाबू मेरे ऊपर ही सौंपकर गए। विशेष घनिष्ठता के कारण सबके सामने व निर्जन में निःसंकोच मेरे साथ उनका परस्पर वार्तालाप, उठना-बैठना बहुत समय से चला आ रहा है। मेरा आसन और सोने का स्थान उनके आग्रह और जिद से भीतर में ही हुआ। दिन के बारह बजे तक मैं निर्जन में साधन-भजन करके बिताता। रमणी उस समय अपने गृहकार्य में लगी रहती थी। मध्याह्न में भोजन के बाद, नौकरादि बाहर चले जाते थे। रमणी तब अकेली अलग कमरे में न रहकर मेरे कमरे में आसन से कुछ दूरी पर शयन और विश्राम करतीं। इस समय वे धर्म-चर्चा उठाकर, सरलता की आड़ में अपने भीतर के कुभाव को मेरे सामने धीरे-धीरे प्रकट करने लगीं। मैं विषम संकट में पड़कर, क्या करूँ सोचने लगा।

उनकी किसी भी चेष्टा में बाधा देने का मेरा साहस नहीं हुआ। सोचा ऐसी अवस्था में उनके लिए कुछ भी कार्य असाध्य नहीं है। मेरे किसी विरुद्ध व्यवहार से यदि उनके हृदय में और अभिमान में आघात पड़े तो युवती तुरन्त ही मेरे नाम से निन्दित बात कहकर, चीत्कार करके दस लोगों को एकत्र करेंगी एवं क्षणभर में मुझे बदनाम करके चिरकाल के लिए मेरी अपकीर्ति, अपयश का देश-विदेश में प्रचार करेंगी। एक दिन मैं विषम विपत्ति आई समझकर, आतंक से अंधकार देखने लगा। ठाकुर ने कितनी बार कहा है– **'पुरुष अभिभावक के उपस्थित न रहने पर किसी गृहस्थ के घर में अविवाहित युवक का क्षणभर भी रहना उचित नहीं है।'** सोचा ठाकुर के इस अनुशासन वाक्य को सामान्य समझकर अग्राह्य करने से ही आज मैं आपत्ति में पड़ा। तब गुरुदेव के अभय-चरण का स्मरण करके बारम्बार उन्हें प्रणाम करने लगा। कुछ देर कामिनी अत्यधिक साहस से विषम चंचलता प्रकट करके अन्त में 'ओ हरि! इसीलिए तुम ब्रह्मचारी हो!' कहकर लज्जा से मुस्कुराते हुए अन्य कमरे में चली गईं। तब मैं स्पर्द्धायुक्त मन में सोचने लगा– 'ब्रह्मचर्य के नियम का पालन करके निश्चय ही मुझे अपूर्व शक्ति प्राप्त हुई है; इसीलिए इस प्रकार की घटना में मैं निर्विकार रहने में समर्थ हुआ हूँ। मैंने यथार्थ ही साधन-राज्य के फिसलन मार्ग का अतिक्रम करके निरापद भूमि प्राप्त कर ली है।' किन्तु हाय, इस प्रकार मिथ्या अहंकार के कुछ-एक दिन बाद ही समझ में आ गया कि मेरा सर्वनाश हो गया है। घटना का सूत्र पकड़कर धीरे-धीरे मेरे भीतर में आग लग गई। चारों ओर से अग्नि के काले धुएँ ने दुर्लभ ब्रह्मचर्य की उज्ज्वल दीप्ति को अन्तर्हित कर लिया। मैं पहले की अपूर्व पवित्र अवस्था से विचलित हो गया। अगले दिन ही बाबू घर में लौट आए। मैं भी तुरन्त वह स्थान त्याग करके आ गया।

स्वप्न में गुरुदेव का अनुशासन

इस घटना के कुछ-एक दिन बाद ही एक के बाद एक कुछ स्वप्न देखा। एक स्थान पर परिचित-अपरिचित बहुत से लोग एकत्र हुए हैं। गुरुदेव ने मुझे बुलाकर कहा, **'मेरे पीछे-पीछे चलो।'** मैं गुरुदेव के आदेशानुसार उनके पीछे-पीछे चलने लगा। रास्ते के दोनों ओर विशाल खेत में बकरों और भेड़ों की विचित्र क्रीड़ा देखकर बार-बार रुक जाने लगा। तब गुरुदेव पीछे की ओर देखकर मुझे डाँटने लगे। मैं भी तुरन्त दौड़कर गुरुदेव के साथ-साथ फिर से चलने लगता। इस तरह से मैं ठाकुर के साथ एक ऊँचे पर्वत के शिखर के समीप पहुँचा। पर्वत पर चढ़ने के लिए बहुत से गुरुभाइयों को एकत्रित देखा। वहाँ पर गुरुदेव ने मेरी ओर देखकर कहा– **'तुम यहाँ पर रुको, मैं अभी जाता हूँ।'** ठाकुर की बात सुनकर मैं रो पड़ा एवं खूब व्याकुल होकर कहा– 'मैं आपके साथ ही इस पर्वत पर चढ़ूँगा, मुझे अपने साथ ले लो।' ठाकुर ने मुझे खूब धमकाकर कहा, **'तुम बड़े जिद्दी लड़के हो। जो इच्छा होती है तुम वही करते हो। तुमको साथ में ले जाकर क्या अन्त में उत्पात में पड़ूँगा? यहाँ पर कुछ समय रुको; जब सब लोग जाएँगे, तब तुम भी जाना। अभी मेरे साथ नहीं जा सकोगे।'** यह कहकर गुरुदेव पहाड़ पर चढ़ने के लिए आगे बढ़े, मैं भी रोते-रोते जाग उठा। यह स्वप्न देखकर मेरा मन बड़ा ही अस्थिर हो गया। खूब नियम-निष्ठा में रहकर साधना करना आरम्भ कर दिया– गुरुदेव के पास शीघ्र चले जाने की इच्छा हुई। तब एक दिन स्वप्न देखा– एक स्थान पर बड़ी धूमधाम से हरिसंकीर्तन हो रहा है; संकीर्तन में मतवाले होकर बहुत लोग भावावेश से अचेत हो गए हैं। 'दयालु निताई, दयालु निताई' कहकर सब लोग क्रन्दन कर रहे हैं। मैंने सोचा– निताई पतितपावन हैं, उन्हें पुकारुँ। यह सोचकर 'दयालु निताई, दयालु निताई' कहते-कहते रोने लगा। यह स्वप्न देखकर भी मेरे मन में शान्ति नहीं मिली, सर्वदा मन में ऐसा लगने लगा– अपने दोष से ही दुर्लभ अवस्था खो दिया हूँ। अनुताप और क्लेश से मेरा समय बीतने लगा। एक दिन खूब व्याकुल होकर अपनी दुरावस्था गुरुदेव के चरणों में निवेदन करके सो गया। रात्रि में स्वप्न देखा– बहुत-से लोगों को साथ में लेकर गुरुदेव एक बड़े संकीर्तन में जा रहे हैं। मैं अपनी दुरावस्था से मृतप्राय होकर एक किनारे खड़ा रहा। गुरुदेव ने मुझसे कहा– **'चल, कीर्तन में जाएँगे; आज कीर्तन में तुम विशेष कृपा प्राप्त करोगे।'** मैं स्वयं को पतित समझकर, हाथ जोड़कर काँपने लगा। ठाकुर की ओर देखकर रो पड़ा। तब गुरुदेव ने मुझे पकड़कर गोद में उठा लिया। ठाकुर को देखकर उनका शरीर पत्थर की तरह कड़ा बोध हो रहा था, किन्तु गोद में उठने से ठाकुर का शरीर रूई की तरह नरम अनुभव करने लगा। संकीर्तन-स्थल पर

मुझे गोद से उतारकर बोले, **'कुछ देर तुम यहाँ पर प्रतीक्षा करो। मैं अभी लौटकर आ रहा हूँ।'** यह कहकर वे समीप के एक सुन्दर मकान में प्रवेश किये। मैं भी उसी समय जाग उठा।

यह स्वप्न देखने के बाद, ठाकुर की दया समझकर मन में बहुत-कुछ शान्ति मिली; किन्तु गुरुदेव की असाधारण कृपा से जो अद्भुत अवस्था प्राप्त हुई थी, वह फिर से आई नहीं। दाता एकमात्र वे ही हैं, उनकी दया से क्षणभर के भीतर फिर से वही अवस्था प्राप्त हो सकती है– यह सोचकर स्थिर मन से साधन-भजन करने लगा।

गुरुवाक्य में अनास्था के कारण दुर्दैव

फैजाबाद से घर जाने के समय काशी में कुछ-एक दिन रुककर गंगा-स्नान करने की इच्छा हुई। एक दिन दशाश्वमेध घाट पर स्नान करके विश्वेश्वर-दर्शन करूँगा, निश्चित किया। श्रीवृन्दावन में एक दिन ठाकुर ने कहा था– **"तीर्थ में जाकर पहले तीर्थगुरु करना होता है, उनकी अनुमति लेकर पण्डा की सहायता से स्नान, दर्शनादि तीर्थ के समस्त कार्य करना होता है– यही व्यवस्था है।"**

इस प्रकार की व्यवस्था का तात्पर्य क्या है, ठाकुर से पूछा नहीं। साधारण लोगों की सुविधा के लिए ही इसकी शास्त्र में साधारण व्यवस्था है, ऐसा लगा। सामर्थी के लिए इस प्रकार की बाधा-प्रतिबन्ध का कुछ प्रयोजन है, ऐसा लगता नहीं। यही सोचकर इस नियम-पद्धति में मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई। मैं स्नान करने के लिए दशाश्वमेध घाट में पहुँचा; घाट में जाकर स्नान करने के लिए उद्योग करते ही पण्डे लोग मुझे घेरकर खड़े हो गए। संकल्प मन्त्र बिना पढ़े दशाश्वमेध में स्नान करने नहीं देंगे कहकर आपत्ति करना आरम्भ कर दिये। मैं 'मन्त्र-तन्त्र समझता नहीं', 'देवी-देवता मानता नहीं' कहकर उन लोगों को भगा दिया। विश्वनाथ के मन्दिर जाने के रास्ते में फिर पण्डों का बड़ा उत्पात आरम्भ हो गया। वे कुछ दो-चार आना मिलने से ही सन्तुष्ट होकर मुझे सरलता से दर्शन करा देंगे, कहने लगे। कोई-कोई दो-चार पैसे के फूल, विल्वपत्र की डाली मेरे सामने रखकर, पैसे के लिए विरक्त करने लगे। ये सब पण्डों की पैसे लेने की केवल चतुराई समझकर, सभी को धमकाकर कहा– 'अन्धे-लंगड़े, बूढ़े-बूढ़ियों को दर्शन कराकर पैसे लिया करो। पण्डे उनके लिए ही हैं, मैं अच्छे से दर्शन कर सकता हूँ। फूल, बेलपत्ते में अनर्थक पैसे व्यय नहीं करूँगा। जो विश्वनाथ हैं वे क्या फिर फूल, बेलपत्ते की आशा करेंगे? अनावश्यक खर्च के लिए पैसा नहीं है।' सभी मेरी बात सुनकर 'अरे

राम राम' कहकर अलग हो गए। मैं मन्दिर के द्वार पर पहुँचकर लोगों की भीड़ देखकर अवाक् रह गया। बहुत प्रयास करके भीतर प्रवेश किया, किन्तु बहुत लोगों के धक्के से दीवाल के पास जाकर खड़ा हो गया। इतने स्त्री और पुरुषों को ठेलकर विश्वेश्वर का दर्शन करना मुझे असम्भव लगा। तब बाहर निकलने का प्रयास करने लगा। इस समय एक सुन्दर युवती सुयोग पाकर लोगों की हलचल में विभिन्न कौशल से मुझे अस्थिर कर दी। मैं विपद् समझकर बड़े कष्ट से बाहर आ गया। विश्वेश्वर का दर्शन न होने से मन में कोई उद्वेग नहीं हुआ, बल्कि विषम उत्पात से छुटकारा मिला सोचकर सन्तुष्ट ही हुआ। निवास-स्थान पर जाते समय अच्छे-अच्छे कमण्डलु देखकर एक क्रय करने की इच्छा हुई। मूल्य देने के लिए रुपये निकालने लगा तो देखा पॉकेट खाली है। भीतर के कुर्त्ते में, ऊपर के पॉकेट में पैंतीस रुपये थे उसमें एक भी नहीं है। मुझे बहुत ही कष्ट होने लगा। तब सोचा, यदि आठ-दश आने पैसे पण्डा के हाथ में देकर मन्दिर में जाता, तब तो वह मेरे लिए दर्शन की सुव्यवस्था सहज में कर देता। अन्य कोई उपद्रव भी मुझे स्पर्श नहीं करता, रुपये भी इस प्रकार से गँवाता नहीं। शास्त्र-व्यवस्था की अमर्यादा के कारण ही इसे अपने प्रति गुरुदेव का ही अनुशासन समझकर अनुताप करने लगा। काशी में रहने का अब मेरा उत्साह नहीं रहा; विरक्ति के विविध कारण उपस्थित हो गए। मैं शीघ्र काशी छोड़कर भागलपुर पहुँचा। कुछ समय वहाँ योगजीवन के साथ बड़े ही आनन्द से व्यतीत किया। फिर कोलकाता पहुँच गया।

मानिकतला की माँ

कोलकाता आकर एक सप्ताह रहा। भैया ने मुझे मानिकतला की माँ के साथ भेंट करने के लिए कहा था, मैं समवयस्क दो मित्रों को साथ लेकर मानिकतला की माताजी के घर गया। माताजी के पति, भैया के परिचय से मुझे पहचान कर, बड़े आदर के साथ हम सबको भीतर ले गए। उस समय माताजी भावावेश में समाधिस्थ थीं। उच्च स्वर में हरिनाम करते-करते पाँच-सात मिनट बाद उनकी चेतना लौट आई। उन्होंने बड़े स्नेह के साथ मुझे कुछ जलपान करने के लिए कहा। 'मैं प्रसाद के अतिरिक्त कुछ खाता नहीं'— कहने पर माताजी ने कहा, 'भूमि में स्पर्श करने के बाद खाओ, तब माँ का प्रसाद खाना होगा। मातृगर्भ से भूमिष्ठ होने पर, सर्वप्रथम इसी माँ का आश्रय मिला है, भूमि ही यथार्थ माँ है। इसी माँ को निवेदन करके, भूमि में स्पर्श कर लेने से वस्तु की अपवित्रता का दोष दूर हो जाता है।'

माताजी ने अपने-आप मुझे अनेक उपदेश दिये। मैं उन सब बातों का कोई अर्थ ही समझा नहीं; तत्त्वज्ञान के अत्यन्त दुर्बोध्य सब विषय को विशुद्ध भाषा में

निरन्तर कहते जाने लगीं। लगभग दो घण्टे तक निर्विघ्न व्याख्यान दीं। इस समय उनकी तेजःपूर्ण भाषा की रचना, शब्दों की शैली और क्रम देखकर हम लोग अवाक् होकर रह गए। माताजी का व्याख्यान शेष होने के बाद मैंने कहा, 'आपने इतनी देर तक क्या कहा, कुछ समझ नहीं आया।' माताजी ने कहा– 'तुम्हें देखकर भीतर में एक प्रकार का भाव हुआ; अपने-आप जो आया, वही बोल दी। क्या बोली हूँ, वह मैं भी नहीं जानती। जो कहा गया है, वही सब अवस्थाएँ जब तुम्हें प्राप्त होंगी, तब तुम मेरी इन सब बातों का स्मरण करोगे। लगता है तुम गोसाँईजी के शिष्य हो। वह लड़का साधारण नहीं है, जिन्हें उनका आश्रय मिला है, वे लोग सम्पूर्ण रूप से निर्भय हो गए हैं, यह निश्चय जान लो; शिष्य के भीतर उन्होंने नित्यधाम स्थापित कर लिया है; जिस भाव से चलने की इच्छा हो चलो, समय पर वे सब ठीक कर लेंगे।

माताजी की बात सुनकर मुझे बड़ा ही अच्छा लगा। ठाकुर के मुख से माताजी की बहुत प्रशंसा सुनी है। बिना साधना किये पूर्वजन्म के संस्कारवश बहुत-सी अद्‌भुत शक्ति उन्हें स्वतः ही प्राप्त हुई हैं। लगभग दस वर्षों से आहार त्याग करके भी स्वस्थ शरीर में हैं। रूप की उज्ज्वलता और मुख की शोभा देखकर, सभी लोग उनकी देह में किसी देवी का आविर्भाव समझते हैं। माताजी के असाधारण स्नेह-ममता से मैं स्वयं को धन्य समझने लगा।

हरिचरण बाबू और लाल का पश्चात्ताप

कोलकाता से आकर, ढाका गेण्डारिया-आश्रम में एक सप्ताह तक रहा। भजननिष्ठ संसारत्यागी गुरुभाई श्रीयुत् नवकुमार बाग्ची और पण्डित श्यामाकान्त चट्टोपाध्याय जी के साथ मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ढाका के सभी गुरुभाइयों के साथ भी मेरी भेंट हुई। एक दिन श्रीयुत् हरिचरण चक्रवर्ती जी मुझे अपने निवास पर ले गए। श्रीवृन्दावन में ठाकुर ने उनके सम्बन्ध में कुछ कहा है कि नहीं, बड़े आग्रह के साथ पूछने लगे। मैंने कहा– सुना हूँ आप तीन-चार गुरुभाई लोग ठाकुर के आदेश का उल्लंघन करके ब्रह्मचारीजी के संसर्ग के फलस्वरूप बड़े ही क्षतिग्रस्त हुए हैं; उनके उपदेश के अनुसार अद्वैतवाद एवं प्रारब्ध संस्कार से जड़ित होकर साधन-भजन त्याग दिये हैं; गुरुदेव द्वारा प्रदत्त साधन में आप लोगों की पहले जैसी निष्ठा, भक्ति कुछ भी नहीं रही, बल्कि इस साधन के विरोधी हो गए हैं। इसीलिए ठाकुर ने प्रसंगवश एक दिन कहा– **'ये लोग यदि अभी से नियमानुसार साधना करें, तो फिर पाँच-छह वर्ष बाद हो सकता है पहले की अवस्था पुनः प्राप्त कर सकते हैं। नहीं तो इस बार इसी प्रकार ही चले जाना होगा।'**

हरिचरण बाबू ने कहा– 'गोसाँईजी ने ठीक बात ही कही है। दीक्षा ग्रहण कर उनकी कृपा से जिस अपूर्व अवस्था का भोग किया, वह फिर नहीं रही; ब्रह्मचारीजी के संसर्ग से ही उस अवस्था को खो दिया है। अहा! गोसाँईजी ने दया करके कितने आनन्द में रखा था। कितने दर्शनादि होते थे; वे सब स्वप्न लगते हैं। अब उन सब विषयों के चिन्तन से दिन-रात जल-भुन जा रहा हूँ। गोसाँईजी फिर से मुझ पर कृपा करेंगे तो?' यह कहकर हरिचरण बाबू रोने लगे। मैं कुछ देर बाद चला आया।

गेण्डारिया आश्रम में असाधारण योगैश्वर्यशाली गुरुभाई श्रीयुत् लालबिहारी के साथ मेरा खूब मेल-मिलाप हुआ। हम दोनों सर्वदा एक साथ ही रहकर ठाकुर के प्रसंग में परमानन्द से दिन बिताने लगे। एक दिन गेण्डारिया के निर्जन जंगल में ले जाकर लाल ने मुझसे पूछा– 'भाई, वहाँ गुरुजी के पास मेरी कुछ चर्चा हुई थी क्या? जो जानते हो उसे छिपाए बिना मुझे खुलकर बतलाओ।' मैंने लाल के सम्बन्ध में जो सब बातें हुई थी, स्पष्ट कह दिया। सुनकर लाल कुछ क्षण स्तम्भित होकर रह गए, मुख मलिन हो गया। बाद में एक लम्बी श्वास छोड़कर कहने लगे– 'ठीक ही कह रहे हो, उस समय जो स्थिर ब्रह्मज्योति मेरे समक्ष प्रकाशित थी, तब से वह बिल्कुल अदृश्य हो गई है। शक्ति की बात, योगैश्वर्य की बात छोड़ दो, अब वो सब कुछ नहीं रहा; अब आत्मरक्षा भी असम्भव हो गई है। दिन-रात अनुताप से, यन्त्रणा से छटपटा रहा हूँ। अहा! गोसाँईजी ने मुझे कितना सावधान किया था, किन्तु तब उनकी बात सुनी नहीं। उनके पास से आते समय भी मुझसे उन्होंने कहा था– **लाल! सम्पूर्ण उत्ताप-शून्य होने पर, बहुत देर में मिट्टी की घास पर चन्द की किरण पड़ने से एक कण ओस उत्पन्न होती है; किन्तु अभिमान-सूर्य के प्रकाश मात्र से क्षणभर के भीतर वह बिल्कुल सूख जाती है; बहुत सावधान रहना।** तब मैं गोसाँईजी की बात समझा नहीं, जो हो, उससे मेरी हानि ही क्या हुई? फिर ये सब अवस्था मैं तो कोई साधन-भजन करके, परिश्रम करके प्राप्त नहीं किया था; उनकी वस्तु, वे कृपा करके दिये थे, भोग किया। अब अपनी वस्तु वे ले लिए हैं; मैं पहले जैसा था, अब भी वैसा हूँ।' इस प्रकार लाल ने बहुत देर तक खेद व्यक्त किया; फिर हम लोग गेण्डारिया आश्रम में चले आए।

छोटे भैया (श्रीयुत् सारदाकान्त बन्द्योपाध्याय) के मुख से माताजी की पीड़ा की बात सुनकर बहुत व्याकुल हो गया। छोटे भैया का शरीर भी बहुत विवश दिखा। इस बार वे बी॰ए॰ की परीक्षा देंगे। रोगग्रस्त अवस्था में अधिक पढ़ाई-लिखाई करके अब बड़े ही अस्वस्थ हो गए हैं। परीक्षा दे पाएँगे कि नहीं सोचकर, बीच-बीच में बहुत ही हताश हो जाते हैं। छोटे भैया के कहने पर मैं घर चला गया।

मेरी दिनचर्या : मातृ-सेवा से सम्पूर्ण कल्याण

{बंगला सन् 1297, अग्रहायण। **(नवम्बर, दिसम्बर, सन् 1890)**}

घर आकर माँ को अत्यन्त पीड़ित अवस्था में देखा। पित्तशूल की वेदना एवं अमाशय आदि रोग से वृद्धावस्था में माँ का शरीर बहुत ही विवश हो गया है। दिन-रात रोग की यन्त्रणा से अवसन्न रहकर भी विशाल गृहस्थी के समस्त कार्यों का निरीक्षण एवं स्वयं के आहार के लिए जो कुछ व्यवस्था है, माँ को ही करनी पड़ती है। माँ अचल न होने तक, किसी से सेवा नहीं कराती। माँ की दुरावस्था देखकर मन में बड़ा ही आघात लगा। गृहस्थी का समस्त भार एवं माँ की सेवा-सुश्रुषा का जो कुछ कार्य है, मैंने ही ग्रहण कर लिया।

मेरी बहुत पुरानी पित्तशूल की वेदना एवं वायुरोग बिल्कुल दूर हो गया है। शरीर अच्छा सबल और स्वस्थ देखकर माँ ने पूछा– 'तेरा यह रोग कैसे दूर हुआ?' मैं रोग की यन्त्रणा से पागल जैसा होकर आत्महत्या करने के संकल्प से श्रीवृन्दावन गया था, तब ठाकुर की कृपा से जिस तरह मैं रोगमुक्त हुआ एवं मेरी रक्षा हुई, माँ को विस्तारपूर्वक बतलाया। अपने 'ब्रह्मचर्य' ग्रहण की बात भी माँ को स्पष्ट रूप से बतला दिया। माँ सब बातें सुनकर अवाक् हो गईं। गोसाँईजी ने तेरे जीवन की रक्षा की है, कहकर माँ रोने लगीं। माँ ने कहा– 'ऐसा गुरु जब पाया है, तो फिर उनको छोड़कर आया क्यों? उनके साथ रहने से तेरा और भी उपकार होता।' मैंने कहा, 'वे मुझे तुम्हारी ही सेवा करने के लिए घर भेजे हैं।' मेरे प्रति गुरु का आदेश सुनकर माँ ने कहा– 'अच्छा गुरु की आज्ञानुसार तू मेरी सेवा कर।' माँ का आदेश पाकर, मैं सभी कार्यों का एक नियम बनाकर चलने लगा।

मैं प्रतिदिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में आसन से उठकर शौच के बाद ब्राह्ममुहूर्त में स्नान करता; फिर निर्जन कमरे में आसन पर बैठकर साधना करने के बाद तिल, तुलसी, कुशोदक से या कभी पंचामृत से विशेष-विशेष तिथि में गाय के सींग के जल से पितरों का तर्पण करके माँ के पास पहुँचता हूँ। माँ को भूमिष्ठ होकर प्रणाम करता; माँ अपने दोनों पैर मेरे मस्तक में रखकर पीठ पर हाथ फेरते-फेरते आशीर्वाद देतीं– 'तेरी मनोकामना पूर्ण हो, सुखी रह।' मैं मन-ही-मन प्रार्थना करता– 'मेरी सेवा से तुम स्वस्थ हो जाओ; तुम्हें तृप्ति हो और मेरे गुरुदेव आनन्द प्राप्त करें।' माँ जब मेरे शरीर और मस्तक पर हाथ फेरकर परम स्नेह के साथ आशीर्वाद देती हैं तब मेरा पूरा शरीर शीतल हो जाता है। भीतर एक अपूर्व आनन्द होता है, लगता है मैं धन्य हो गया हूँ। माँ की पदधूलि और आशीर्वाद लेने के बाद, आसन पर बैठकर नौ बजे तक साधन-भजन करता हूँ। इस समय माँ मेरे कमरे में आती हैं। गुरुगीता, भगवद्गीता और सूर्यस्तव आदि का पाठ करके माँ

को सुनाता हूँ। दस बजे माँ के लिए भोजन बनाने जाता हूँ; माँ भी उस समय प्रतिदिन का कार्य करने बैठती हैं। माँ का पूजा-पाठ और जप होते तक मेरा भोजन बनाना भी हो जाता है। तब माँ को फिर से प्रणाम करके उनका चरणामृत ग्रहण करता हूँ। माँ शिव के मस्तक पर फूल-विल्वपत्र चढ़ाकर, हाथ जोड़कर प्रणाम करते-करते प्रार्थना करतीं– 'ठाकुर! उसकी आकांक्षा तुम पूर्ण करो।' पूजा शेष करके माँ भोजन करने बैठती हैं; माँ को भोजन देकर मैं भी माँ के सामने प्रसाद पाने बैठता हूँ। माँ आहार करते-करते जो अच्छा लगता है उसे स्वयं कम खाकर मेरे थाली में डाल देतीं। आनन्दपूर्वक माँ के हाथ से उनका प्रसाद पा रहा हूँ। मेरा बनाया भोजन खाकर माँ को प्रतिदिन ही बड़ा सन्तोष मिल रहा है; माँ को तृप्त देखकर मुझे कितना आनन्द होता है, कह नहीं सकता। इस समय मुझे दयालु ठाकुर की ही बात का स्मरण होता है; उनकी कृपा से ही मेरा शुभ दिन आया है। भोजन के बाद गुरुदेव के शान्तिप्रद अभयचरणों का स्मरण कर प्रणाम करके अपने आसन पर बैठ जाता हूँ।

दिन के एक बजे से तीन बजे तक निर्जन में बैठकर नाम-जप करता हूँ। माँ इस समय विश्राम करती हैं। तीन बजे माँ मेरे आसन-घर में आकर बैठती हैं। तब मैं महाभारत, श्रीमद्भागवत एवं रामायण पाठ करके माँ को सुनाता हूँ। इस समय पाड़े के और भी बहुत से स्त्री-पुरुष आकर पाठ सुना करते हैं। पाँच बजे तक पाठ करके, आसन से उठता हूँ। तब गृहस्थी का बाजार करना, हिसाब-किताब लिखना इत्यादि जो कुछ कार्य रहता है, उसे करता हूँ। संध्या के समय माँ को प्रणाम करके दो-चार समवयस्कों के साथ भगवान का नाम-कीर्तन करता हूँ। बाद में माँ के पास जाता हूँ। रात्रि में माँ मेरे लिए कुछ जलपान करके मुझे प्रसाद देती हैं। माँ के शयन करने पर कभी-कभी उनके पैरों में तेल की मालिश कर देता हूँ। वे कुछ देर मुझे छाती से लगाकर पड़ी रहतीं एवं मेरे सर्वांग में हाथ फेरकर, माथे पर फूँक मारते-मारते पेट में अँगुली से बारम्बार ठोकते हुए रक्षा-मन्त्र पढ़ा करतीं। माँ के स्पर्श से मेरा शरीर और मन बिल्कुल शीतल हो जाता है। माँ का स्नेह देखकर मैं फफक-फफक कर रोता हूँ। नींद आने पर अपने आसन-घर में आकर शयन करता हूँ। कभी बिछौने में या कभी आसन पर ही अर्ध-शायित अवस्था में पड़ा रहता हूँ। रात्रि में प्रायः एक बजे हाथ-मुँह धोकर, धूनी जलाकर साधना करने बैठता हूँ। रात्रि के अन्तिम प्रहर तक नाम-जप करते-करते भावावेश में अथवा कभी तन्द्रावेश में मेरा समय बीत जाता है। गुरुदेव ने मुझे कितने आनन्द में रखा है, प्रकट नहीं कर सकता।

घर पर रहकर प्रतिदिन एक ही नियम से, साधन-भजन में, माताजी की सेवा में मेरा समय अतिवाहित हो रहा है; प्रतिदिन नए-नए उत्साह और आनन्द

से साधन-भजन करने की मेरी आकांक्षा में वृद्धि होने लगी। रात्रि के अन्त में लगता है– कितनी देर में सूर्योदय होगा, कब नित्यकर्म समाप्त करके माँ की चरणधूलि मस्तक पर लगाऊँगा, वे मेरे सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद देंगी; कितनी देर में माँ का चरणामृत पाऊँगा। स्वादिष्ट व्यंजन आदि बनाकर माँ को खिलाऊँगा। विशेष पूजा-उत्सव के दिन सबके मन में सूर्योदय होते ही जिस प्रकार मन में एक उत्साह और आनन्द खेलता रहता है, प्रत्येक दिन उसी प्रकार, दिन के प्रारम्भ से ही मेरे भीतर एक स्फूर्ति, आनन्द की तरंग उपस्थित होती है। गुरुदेव की असीम कृपा से माताजी की प्रसन्नता और आशीर्वाद प्राप्त करके वास्तव में मैं कृतार्थ हो गया, धन्य हो गया हूँ! मेरे प्रति ठाकुर की इस असाधारण दया का सदा स्मरण करके निर्जन में चिल्लाकर रोने की इच्छा होती है; गुरुदेव जब दया करते हैं तब सब कुछ अनुकूल हो जाता है। मातृ-सेवा की बात सुनकर भैया लोग सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद देकर मुझे लिख रहे हैं– 'साधन-भजन में तुम्हारी उन्नति हो, तुम सुखी रहो।' आत्मीय स्वजन, अभिभावकगण जो पहले मेरे से अप्रसन्न थे, अब वे लोग भी मुझसे बहुत सन्तुष्ट हैं; गाँव के वृद्ध ब्राह्मण लोग भी मेरे दैनिक अनुष्ठान की यथेष्ट प्रशंसा कर रहे हैं। ब्राह्म होने से, इतने समय तक जिन्हें मेरे प्रति आन्तरिक घृणा और शत्रुता थी, वे लोग भी अब मेरे साथ धर्म-प्रसंग में आनन्द कर रहे हैं। सब गुरुजनों के स्नेह, ममता और आशीर्वाद के कारण नित्य नए उत्साह-उद्यम से साधन-भजन करके भीतर एक अपूर्व शक्ति अनुभव कर रहा हूँ। बहुत आनन्द से मेरे दिन-रात बीत रहे हैं।

गुरुकृपा का अलौकिक दृष्टान्त, छोटे भैया का आरोग्य

मैं स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ, सद्‌गुरु के किसी एक सामान्य आदेश पालन की चेष्टा करने से भी, वही सूत्र आकार में परिणत होकर, बहुत दूर में स्थित शिष्य के चित्त को भी अपने अनन्त महान् भाव के साथ जोड़कर रखती है। यह सूत्र मकड़ी के जाले की तरह बहुत ही महीन होने से भी, इसी का सहारा लेकर गुरुकृपा की प्रबल धारा, तड़ित प्रवाह की तरह वेग से आकर, शिष्य के भीतर संचारित होती है। गुरु का आदेश पालन कर रहा हूँ, यह मन में स्थिर रखने से, गुरुदेव मुझसे प्रसन्न हैं, मेरी इस प्रकार की धारणा दृढ़ हो रही है। गुरुदेव मेरी प्रार्थना सुनते हैं, व्याकुल होकर कहने से या जिद करके माँग करने से उसे वे पूर्ण कर देते हैं, मन में इस प्रकार का संस्कार पड़ रहा है एवं इसके ही फलस्वरूप स्वयं के ऊपर अत्यन्त विश्वास उत्पन्न हो गया है। कुछ घटनाओं में इस विषय का मैंने प्रत्यक्ष प्रमाण भी पाया है, उनमें से दो-चार का ही उल्लेख कर रहा हूँ।

कुछ दिन पहले छोटे भैया का पत्र मिला। उन्होंने लिखा है– 'अचानक

छाती में कष्ट होने के कारण तीन दिन से शय्यागत हूँ। पढ़ाई-लिखाई भी नहीं कर पा रहा हूँ; सदा असह्य यन्त्रणा भोग रहा हूँ। परीक्षा का समय सन्निकट है; एक-एक दिन बड़ी हानि हो रही है, इस बार लगता है परीक्षा पास नहीं कर पाऊँगा। तुम मेरे मंगल के लिए प्रार्थना करना।' छोटे भैया का पत्र पढ़ते ही मेरा हृदय काँप उठा। मैंने व्याकुल होकर ठाकुर के चरणों में प्रणाम करके प्रार्थना की– 'गुरुदेव! छोटे भैया के शरीर का कष्ट मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ; शीघ्र उनके रोग को तुम दया करके मेरे भीतर संचार कर दो। मैं बिना विचलित हुए, सन्तोषपूर्वक रोग के अन्त तक कष्ट सहन करूँगा।' इस प्रकार प्रार्थना करके आसन पर बैठकर कुछ क्षण गुरुदेव का स्मरण किया, फिर बड़े उत्साह के साथ प्राणायाम के प्रत्येक दम में रोग की कल्पना से वायु खींचकर, रेचक के साथ अपना स्वास्थ्य छोटे भैया के रोगग्रस्त शरीर में संचारित करने लगा। इस प्रकार एकाग्र मन से, प्राणपण से ध्यान और प्राणायाम करते-करते मेरे छाती में वेदना का अनुभव हुआ। क्रिया के साथ-साथ यह यन्त्रणा क्रमशः बहुत बढ़ गई; तब अपने भीतर से उत्साह पाकर, हठपूर्वक बारम्बार कुम्भक करके दृढ़ता के साथ उसे दबाकर छाती में धारण करने लगा। कुछ क्षण के भीतर ही ठाकुर की इच्छा से, मेरा शरीर असह्य यन्त्रणा से अवसन्न हो गया। मैं तुरन्त ही जयगुरु, जयगुरु कहते-कहते आसन से उठ गया। उसी समय छोटे भैया को पत्र लिखा। जिस दिन, जिस समय मेरे भीतर इस रोग का संचार हुआ, छोटे भैया को स्पष्टरूप से बतलाया। छोटे भैया के जवाब से ज्ञात हुआ, उसी दिन ठीक उसी समय ही उनकी वेदना कम हो गई है। अद्भुत है गुरुदेव की दया! यह पीड़ा अधिक दिन मुझे भुगतनी नहीं पड़ी।

इस घटना के कुछ दिन बाद ही छोटे भैया की बी॰ए॰ की परीक्षा आरम्भ हुई; परीक्षा के तीन दिन पूर्व, भीषण ज्वर से शय्यागत होकर उन्होंने मुझे पत्र लिखा। मैं सोमवार को प्रातः नौ बजे किसी कार्यवश जैनसार ग्राम में जा रहा था, रास्ते में छोटे भैया का पत्र मिला। समझ गया, इसी दिन छोटे भैया की परीक्षा आरम्भ होगी। रोग से मुक्त होकर छोटे भैया हो सकता है परीक्षा नहीं दे पाए, इस चिन्ता से मेरा सिर चकरा गया; जैनसार जाने के आधे रास्ते में एक विशाल वट वृक्ष के नीचे मैं बैठ गया। छोटे भैया के आरोग्य प्राप्ति एवं परीक्षा में सफलता के लिए व्याकुल होकर, ठाकुर के चरणों में प्रार्थना करने लगा। लगभग तीन घण्टे तक एक ही अवस्था में व्याकुल होकर रोया। विपत्ति की आशंका से, निरुपाय होकर ठाकुर को सब निवेदन किया। इस समय भीतर के क्लेश और निराशा से मूर्च्छित-सा हो गया। कुछ ही देर बाद ठाकुर की ही कृपा से समझ पाया– 'ठाकुर छोटे भैया पर दया करेंगे! छोटे भैया सम्पूर्ण आरोग्य प्राप्त करेंगे। परीक्षा में वे निश्चित रूप से पास होंगे।' मैं तुरन्त उठकर जैनसार ग्राम चला गया। उसी

समय पोस्ट-ऑफिस में बैठकर छोटे भैया को पत्र लिखा– 'कुछ भी चिन्ता मत करना, गुरुदेव आपका कल्याण करेंगे। परीक्षा में आप अवश्य पास होंगे।' लगता है ज्वर सम्पूर्ण रूप से दूर हो गया है; कैसे हैं लिखिएगा।' छोटे भैया ने मेरे पत्र का उत्तर दिया– "परीक्षा के दिन ही (सोमवार को) पथ्य पाकर, बहुत कष्ट से परीक्षा देने गया; रास्ते में अचानक मेरे भीतर मानो एक तेज प्रविष्ट हुआ; अब मुझे कोई कष्ट नहीं है, भगवान की दया से परीक्षा अच्छे से दिया।" छोटे भैया का पत्र पाकर मैं निश्चिन्त हुआ; गुरुदेव की अपार कृपा का स्मरण करके रोने लगा।

प्रकृति पूजा से दुर्दशा, श्रीश्री गुरुदेव का अभय दान

घर आकर, गुरुदेव के आदेशानुसार ब्रह्मचर्य के नियम का यथारीति प्रतिपालन करके साधन-भजन में दिन-रात बिताने लगा। गाँव के वृद्ध ब्राह्मण लोग, आत्मीय स्वजन एवं गुरुजन, जो कि इतने समय तक मुझसे व्यावहारिक अनाचार के कारण बहुत अप्रसन्न थे, वे लोग भी मेरी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। सभ्य-असभ्य, स्त्री-पुरुष आदि सब लोग ही मुझे सदाचारी, चरित्रवान, भजननिष्ठ ब्राह्मण समझकर मेरी श्रद्धा-भक्ति करना आरम्भ कर दिये। दूर ग्रामवासी एवं पास-पड़ोस के लोग भी मुझे अपनी शारीरिक, मानसिक एवं सांसारिक विभिन्न प्रकार की दुरावस्था और दुर्घटना की बात कहकर, आशीर्वाद चाहने लगे। भगवान की कृपा से कोई-कोई लोग कठिन रोग से, आपद्-विपद् से छुटकारा पाकर अयथा मेरे समक्ष कृतज्ञता प्रकट करना आरम्भ कर दिये। चारों ओर मेरी बहुत प्रशंसा होने लगी एवं प्रचार हो गया। मेरे प्रति गुणों का आरोपण पूर्णतः निरर्थक है, इन सब कार्यों से मेरा कोई सम्पर्क नहीं है, यह स्पष्ट जानकर भी लोगों द्वारा किया गया गुणगान मुझे अच्छा लगने लगा। समय-समय पर देखने लगा, जिनका कष्ट मेरे मन को स्पर्श करता है, जिनकी विपत्ति से मैं विचलित होता हूँ, उन लोगों का कल्याण करने की मेरी कामना से, ठाकुर उन लोगों का मंगल करते हैं, उत्पात की शान्ति करते हैं। यह सब देखकर मुझे लगा– अत्यन्त कठोरतापूर्वक नियम का पालन करके चल रहा हूँ, साधन-भजन में दिन-रात अतिवाहित कर रहा हूँ; दस लोग भी मेरे चरित्र की एवं अनुष्ठान की बहुत प्रशंसा कर रहे हैं, इसलिए वास्तव में ही मैं धन्य हो गया हूँ। इस प्रकार का भाव मन में आने से स्वयं के ऊपर मेरा अत्यधिक विश्वास उत्पन्न हो गया। सोचा ठाकुर के अलौकिक ऐश्वर्य का सूक्ष्म कण मेरे भीतर संचारित हुआ है; उनकी असाधारण कृपा से इस बार मैं वास्तव में ही निरापद् हो गया हूँ। इस प्रकार के संस्कार से मैं धीरे-धीरे गर्वित हो उठा। आवेश और आनन्दपूर्वक सभी के साथ निर्भय होकर हिलने-मिलने लगा। मेरे चरित्र पर लोगों को अत्यन्त विश्वास होने से युवती लोग भी निःसंकोच

स्वेच्छानुसार सबके सामने व निर्जन में मेरे पास आना आरम्भ कर दिये। सभी अपने-अपने मन की बात मुझे बतलाकर आराम पाने लगे।

एक दिन एक पूर्ण यौवनावस्था की परम सुन्दरी ब्राह्मण कन्या आकर रोती हुई मुझसे बोली– "भीतर की असह्य ज्वाला अब मैं सहन नहीं कर पा रही हूँ, तुम्हारा चिन्तन होने से ही मेरी विषम अवस्था हो जाती है। भोग की लालसा से अस्थिर हो जाती हूँ। मेरी इस कामना को परितृप्त करो।" मैंने उनसे कहा– 'एक समय तुम्हारे ऊपर भी मेरा भयंकर लोभ था। गुरुदेव ने उसे अब शान्त कर दिया है। ब्रह्मचर्य ग्रहण किया हूँ; सदा के लिए उन सब कार्य से विमुख हो गया हूँ।' युवती ने कहा– "तो फिर मेरा यह भाव जिससे नष्ट हो, उसका उपाय बता दो, मैं अब ये यन्त्रणा सहन नहीं कर पा रही हूँ।" उसके क्लेश की बात सुनकर मेरे मन में बड़ा ही आधात लगा। मैं उसको सान्त्वना देकर कहा– 'तुम निश्चिन्त हो जाओ, अवश्य ही मैं तुम्हारी शान्ति के लिए व्यवस्था करूँगा।'

इस घटना के बाद, युवती सुविधा पाते ही मेरे कमरे में आकर बैठती थी; मैं भी धर्म-प्रसंग से विभिन्न दृष्टान्त देकर संयम का उपदेश देता; किन्तु अवसर पाते ही वह कातर भाव से अपनी असह्य ज्वाला की निवृत्ति का उपाय पूछने लगती। यद्यपि काम से उन्मत्त कामिनी के सुन्दर अंग-स्पर्श से देवदुर्लभ ब्रह्मचर्य के अतुलनीय अमृतफल इसके पहले ही मैं खो चुका था, तथापि वर्तमान में गुरु की कृपा से कामशून्य, अचंचल अवस्था से बहुत गर्वित होने से मैंने सोचा– सुना हूँ विशुद्ध निर्मल मन से, निर्विकार कामशून्य दशा में, कोई व्यक्ति प्रकृति के रतिमन्दिर में महाशक्ति की पूजा करे तो उससे कामिनी के काम भाव का उपशम होता है एवं उपासक की भी वास्तविक अवस्था की परीक्षा होती है। अच्छा, मैं वही क्यों न करूँ? युवती के अंग को स्पर्श करना ही तो मेरे लिए निषिद्ध है, किन्तु दूर से पूजा करने में फिर दोष क्या है? मैं इस प्रकार निश्चित करके उसको अपना संकल्प बतलाया; रमणी सन्तुष्ट होकर सहमत हो गई।

माघ महीने की कोई एक शुभ तिथि में, एक विशेष कार्य के उपलक्ष्य में पाड़े के सब लोग ही हमारे घर में निमन्त्रित होकर आए। इसी दिन इस कार्य के लिए प्रशस्त दिन समझकर, मैंने संकल्प के अनुसार शक्ति-पूजा का आयोजन किया। यज्ञ के लिए लकड़ी के साथ घी, विल्वपत्र, अतसी, जवा, अपराजिता, धूप, धूना और चन्दन आदि पूजा की सामग्री संग्रह करके दोपहर में युवती के पास पहुँचा; संकेत मात्र से अभिप्राय समझकर, हर्षित होकर वह मेरा अनुगमन करने लगी। हम लोग अविलम्ब एक निश्चित निर्जन स्थान पर पहुँचे। फिर आसन पर बैठकर कामिनी को कुछ दूर में ठहरने के लिए कहा। उसके बाद श्रीश्रीचण्डी के कुछ अंश का पाठ करके, स्थिर मन से गायत्री जप किया। तत्पश्चात् अग्नि प्रज्वलित करके,

एकाग्र मन से अपने इष्ट के रूप का उज्ज्वल अग्नि में ध्यान करने लगा। तब जवा, अपराजिता एवं विल्वपत्र घी में मिश्रित करके सावित्री-मन्त्र से कई बार अग्नि में आहुति देकर होम समाप्त किया। फिर ठाकुर के चरणों के उद्देश्य से हाथ जोड़कर प्रणाम करके व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगा– गुरुदेव! आज मैं विषम कार्य में प्रवृत्त हो रहा हूँ, अभी मैं हित-अहित से अनजान हूँ, मनोमुखी हूँ, मोहग्रस्त हूँ; तुम्हारा अभिप्राय क्या है, मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ; तुम्हारा आह्वान किये जाने पर उसे तुम समझ पाते हो, तुम्हें कुछ कहा जाए तो उसे तुम सुन लेते हो, इसीलिए ठाकुर, तुम्हें बुला रहा हूँ, तुम्हारे पैर पड़कर प्रार्थना कर रहा हूँ; इस अवस्था में जो कल्याणकर हो उसकी ही व्यवस्था करो। मैं प्रकृति-पूजा करूँगा, वह यदि तुम्हारी इच्छा के अनुरूप न हो तो अकस्मात् किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न कर मेरी इस चेष्टा में बाधा दो; पाँच मिनट तक मैं और भी प्रतीक्षा करूँगा। इस समय के भीतर कोई बाधा उत्पन्न न होने से, संकल्प के अनुसार शक्ति-पूजा में प्रवृत्त होऊँगा। इस प्रकार प्रार्थना करके एकाग्र मन से ठाकुर की पवित्र मूर्ति का ध्यान करने लगा। पाँच-सात मिनट निर्विघ्न व्यतीत हो गए। इस समय अधीर रमणी को तीन-चार हाथ दूर स्थिर होकर रहने के लिए कहा। कामिनी मेरे संकेत के अनुसार अत्यन्त प्रसन्न मन से तुरन्त निर्वस्त्र होकर खड़ी हो गई। तब देवी का प्रिय अतसी, अपराजिता, जवा, विल्वदल अँजलि में भरकर मस्तक में धारण किया। फिर चण्डी का 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता, शक्तिरूपेण संस्थिता, शान्तिरूपेण संस्थिता,' इत्यादि मन्त्र बारम्बार प्रणामपूर्वक उच्च स्वर में पढ़ने के साथ ही साथ रमणी के नखाग्र से लेकर केशाग्र तक प्रत्येक अंग-प्रत्यंग का स्थिर भाव से मनोयोगपूर्वक निरीक्षण करने लगा। बड़ी विचित्रता देखी– अकस्मात् उनके नाभि-स्तर से लेकर दोनों जाँघों के मध्य स्थान तक गोल आकृति की घनी काली छाया से बिल्कुल घिर गया है; मध्याह्न के समय सूर्य का अच्छा प्रकाश चारों ओर आलोकित है। हठात् गौर वर्ण की रमणी के अंग-विशेष में महाकाली का आविर्भाव हुआ। बहुत देर तक बारम्बार देखने पर भी, घने कृष्ण वर्ण के मध्य में चमकीली काली बिजली की झलक के अतिरिक्त और कुछ भी दिखा नहीं। असम्भव दृश्य देखकर मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठा। बारम्बार सिहरने लगा। मस्तक की पुष्पांजली भगवती के चरणों के उद्देश्य से अर्पण करके साष्टांग प्रणाम किया। अद्भुत है भगवान गुरुदेव की लीला! अद्भुत है भगवती योगमाया का खेल! क्या दिखाए! क्या देखा! स्तंभित होकर आसन पर बैठ गया। अवाक् होकर ताकता रहा। तब देखा– रमणी का गौर मुखमण्डल रक्तिम हो गया है, ओष्ठाधर कुछ कम्पित हो रहा है; तिरछी नयन से दृष्टि संचालनपूर्वक मनोहारिणी शोभा धारण की है। उसकी ओर देखकर मैं मुग्ध हो गया। उसके चंचल कटाक्ष

से, बिजली के वेग से मेरे भीतर कामोत्तेजना का संचार हुआ। विचलित अवस्था में संकट समझकर उसको शीघ्र हट जाने के लिए कहा। युवती ने मेरी बात को काटे बिना होमाग्नि को प्रणाम की। आशीर्वाद दिया– 'मेरा जो होने का है होने दो, ठाकुर तुम्हारा कल्याण करें।' शीघ्र ही वह प्रकृतिस्थ होकर वस्त्र धारण कर अपने घर चली गई। युवती के चले जाने के बाद मेरे भीतर अदम्य काम की उत्तेजना आरम्भ हुई। प्राणायाम, कुम्भक आदि से उत्तेजित भाव को शान्त करने में असफल हुआ। विपत्ति समझकर तुरन्त आसन से उठ गया।

इस दुःसाहसिक कार्य के साथ-साथ मेरी दुर्दशा का बढ़ना आरम्भ हो गया। भगवान गुरुदेव का अभिप्राय क्या है, जानता नहीं। युवती के काम-विकार का तो सम्पूर्ण विराम हो गया है, किन्तु दिनोदिन मैं कामाग्नि से दग्ध होने लगा। लगता है परम दयालु गुरुदेव ने अबला की अपूर्व सरलता का अवलोकन करके, उसकी ज्वाला को शान्त कर दिया एवं मेरे विषम उग्र अनुष्ठान में अतिरिक्त साहस और हठकारिता देखकर, काम से पीड़ित कामनी के कामभाव को मेरे भीतर संचारित कर दिया। मैं दिन-रात ही कामाग्नि से जल-भुनकर छटपटाने लगा। किस प्रकार से यह ज्वाला शान्त होगी, किस उपाय से इस विपद् से रक्षा होगी, सब समय केवल यही सोचने लगा। बाद में निश्चय किया– अस्थि-मज्जा जलाकर कठोर साधन करूँगा। उसी के अनुसार मैं परिमित आहार (एक मुट्ठी चावल) का एक तिहाई अंश कम कर दिया। भोजन बनाने में थोड़ा समय लगाकर बाकी समय निर्जन जंगल में जाकर साधना करने लगा। शयन एकदम नहीं करता; निद्रा एक प्रकार से त्याग दी। सामने धूनी जलाकर मन-प्राण से साधना करके रात बिताना आरम्भ कर दिया। निद्रा आने पर एक पैर पर खड़े होकर, या कभी चहल-कदमी करके नाम-जप करते-करते रात काटने लगता। बहुत नींद आने पर कुछ समय खड़े-खड़े ही सो लेता हूँ। दिन में तीन बार स्नान, खट्टे-मीठे-कड़वे आदि रसों का त्याग, लोक-संग का त्यागादि सब बड़ी कठोरतापूर्वक करने लगा। उससे मेरी अहैतुकी उत्तेजना का बहुत कुछ उपशम तो हुआ, किन्तु पहले जैसी अवस्था किसी भी तरह से फिर प्राप्त नहीं हुई। हठात्, बीती घटना की छवि अन्तःकरण में उदित होकर, मुझे अस्थिर करने लगी; मैं हताश हो गया। चारों ओर अन्धकार दिखने लगा; ठाकुर की कृपा के अतिरिक्त अब अपना उद्धार होना असम्भव समझकर, गुरुदेव को यही कुछ बातें लिखकर बतलाया–

परम पूज्यनीय श्रीश्री गोस्वामीजी के श्रीचरण कमलेषु,

श्रीवृन्दावन से आपके आदेशानुसार अयोध्या जाकर वहाँ दो महीने तक था। फिर घर आकर इतने दिन माँ की सेवा में बिताया। इतने समय तक बड़े आनन्द में ही था। आजकल की मेरी सब अवस्था आप देख ही रहे हैं,

इसलिए फिर लिखने से क्या लाभ है? इस समय मुझे क्या करना होगा, शीघ्र बतलाएँगे। अपने मन के ऊपर अब मेरा कोई अधिकार नहीं है। दया करके इस समय आप रक्षा करेंगे तो कीजिए। आप रक्षा नहीं करेंगे तो इस समय मेरा और कोई सहारा नहीं है। ब्रह्मचर्य आपके ही कहने से, आपकी ही दया और शक्ति के ऊपर निर्भर करके लिया हूँ। अब व्रत भंग हो जाने पर, मैं उत्तरदायी नहीं हूँ। पहले मेरी प्रकृति जानकर ही तो यह व्रत दिये हैं!

सेवक

श्रीकुलदा

पत्र लिखने के बाद ही, श्रीवृन्दावन से एकदम से चार पत्र मेरे पास आ गए। स्वामीजी हरिमोहन ने लिखा है– "भाई, गुरुजी तुम्हारा पत्र पढ़कर तुरन्त हाथ हिलाकर, **'माँ भैः! माँ भैः! माँ भैः!** उच्चस्वर में तीन बार बोले। कुछ देर चुप रहकर **'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्, कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।'** कहकर, तुम्हें अभयदान कर, पत्र लिखने के लिए बोले; तुम्हें जानकारी देने के लिए लिखा। निर्भय हो जाओ।"

योगजीवन ने लिखा है– "गोसाँईजी ने तुम्हें लिख देने के लिए कहा, **'यदि घर में रहने से असुविधा लगे तो समय-समय पर गेण्डारिया में जाकर रहो। घबराओ नहीं। हम लोग भी शीघ्र जा रहे हैं।"**

इस प्रकार श्रीधर और माता ठाकुरानी ने भी लिखा है– "तुम्हारे प्रति गोसाँईजी की असीम कृपा है। कोई चिन्ता की बात नहीं है। निर्भय हो जाओ। आनन्द करो।"

पता नहीं गुरुदेव ने इन लोगों के पत्र में कौन-सी अलौकिक शक्ति भेजी है। पढ़ने के समय प्रत्येक पत्र के प्रत्येक अक्षर से नया तेज, नया उत्साह आश्चर्यजनक रूप से मेरे हृदय में संचारित होने लगा। कुछ ही समय के भीतर मेरे मन की मलिनता दूर हो गई, मन में विमल आनन्द प्रवाहित होने लगा। उत्साह, उद्यम के साथ प्रफुल्लित मन से मैं फिर से भजनानन्द में दिन काटने लगा। गुरुदेव की असीम कृपा प्रत्यक्ष करके मैं चकित हो गया। फिर से अपने दयालु ठाकुर के श्रीचरणों का दर्शन कब पाऊँगा, बड़े आग्रह के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा।

माँ का आशीर्वाद एवं गोसाँईजी के चरण में मुझे अर्पण करना

बहुत दिनों के बाद, इस बार गंगा-स्नान का अत्यन्त दुर्लभ श्रेष्ठ (अर्द्धोदय) योग पड़ा है। पूर्व बंगाल से हजारों की संख्या में लोग गंगा-स्नान में जाने के लिए

प्रस्तुत हो रहे हैं; माताजी भी इस प्रशस्त योग में गंगा-स्नान करने के लिए व्याकुल हो गई हैं। गृहस्थी की बड़ी बाधाओं के बाद भी माताजी को गंगा-स्नान के लिए भेजने का निश्चय किया। माँ को भी निश्चिन्त रहने का भरोसा दिया। पश्चिम अंचल के समस्त तीर्थ का इस सुयोग में माँ को दर्शन कर लेने की सुविधा होगी। माताजी ने तीर्थ में जाने के कुछ दिन पूर्व मुझसे कहा– "मैं तो तीर्थ में चली, फिर कब देश में लौटूँगी उसका भी निश्चय नहीं है; अभी मेरा शरीर अच्छा स्वस्थ हो गया है, तेरा शरीर भी अब स्वस्थ है; पश्चिम से लौटकर इस बार तेरा विवाह कराऊँगी।" तब मैंने माँ को स्पष्ट रूप से ब्रह्मचर्य-व्रत का नियम एवं धर्म-जीवन यापन करने की अपनी आकांक्षा बतलाई। विवाह करने से मुझे फिर से रोग घेर सकता है, यह भी समझाकर कह दिया। माँ मेरी सभी बातें मनोयोगपूर्वक सुनकर बोलीं– "तेरे विवाह या नौकरी न करने से गृहस्थी में कुछ भी बाधा नहीं होगी। मेरे और लड़के भी तो संसारी हैं। तेरे सुख के लिए ही तुझे विवाह करने के लिए कहा, परिवार बसाने के लिए कहा। वह तुझे अच्छा नहीं लगता है तो आवश्यकता नहीं है। संसार में सुख नहीं है; सुख से अधिक ज्वाला ही है। धर्म लेकर यदि रह सकता है, तो वह अच्छा ही है! तेरी इच्छा है तो धर्म-कर्म लेकर ही रह।"

मैंने कहा– तुम सन्तुष्ट होकर मुझे अनुमति दो तो मैं गुरुदेव के पास रह सकता हूँ; उन्होंने मुझे तुम्हारी सेवा करने के लिए भेजते समय कहा था, **"जाकर माँ की सेवा करो। सेवा से सन्तुष्ट होकर वे अपने कर्म-बन्धन से तुम्हें मुक्ति दें तो मेरे पास आकर रह सकोगे।"**

माँ ने कहा– "अच्छा, तेरी सेवा से तो मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ; अपने कर्म से तुझे मैं मुक्ति देती हूँ। घर में रहने से धर्म-कर्म नहीं होता, गोसाँईजी के पास जाकर रह। उससे तेरा भी उपकार होगा, मेरा मन भी प्रसन्न रहेगा।"

मैंने कहा– ठाकुर ने मुझसे कहा था, **"सेवा द्वारा माँ को सन्तुष्ट करके अनुमति लाना होगा; अन्य किसी प्रकार कौशल करके अनुमति लाने से नहीं चलेगा।"** यदि तुम वास्तव में ही मेरी सेवा से सन्तुष्ट हो गई हो, तो फिर मेरे ठाकुर को तुम एक बार यह बतला दो। धर्म के लिए मुझे यदि तुम उनके चरणों में अर्पण कर दो तो मेरा परम कल्याण होगा और तुम्हें भी पुत्र-दान का बड़ा फल प्राप्त होगा।

माँ ने कहा– "मैं स्वयं तो धर्म-कर्म कुछ भी कर नहीं सकी। तुम लोग यदि कुछ कर सको तो उससे भी मेरा उपकार होगा। तेरी इस आकांक्षा में मैं बाधा क्यों दूँगी? सन्तुष्ट होकर ही तुझे गोसाँईजी के हाथ में देती हूँ।"

मैंने कहा– तो फिर तुम मेरे गुरुदेव को यह कहते एक पत्र लिख दो कि,

'अपने सबसे छोटे पुत्र को धर्म के उद्देश्य से आपके चरणों में अर्पण करती हूँ। जिससे उसको धर्म की प्राप्ति हो, आप वही कीजिए।'

माँ ने कहा– "अच्छा, कागज-कलम ले आ। अभी मेरे नाम से गोसाँईजी को पत्र लिख दे।"

माँ की बात सुनते ही मैंने कागज-कलम लाकर उनके सामने रख दिया। माँ, मँझली बहू के द्वारा निम्नलिखित पत्र लिखवाकर, श्रीवृन्दावन में ठाकुर के पास भिजवा दिया–

सविनय निवेदन,

मेरे सबसे छोटे पुत्र श्रीमान् कुलदा ने आपके आदेशानुसार घर आकर विभिन्न प्रकार से मेरी सेवा-सुश्रुषा करके मुझे बड़ा ही प्रसन्न किया है। मैं उसे अब अपने कर्मपाश में बद्ध करके रखना नहीं चाहती। धर्म के लिए मैं सन्तोषपूर्वक कुलदा को पूर्ण रूप से आपके हाथ में अर्पण करती हूँ। 'विवाहादि करके संसार करे' मैं उसकी अवस्था देखकर ऐसी इच्छा नहीं करती; अतः जिससे धर्म प्राप्त करके एवं आपके अधीन रहकर श्रीमान् कुलदा मन में सर्वदा शान्ति पा सके, चाहे जिस प्रकार से हो आप वह कर दीजिए। कुलदा यदि आनन्द से रहे, तभी मैं सुख से रहूँगी। उसे अपने साथ रखेंगे तो मेरा मन बिल्कुल सन्तुष्ट रहेगा। इति–

नि:– कुलदा की माँ

पत्र लिखवाकर माँ ने मुझसे कहा– 'मेरी दो बातों का स्मरण रखना– 1. मेरी मृत्यु के बाद तू एक ब्राह्मण को 'सीधा' दान करना। 2. और जब तक जीवित रहेगा, पेट भरकर भोजन करना।'

मैंने कहा– 'भविष्य में मेरे भाग्य में तो कितनी ही अवस्थाएँ घट सकती है; पेटभर खाना यदि न जुटे तो?'

माँ ने कहा– 'मैं आशीर्वाद देती हूँ, परमेश्वर तुझे आहार का कष्ट कभी नहीं होने देंगे। चिरकाल तू पेटभर भोजन पाएगा। पेट भरकर खाना; उससे अन्तरात्मा तृप्त रहेगी।

मैंने कहा– 'तुम्हारी मृत्यु के समय यदि मैं पास में न रहा, बहुत समय बाद मृत्यु का संवाद मिले, उस समय यदि मेरे पास रुपया या चावल-दाल न रहे तो फिर क्या करूँगा?'

माँ ने कहा– 'यदि ऐसा होता है, तो फिर जब मेरी मृत्यु का संवाद पाएगा तभी सुविधानुसार एक ब्राह्मण को 'सीधा' देने से ही काम हो जाएगा। पास में यदि कुछ न रहे, तो भिक्षा करके देना।'

माँ की बात सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मेरे परम कल्याण का पथ माताजी ने आज स्पष्ट कर दिया। संसार में आने का मेरा उद्देश्य माँ की कृपा से आज ही सार्थक हो गया। माँ की दया से ही मुझे गुरुदेव के विमल शान्तिपूर्ण दुर्लभ चरण-रज के साथ संलग्न होकर रहने का सुयोग प्राप्त हुआ। जय गुरुदेव! तुम्हारी कृपा समस्त शुभ और सौभाग्य का मूल है, इस बात को मैं जिससे कभी न भूल पाऊँ, ऐसा आशीर्वाद दीजिए।

ठाकुर ने श्रीवृन्दावन में एक दिन बात-ही-बात में मुझसे कहा था– **'तुम्हारी माँ अब वृद्ध हो गई हैं, फिर उनको अब घर में क्यों रखे हो? उनकी गृहस्थी तो पूर्ण हो गई है। अब तुम्हारी भाभियों की ही गृहस्थी है। वे लोग ही अब घर-बार देखें, संसार करें। माँ को अब तीर्थ में रखना, तुम्हारे भाइयों का कर्त्तव्य है। काशी या श्रीवृन्दावन में अब उनको वास करने देने में ही उनका यथार्थ उपकार है। श्रीवृन्दावन की अपेक्षा काशी ही उनके लिए अच्छा है। तुम लोगों का इस विषय में प्रयत्न करना कर्त्तव्य है।'**

उस समय ठाकुर की बात सुनकर, माँ को संसार के झमेले से हटाकर काशी में रखने की बहुत इच्छा हुई थी। बड़े भैया से भी इसके लिए विशेष रूप से अनुरोध किया था। इस बार सुयोग पाकर, बहुत-सी विघ्न-बाधाओं के बाद भी ठाकुर की बात का स्मरण करके माँ को तीर्थ भेज दिया। माँ स्वस्थ शरीर से पश्चिम की ओर रवाना हो गईं।

छोटे भैया की दीक्षा लेने की प्रवृत्ति

माताजी के पश्चिम में जाने के कुछ दिन बाद ही, छोटे भैया बी॰ए॰ की परीक्षा देकर घर में आ गए। दो-एक विषय में अच्छे से उत्तर नहीं लिख पाने के कारण, परीक्षा में सफलता के सम्बन्ध में शंकित होकर बहुत ही चिन्ता करने लगे। समय-समय पर कहने लगते– 'इस बार परीक्षा में पास नहीं होने से आत्महत्या करूँगा।' मैंने आवेश में आकर छोटे भैया से कहा– 'मैंने आपके पास होने के लिए गोसाँईजी से प्रार्थना की है। गोसाँईजी अवश्य ही आपको पास करा देंगे।' छोटे भैया ने कहा– "गोसाँईजी की वैसी कोई अलौकिक शक्ति है, मैं विश्वास नहीं करता। अच्छा यदि वैसा हो, तो फिर मैं एक 'प्रॉब्लम' (Problem) देता हूँ, गोसाँईजी उसे हल (Solve) करें, देखता हूँ!" मैं छोटे भैया की इस बात का कोई अच्छा उत्तर न दे सका। छोटे भैया गोसाँईजी के पास से दीक्षा ग्रहण करें, इस अभिप्राय से उनको 'योग साधन' पुस्तक पढ़ने के लिए दिया। उसे पढ़कर उन्होंने कहा– "ब्राह्म-धर्म के मत से जो मेल नहीं खाता, वह कुसंस्कार है। मैं वह सब कुछ

नहीं मानता। गोसाँईजी को धार्मिक मानता हूँ, किन्तु उनके शिष्यों को कुछ प्राप्त हुआ है, इसमें विश्वास नहीं करता।" मैं छोटे भैया की बात का प्रतिवाद न करके चुप रह गया। फिर बातचीत के बीच में सुविधा पाते ही गोसाँईजी की महिमा धीरे-धीरे बतलाकर, उनकी ओर छोटे भैया को आकृष्ट करने की चेष्टा करने लगा। गोसाँईजी की विभिन्न प्रकार की असाधारण अवस्था की बात सुनते-सुनते ही छोटे भैया की गोसाँईजी के प्रति कुछ श्रद्धा-भक्ति हो गई। तब मैं गोसाँईजी के पास से दीक्षा लेने के लिए उनसे बारम्बार अनुरोध करने लगा। दीक्षा का क्या प्रयोजन है, इस विषय में तीन-चार दिन तर्क-वितर्क, आलोचना के बाद, छोटे भैया ने कहा– "अच्छा, इस बार यदि मैं परीक्षा में पास होता हूँ, तो गोसाँईजी से दीक्षा लूँगा। मैं भी आग्रह के साथ उनके पास होने की खबर की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ दिन बाद खबर मिली, छोटे भैया पास हो गए हैं। तब छोटे भैया से दीक्षा ग्रहण करने के लिए कहा। उन्होंने कहा– "गोसाँईजी से दीक्षा लेने के लिए जब कहा हूँ तो अवश्य ही लूँगा; किन्तु इसी समय ही लेना होगा, ऐसी बात तो मैंने नहीं कही थी। अभी मेरा शरीर अस्वस्थ है, स्वस्थ हो जाए फिर लूँगा।" मैंने कहा– 'मैं तो कितना अस्वस्थ था वह तो सभी जानते हैं, गोसाँईजी की कृपा से अब पूर्ण रूप से निरोग हुआ हूँ। आप भी दीक्षा लेने से स्वस्थ हो जाएँगे।'

छोटे भैया ने कहा– "योग-साधना के जो सब नियम हैं, मैं उसका अभी प्रतिपालन नहीं कर पाऊँगा।"

मैंने कहा– 'आप जिसका प्रतिपालन नहीं कर पाएँगे, गोसाँईजी ऐसे कोई नियम का आदेश आपको कभी नहीं देंगे।'

अन्त में छोटे भैया ने स्वीकार किया, गोसाँईजी के गेण्डारिया में आते ही, उनके पास जाकर दीक्षा के लिए प्रार्थना करेंगे। मैं भी निश्चिन्त हुआ।

माता योगमाया देवी का तिरोधान, लालजी का देहत्याग

बड़े भैया के पत्र से अवगत हुआ– 'माता ठाकुरानी योगमाया देवी को श्रीवृन्दावनधाम की प्राप्ति हो गई है। बंगला सन् 1297, फाल्गुन 10, शनिवार (21 फरवरी, सन् 1891 ई०), माघी शुक्ला त्रयोदशी तिथि में, एक दिन के हैजे से ही उन्होंने देह त्याग दी। ठाकुर ने योगजीवन के द्वारा यह संवाद भैया को दिया।' अचानक यह खबर सुनकर मैं बहुत ही दुःखी हो गया। माता ठाकुरानी श्रीवृन्दावन से फिर लौटेंगी नहीं, उसी स्थान पर रह जाएँगी, ठाकुर और माता ठाकुरानी की बातों के अभिप्राय से कई बार इस प्रकार का सन्देह मन में उत्पन्न हुआ था। किस प्रकार, किस अवस्था में माता ठाकुरानी ने देह छोड़ दी, विस्तारपूर्वक जानने के लिए व्याकुल हो गया। इसी बीच फिर से संवाद मिला, जीवन्मुक्त जातिस्मर

गुरुभाई लाल बिहारी वसु ने, लगभग इसी समय में एक दिन स्वेच्छा से, हठात् गेण्डारिया में अन्धकार करके परमधाम में प्रस्थान किया। इन सब दुःसंवाद से एवं और भी दो-एक उद्वेगजनक कारणों से मेरा मन अस्थिर हो उठा। मैं श्रीवृन्दावन जाने का संकल्प करके, ठाकुर को अपना अभिप्राय बतलाया। ठाकुर ने योगजीवन के द्वारा उत्तर दिया– **'शीघ्र मैं गेण्डारिया जा रहा हूँ। सुविधा होने पर तुम अभी से ही वहाँ जाकर रह सकते हो।'** पत्र पाकर मैं शीघ्र ही गेण्डारिया जाने का निश्चय किया।

छोटे भैया की दीक्षा और अद्‌भुत घटना, विविध प्रश्न

{बंगला सन् 1297, चैत्र 14, द्वितीया, शुक्रवार। **(27 मार्च, सन् 1891 ई०)**}

रात्रि के अन्तिम प्रहर में, आसन पर बैठे-बैठे ही मेरा मन बहुत अस्थिर हो उठा। ठाकुर गेण्डारिया में आ गए हैं, बारम्बार मन में यह विचार आने लगा। आज ही ढाका जाने का निश्चय किया। बहुत दीनतापूर्वक विनती करके छोटे भैया को अपने साथ गेण्डारिया चलने के लिए कहा। वे इच्छा न रहने पर भी सहमत हो गए। एक महीने के लिए चावल, दाल, नमक, मिर्च, तेल, घी इत्यादि भोजन की समस्त सामग्री संग्रह करके रख लिया। फिर दिन के दस बजे ढाका के लिए रवाना हुआ। कुली के अभाव के कारण भारी गठरी का भार मुझे वहन करने न देकर, कमजोर होने के बाद भी उसे छोटे भैया अपने कन्धे पर उठा लिए। तीन-चार मील का रास्ता तय कर हम लोग सेराजदीघा की नाव पर सवार हुए। संध्या के पूर्व हम लोग गेण्डारिया पहुँचे। आश्रम के पश्चिम प्रान्त में, पण्डितजी के घर में पहुँचते ही सूचना मिली– ठाकुर कल ही आश्रम में आ गए हैं। दूर से देखा, बहुत भीड़भाड़ है। ठाकुर आम के पेड़ के नीचे बैठे हैं। पिछली दुष्कृति की बात बारम्बार मन में उदित होने लगी। इसीलिए इतनी भीड़ में, ठाकुर के पास जाने की मेरी इच्छा नहीं हुई। पण्डितजी की कुटिया में ही दुःखी मन से बैठा रहा। कुछ क्षण बाद ठाकुर आसन से उठकर दक्षिण की ओर जलाशय के पास मूत्रोत्सर्ग के लिए गए; तब सभी लोग उठकर आम के पेड़ के नीचे चले आए। यही उपयुक्त अवसर समझकर मैंने छोटे भैया को दीक्षा के लिए प्रार्थना करने हेतु, ठाकुर के पास भेजा। ठाकुर मुँह-हाथ धोकर जैसे ही अपने पैरों पर जल ढाल रहे थे, वैसे ही छोटे भैया 'अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया। चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।' मन्त्र अस्फुट भाव से पढ़ते-पढ़ते ठाकुर के चरणों में गिर पड़े। फिर हाथ जोड़कर केवल 'मेरे लिए क्या आज्ञा है' कहकर कंगाल की तरह खड़े रहे। ठाकुर छोटे भैया की ओर देखकर **"कहाँ ठहरे हो? कब आए?"** पूछने के

बाद, उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कहने लगे– **“अच्छा तुम जाओ, मैं अभी कुलदा से कह दूँगा।”** छोटे भैया ठाकुर को पुनः प्रणाम करके चले आए। मैं थोड़ी दूर में रहकर वृक्ष की आड़ से यह सब देखा। ठाकुर अवश्य ही उन पर कृपा करेंगे सोचकर शीघ्र ही छोटे भैया के पास पहुँचा एवं उनको भरोसा देने लगा।

तीन वर्ष के मध्य ठाकुर ने भैया को देखा नहीं। बहुत लोगों की उपस्थिति में किसी समय देखे भी हैं तो ‘मेरे भाई हैं’ ऐसा परिचय उन्हें मिला नहीं। ठाकुर छोटे भैया को देखते ही कैसे पहचान गए एवं मैं गेण्डारिया में आ गया हूँ वे कैसे जान गए, यह सब सोचकर छोटे भैया को बहुत ही आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर बाद ही, ठाकुर आम के पेड़ के नीचे खड़े होकर मुझे पुकारने लगे। मैं तुरन्त दौड़ते हुए आकर ठाकुर के चरणों में गिर पड़ा। ठाकुर मेरी ओर बहुत ही स्नेहपूर्वक देखते हुए बोले– **‘तुम्हारे भैया को कुंज के घर में लेकर आओ। अभी उनकी दीक्षा होगी।’**

ठाकुर के आदेशानुसार मैं उसी समय भैया को लेकर घोष महाशय के घर पहुँचा। छोटे भैया ठाकुर के पीछे-पीछे चलकर उस घर की पूर्व दिशा के कमरे में प्रवेश किये। बाहर के कोई भी लोग कमरे के निकट न आ पाए, इस बात का ध्यान रखने के लिए ठाकुर मुझसे कह गए। मैं कमरे के चारों ओर टहलने लगा। इसी बीच साधन-प्राप्त बहुत-से स्त्री और पुरुष लोग आकर कमरे के भीतर-बाहर, जहाँ-तहाँ प्रफुल्ल मन से बैठ गए। आज कितने दीक्षा-प्रार्थी लोग कमरे में प्रवेश किये हैं, कुछ भी पता नहीं। परिचित लोगों में कुंज बाबू के परिवार की कुछ स्त्रियाँ एवं बंकिम नामक एक कायस्थ बालक को छोटे भैया के साथ ठाकुर के सामने साधन लेने के लिए बैठे हुए देखा। धूप, धूना, चन्दन, गुग्गुलादि के सुगन्धित धूएँ से कमरा परिपूर्ण हो गया। ठाकुर ने दीक्षा कार्य आरम्भ किया। साधन की नियम-प्रणाली बतलाकर ठाकुर ने जब ध्रुव, प्रह्लाद, नारदादि सर्वश्रेष्ठ भगवत्-भक्तों के कलेजे की वस्तु महामन्त्र प्रदान किया, तब अद्भुत महाशक्ति की तरंग उठकर सभी को कम्पित कर दी। ठाकुर प्राणायाम की रीति दिखलाकर **‘जय गुरु!’ ‘जय गुरु!’** कहते-कहते चेतना-शून्य हो गए। तब कमरे के अन्दर-बाहर स्थित सभी लोगों के भीतर एक महान् क्रिया आरम्भ हो गई! गुरुभाई-बहिन लोग भाव में अभिभूत होकर, मूर्च्छित होकर गिरने लगे। चारों ओर अनेक लोगों के हँसने-रोने का विचित्र कोलाहल होने लगा। इस समय छोटे भैया चीत्कार करके ‘अखण्डमण्डलाकारं’ एवं ‘अज्ञान तिमिरान्धस्य’ दोनों मन्त्र का बारम्बार उच्चारण करते-करते ठाकुर के चरणों में लोटने लगे। ठाकुर भावावेश में गद्गद स्वर में कहने लगे– **“अहा! अहा!! अहा!!! क्या चमत्कार है! क्या चमत्कार है!! आज सत्ययुग की ध्वजा आकाश में लहरा रही है, आज से सत्ययुग**

आरम्भ हुआ, अहा देखो! कितने योगी, कितने ऋषि, कितने देवी-देवता आज सत्ययुग का निशान हाथ में लेकर नभोमण्डल में आनन्द से नृत्य कर रहे हैं; महापुरुषगण आज पृथ्वी के सब स्थानों पर नृत्य करते हुए घूम रहे हैं। ऐसा शुभ दिन फिर नहीं आता। पच्चीस बौद्ध योगी लामागुरु यहाँ पर उपस्थित हैं। संसार का कल्याण करने के लिए आज ये महापुरुष लोग पृथ्वी में अवतरण किये हैं। आज बहुत आनन्द का दिन है। धन्य है!' धन्य है!! धन्य है!!!"

ठाकुर भावावेश में यह सब बातें कह रहे थे, अचानक एक छोटी अवस्था की बालिका ठाकुर के सामने आकर घुटने के बल बैठ गई एवं भावविह्वल अवस्था में हाथ जोड़कर बारम्बार ठाकुर को प्रणाम करके गद्गद स्वर में तिब्बती भाषा में ठाकुर की स्तव-स्तुति करने लगी। फिर एक-एक बार सबकी ओर देखकर अँगुली से संकेत करके ठाकुर को दिखलाते-दिखलाते विभिन्न भाषा में असमान्य पराक्रम के साथ आधे घण्टे तक सबको चकित करने वाला व्याख्यान उसने दिया। उसकी भाषा अज्ञात होने पर यद्यपि उसका एक शब्द का अर्थ भी समझ में नहीं आया, तथापि तेजस्विनी के तेजःपूर्ण प्रत्येक शब्द के प्रभाव से भीतर एक अद्भुत शक्ति का प्रवाह चलने लगा। व्याख्यान की मुग्धकारी शक्ति से सभी प्रायः स्तम्भित होकर रह गए। इस प्रकार की अद्भुत घटना जीवन में और कभी देखी नहीं। सुना हूँ, बालिका कुंज बाबू की साली है, उसका नाम अबला है; उसने भी आज दीक्षा प्राप्त की है। जीवन में कभी उसने तिब्बती भाषा सुनी नहीं। किस प्रकार उसने अज्ञात भाषा में निरन्तर व्याख्यान दिया, जानने के लिए बड़ा कौतुहल हुआ।

दीक्षा के बाद, ठाकुर सभी को धीरे-धीरे शान्त एवं स्थिर करके कमरे से बाहर आ गए। मैं भी उनके पीछे-पीछे चला आया। भावावेश से विभोर अवस्था में गुरुभाई लोग झूमते-झूमते आश्रम में आकर एक-एक जन एक-एक स्थान पर बैठ गए। दो-चार लोगों के साथ ठाकुर बड़े कमरे में जाकर विश्राम करने लगे। मैं छोटे भैया को लेकर उसी कमरे के बरामदे में जाकर बैठ गया। कुंज घोष जी के दश-ग्यारह वर्षीय पुत्र फणिभूषण ने ठाकुर से पूछा– "दीक्षा के समय उन्होंने बुड़बुड़ाकर जो इतनी देर कहा, उनके भीतर क्या कोई स्पिरिट (प्रेतात्मा) प्रवेश की थी? क्या कहा, कुछ भी तो समझ में नहीं आया।"

फणि की बात सुनकर ठाकुर ने थोड़ा हँसकर कहा– **"जो सब बौद्ध योगी दीक्षा-स्थल पर उपस्थित थे, उनमें से ही एक ने उसके भीतर प्रवेश किया था। उन्होंने तिब्बती भाषा में कहा, इसलिए तुम लोग कुछ समझ नहीं पाए।"**

फणि ने कहा– 'आप तो वह भाषा जानते नहीं हैं। आपने कैसे समझा? अन्य

भाषा समझने के लिए क्या कोई साधन है?'

ठाकुर ने कहा– **"इस साधन से ही सब हो जाता है। केवल संकेत ज्ञात रहने से ही हो जाता है। इसका संकेत है, किसी की भाषा को समझने की इच्छा होने से सुषुम्ना में प्रवेश करके, चेतना-शक्ति में मन को स्थिर रखकर सुनना होता है। ऐसा करने से केवल मनुष्य की ही क्यों, समस्त जीव-जन्तु, पशु-पक्षी वृक्ष-लता की भाषा का अर्थ ज्ञात हो जाता है। जब वैसी अवस्था होगी, तो चेष्टा करने से ही समझ पाओगे।"**

ठाकुर ने इस प्रकार और भी अनेक तत्त्व की बातें कही। वे सब बातें स्पष्ट रूप से मेरी कुछ समझ में नहीं आई। बहुत देर तक चबूतरे के ऊपर बैठने के बाद बाहर चला आया, देखा कहीं दो-चार गुरुभाई लोग मिलकर आनन्द से भजन-गान कर रहे हैं, तो कहीं कोई-कोई स्थिर बैठकर नाम-जप के आनन्द में मग्न हैं; आश्रम आज लोगों से परिपूर्ण है। सभी प्रफुल्ल मन से वार्त्तालाप में, भजन-कीर्तन में, एकान्त-भजन में, नाना प्रकार की अवस्था में परमानन्द से समय काट रहे हैं; केवल मेरे ही भीतर विषम शुष्कता है। मैं अस्थिर होकर एक बार गुरुभाइयों के पास तो कभी ठाकुर के पास दौड़-भाग करने लगा। निरर्थक शुष्कता की ज्वाला से मेरा मन छटपटाने लगा। बहुत ही अस्थिर भाव से ठाकुर के पास जाकर कहा– 'सभी तो आपके हैं। आज सभी के मन में आनन्द प्रदान किया, केवल मुझे शुष्कता की ज्वाला में जलाकर क्यों मार रहे हो? यह ज्वाला कैसे दूर होगी?'

ठाकुर ने कहा– **"जिसके लिए जो कल्याणकर है भगवान उसको वही दे रहे हैं। बहुत भाग्य से मनुष्य के भीतर यह शुष्कता आती है। बैठकर स्थिरता के साथ नाम-जप करो। उसकी ओर लक्ष्य मत रखो; नाम-जप करते-करते ही वह चली जाएगी।"**

मैंने कहा– 'मेरा अन्तःकरण सरस कर दीजिए, बैठकर नाम-जप करता हूँ।

ठाकुर ने कहा– **"जिसके लिए जो कुपथ्य है, रोगी के चाहने से ही क्या डॉक्टर वह दे देता है? थोड़ा स्थिर हो, जाकर नाम-जप करो।"**

मैं फिर कुछ कहने का साहस नहीं कर पाया। बरामदे में छोटे भैया के पास जाकर नाम-जप करने लगा।

श्रीवृन्दावन के वृक्ष को काटने से ब्राह्मण का विनाश

मध्य रात्रि तक, ठाकुर गुरुभाइयों के समक्ष श्रीवृन्दावन की चर्चा आदि किये। भीतर-बाहर बहुत–से लोग बैठकर उसे सुने। महापुरुषगण कितने स्थानों पर कितने भाव से अवस्थान कर रहे हैं कहा नहीं जा सकता। श्रीवृन्दावन में रज

प्राप्ति की आकांक्षा से बड़े-बड़े सिद्ध महात्मा लोग वर्तमान समय में भी विभिन्न रूपों में वहाँ रहते हैं। इस विषय में ठाकुर एक घटना के उल्लेख करते हुए कहने लगे–

"श्रीवृन्दावन के किसी एक कुंज में एक सुन्दर वृक्ष था। कुंज के स्वामी ने उस वृक्ष को काटने के लिए पास के ही एक व्यक्ति को आदेश दिया। रात्रि में उन्होंने एक स्वप्न देखा, एक वैष्णव-वेशधारी ब्राह्मण ने उनसे आकर कहा– 'मैं तुम्हारे कुंज में बहुत समय से एक वृक्ष के रूप में हूँ। श्रीवृन्दावन की रज प्राप्त कर धन्य होने के मनोभाव से ही मैंने वृक्ष का रूप धारण किया है। तुम वृक्ष को काटकर मुझे कभी इस रज के स्पर्श से वंचित मत करना। तुम्हारे ऐसा करने से मुझे फिर से जन्म लेना होगा, इससे तुम्हारा भी मंगल नहीं होगा। स्वप्न को असत्य चिन्ता मानकर तुम मेरे इस अनुरोध को अस्वीकार मत करना। तुम्हारे विश्वास के लिए कल प्रातः वृक्ष के नीचे एक बार मैं खड़ा होऊँगा; इच्छा होने से ही मुझे देख सकोगे।' अगले दिन प्रातःकाल वृक्ष के नीचे पण्डितजी वास्तव में एक ब्राह्मण को देख सके, किन्तु उससे भी उनको विश्वास नहीं हुआ। स्वीकार नहीं किये। वृक्ष को कटवा दिये। जिन्होंने यह बातें सुनकर भी वृक्ष को काटा, वे हैजे से पीड़ित होकर मारे गए। पण्डितजी के स्त्री-पुत्र भी कुछ दिन के भीतर इस रोग से मारे गए। पण्डितजी की वृन्दावन में दर्शनशास्त्र के महा विद्वान् के रूप में विशेष ख्याति थी; किन्तु अब वे बुद्धि लोप होने से निर्बोध हुए बैठे हैं। पहले सभी उनका कितना सम्मान करते थे, किन्तु अब कोई उनको नहीं मानता।"

ठाकुर के मुख से इस प्रकार अनेक बातें सुनकर हम लोग शयन किये।

गोसाँईजी के मुख से श्रीवृन्दावन की कथा

{बंगला सन् 1297, चैत्र 15, शनिवार। **(28 मार्च, सन् 1891 ई॰)**}

प्रातःकाल शौचादि के बाद, स्नान-तर्पण समापन करके पूर्व दिशा के कमरे में ठाकुर के पास जाकर बैठ गया। रात्रि में हम लोग कहाँ थे, किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं हुई, ठाकुर यह पूछने लगे। पण्डित महाशय के रसोईघर में हम लोग रात्रि में रहने की व्यवस्था कर लिए हैं, ठाकुर को बतलाया। लोगों की भीड़ कम हो जाने के बाद आश्रम के दक्षिण ओर की कुटिया में हम लोगों को रहने के लिए ठाकुर ने कहा। छोटे भैया आश्रम में ही दोनों समय भोजन करेंगे और मैं अपराह्न में एक समय पूर्ववत् स्वपाक आहार करूँगा, यही व्यवस्था हुई। छोटे भैया की बात उठाकर ठाकुर ने कहा– **"आश्चर्य है! खूब सत्पात्र हैं, ऐसे बड़े ही**

दुर्लभ हैं। दीक्षा होते ही क्षणभर के भीतर उनकी गुरुनिष्ठा की दिशा खुल गई है। ऐसा बहुत देखा नहीं जाता।"

आज अपराह्न में नारायणगंज से वैष्णव धर्मावलम्बी एक ब्राह्मण, ठाकुर का दर्शन करने आए। उन्होंने ठाकुर से पूछा– 'प्रभु! श्रीवृन्दावन में क्या-क्या अलौकिक देखे? सुनने की इच्छा है।'

ठाकुर ने कहा– **"श्रीवृन्दावन अप्राकृत धाम है, वहाँ सभी अद्‌भुत है! श्रीवृन्दावन भूमि के वृक्ष-लता, पशु-पक्षी सभी अलग प्रकार के हैं। अन्य किसी स्थान के साथ उसकी तुलना ही नहीं होती। वहाँ के समस्त वृक्ष की ही शाखाएँ एवं पत्ते नीचे की ओर झुके हुए हैं। अनेक स्थानों में बड़े-बड़े सब वृक्ष, लता की तरह रज से संलग्न हो गए हैं। देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि साधु, वैष्णव महात्मा लोग ही व्रज-रज पाने के लिए वृक्ष के आकार में अवस्थान कर रहे हैं। वृक्ष में देवी-देवताओं की मूर्ति अपने-आप स्पष्ट रूप से प्रस्तुत हुई हैं। राधाकृष्ण, हरेकृष्ण इत्यादि नाम के अक्षर अपने-आप वृक्ष में उत्पन्न हो रहे हैं। कहीं 'रा' तो कहीं केवल 'कृ' ही बने हुए हैं। वृक्ष की शिरा-शिरा में इन सब स्वाभाविक अक्षरों को देखने से बड़ा ही आश्चर्य हुआ।"**

वैष्णव ने पूछा– 'प्रभु! यह सब क्या सभी लोग देख पाए या केवल आप ही देख पाए थे?

ठाकुर ने कहा– **"यह सब सभी लोगों ने देखा है। कालीदह के ऊपर बहुत प्राचीन एक केलिकदम्ब का वृक्ष है; उसकी शाखा-प्रशाखा में 'हरेकृष्ण', 'राधाकृष्ण' स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। जिसकी इच्छा हो, वहाँ देखकर आ सकते हैं। वन परिक्रमा के समय, एक दिन एक वन के किनारे पर बैठा था, सामने एक पेड़ का पत्ता पड़ा देखकर उसे उठा लिया। ध्यान से देखा, पत्ते के शिरा-शिरा में देवनागरी लिपि से 'राधाकृष्ण' नाम लिखा हुआ है। थोड़ा अनुसन्धान करने से ही पेड़ मिल गया, तब एक-एक करके भारत पण्डित जी, सतीश आदि जो लोग मेरे साथ में थे, सभी को बुलाकर दिखलाया; सभी एक ही प्रकार का नाम, वृक्ष के पत्ते-पत्ते में देख पाए। अनुसंधान करने से वहाँ पर इस प्रकार की अनेक अद्‌भुत घटनाएँ दिखलाई पड़ेंगी।"**

"अन्य एक दिन परिक्रमा के समय एक वन के निकट पहुँचा। सुना हूँ भगवान श्रीकृष्ण ने इस वन के कदम्ब के वृक्ष के पत्ते से 'दोना' बनाया था। अभी भी भगवान उसी लीला का दृष्टान्त समय-समय पर

भक्तों को दिखलाते हैं। हम लोग वन के भीतर प्रवेश करके ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हैरान हो गए। दोना किसी वृक्ष में ही देखने को नहीं मिला। बाद में साष्टांग प्रणाम करके, व्याकुल होकर सब लोग बैठे हैं, देखा सामने ही कदम के पेड़ का पत्ता दोना की तरह दिख रहा है। पास जाकर देखे, पेड़ के सभी पत्ते ही दोना के आकार में हैं। साथ में जो लोग थे सभी ने पेड़ के पत्ते-पत्ते में दोना देखा।"

"चरणपहाड़ी में जाकर देखा, पहाड़ की चट्टानों पर गाय-बछड़ों के एवं मनुष्य के असंख्य पद-चिह्न हैं। भगवान श्रीकृष्ण की जिस वंशी-ध्वनि से समस्त वृन्दावन मुग्ध होता था, उसी मधुर वंशी-ध्वनि से एक समय ये पहाड़ भी द्रवीभूत हुए थे। उसी समय गाय, बछड़े और ग्वाल बालकगण, जो लोग श्रीकृष्ण के साथ इस पहाड़ में थे, सभी के पद-चिह्न चट्टानों पर अंकित हो गए। आज भी वह सब चिह्न पहाड़ पर स्पष्ट विद्यमान हैं। देखने से ही स्पष्ट समझ आता कि वह सब मनुष्य के खोदे हुए नहीं हैं। वैसा मनुष्य के द्वारा कभी हो नहीं सकता।"

ये सब चर्चा होते-होते दिन लगभग बीत गया। शहर से दल के दल स्कूल के छात्र एवं बाबू लोग आ पहुँचे। उन लोगों के साथ ठाकुर ने विभिन्न विषयों में चर्चा आरम्भ की। मैं भी भोजन बनाने चला गया।

संध्या के समय आम के पेड़ के नीचे, कीर्तन आरम्भ हुआ। सुना था, संकीर्तन के समय प्रायः ही आश्रम का बूढ़े लाल कुत्ते को महाभाव होता है। आज उसे संकीर्तन के समय भावावेश में अचेत अवस्था में रहते देखकर अवाक् हो गया। 'हरेकृष्ण' नाम बहुत देर तक उसके कान में उच्च स्वर में सुनाने के बाद उसकी चेतना लौटी।

गोसाँईजी की जटा और दण्ड

{बंगला सन् 1297, चैत्र 16, रविवार। **(29 मार्च, सन् 1891 ई॰)**}

श्रीवृन्दावन में ठाकुर के मस्तक पर महादेवजी का जो शिरोवस्त्र सर्वदा बंधा रहता था, अब वह नहीं है। मस्तक के दायें-बायें एवं सामने आधे हॉथ तक की लम्बी सुन्दर तीन जटा देख रहा हूँ। पीछे की ओर वेणी के आकार में एक जटा पीठ पर लटक रही है; ब्रह्मतालु (शीर्ष) के चारों ओर के बालों के गुँथ जाने से ऊपर एक सुन्दर जटा है। सब मिलाकर ठाकुर के मस्तक पर पाँच जटाएँ बन गई हैं। सामने में बड़ी जटा का विस्तृत अग्रभाग, ठाकुर के नृत्य के समय, जब अद्भुत रूप से उनके कपाल के ऊपर उठ जाता है तब महादेव की जटा पर विराजित

सर्प का स्मरण होता है। फिर समाधि के समय यही जटा जब बायीं ओर झुककर, मस्तक के ऊपरी भाग में थोड़ा हिलकर थम जाती है तब देखने से श्रीकृष्ण की अपूर्व मयूर-शिखा का स्वभाव-सिद्ध संस्कार आकर मन में उदित हो उठता। स्वाभाविक जटा इतनी सुन्दर, इतनी मनोरम कहीं देखी नहीं। ठाकुर के शरीर का वर्ण बहुत स्वच्छ है, किन्तु हाथ-पैर और मुखमण्डल अपेक्षाकृत काला है। इसका कारण क्या है, पूछने पर ठाकुर ने कहा– **"श्रीवृन्दावन में ठण्ड बहुत अधिक पड़ती है। शरीर में सर्वदा 'अलखल्ला' पहने रहता था। जो स्थान खुला रहता था, ठण्ड लगने से वही काला हो गया है।"**

श्रीवृन्दावन में व्रजवासी

आज एक सभ्य व्यक्ति ने व्रजभूमि की विभिन्न प्रशंसा सुनकर कहा– 'श्रीवृन्दावन अप्राकृत ही हो और चाहे जो भी हो, किन्तु वहाँ के लोग बड़े भयानक हैं। पैसा-पैसा करके यात्रियों के ऊपर जो विषम अत्याचार करते हैं, वह सुनकर तो मन में भय होता है।' ठाकुर ने कहा– **"पैसे के लिए व्रजवासी लोग नर-हत्या भी कर देते हैं, ऐसी कुछ घटना सुनी गई है, किन्तु वे लोग वास्तव में व्रजवासी हैं या नहीं, कहना कठिन है। आगरा, दिल्ली, जयपुरादि विभिन्न स्थानों के लोग, तीन-चार पीढ़ी से व्रजभूमि में वास कर रहे हैं। वे लोग भी व्रजवासी कहकर अपना परिचय देते हैं। लोग भी उन्हें व्रजवासी ही समझते हैं। श्रीवृन्दावन के छोटे ग्रामों में घूमने से यथार्थ व्रजवासियों की सरलता, उदारता देखने से मुग्ध होना पड़ता है। जो सब व्रजवासी यात्री-यजमान लोगों को सताकर पैसा लेते हैं, वे लोग इस पैसे के द्वारा क्या करते हैं वह भी तो देखना होगा। वन परिक्रमा के समय हजारों-हजारों साधु, वैष्णव, यात्री लोगों का भरण-पोषण वे लोग ही तो करते हैं। पैसा वे लोग जमा नहीं करते हैं। तुम लोगों के हाथ से पैसा लेकर, तुम लोगों की ही सेवा करते हैं। पहले व्रजवासी लोग आहार के अभाव से, अर्थ के अभाव से कहीं भी घूमना-फिरना नहीं करते थे। यात्रियों के ऊपर उन लोगों का कोई उपद्रव नहीं था। उन लोगों की प्रचुर सम्पत्ति थी। हम लोगों के ही दुर्व्यवहार से इस समय उन लोगों की यह दुर्दशा है।"**

जिस लाला बाबू के नाम का गुण-गान करके आज समस्त बंगाल के लोग कृतार्थ हो रहे हैं, वे भी एक समय में किस प्रकार थे? बाद में, श्रीधाम वास के गुण से, भगवत् कृपा से कितनी दुर्लभ अवस्था प्राप्त करके जन-साधारण को स्तम्भित करके, श्रीवृन्दावनधाम को प्राप्त हुए है, ठाकुर वह कहने लगे–

"प्रथम अवस्था में लाला बाबू, अन्य अधिकांश जमींदार जैसे ही थे। व्रजवासी लोग सरल होते हैं। भाँग और लड्डू मिलने से वे लोग फिर कुछ नहीं चाहते। उससे ही उन लोगों को परम आनन्द होता हैं। लाला बाबू यह देखकर उन लोगों को खूब भाँग और लड्डू खिलाने लगे। धीरे-धीरे उन लोगों का सब कुछ (सम्पत्ति) लिखवा लिए। अभी भी अनके व्रजवासी लोग दुःख के साथ कहते हैं, लाला बाबू ने ही हम लोगों का सर्वनाश कर दिया है। बाद में भगवान की कृपा से जब लाला बाबू को वैराग्य हुआ, वे राधाकुण्ड के एक सिद्ध महात्मा के पास दीक्षाप्रार्थी हुए। सिद्ध बाबाजी ने लाला बाबू का बहुत तिरस्कार करते हुए कहा– 'जिनके साथ तुम्हारी बहुत शत्रुता है, केवल लंगोटी पहनकर कंगाल के वेश में जाकर उनके पैर पड़कर पहले क्षमा माँगो। फिर उनका आशीर्वाद लेकर आओ। फिर उन लोगों के घर से ही मुट्ठीभर भिक्षा करके भोजन करोगे।' लाला बाबू जब कंगाल वेश में केवल लंगाटी पहनकर, मथुरा के चौबे लोगों के द्वार-द्वार में पहुँचने लगे, तब सभी सोचे थे लाला बाबू को अब लौटकर नहीं आना होगा; किन्तु चौबे लोग उनकी अवस्था देखकर, आँखों के अश्रु को रोक न सके, कहने लगे– 'ओह! तुम्हारी यह अवस्था, भिक्षा करने हम लोगों के ही द्वार पर आए हो? तुमको क्या भिक्षा दें बोलो? हम लोगों का जो कुछ बचा है वह भी तुम ले लो।' चौबे लोग उन्हें हृदय से क्षमा करके आशीर्वाद दिये। फिर उनकी दीक्षा हुई। दीक्षा के बाद वे जिस प्रकार कठोर वैराग्य धारण किये वह और कहीं भी प्रायः देखा नहीं जाता। प्रतिदिन भिक्षा के समय लोग उनको पहचानकर अच्छा-अच्छा खाने को देते थे; इसलिए उन्होंने कितनी ही कठोरता की थी। आदर, यत्न, प्रशंसा उन्हें विष की तरह ज्वाला देती थी। लोग उन्हें पहचान न सके, इसलिए कितने प्रकार से ही पागल की तरह घूमते थे। लोग आदरपूर्वक भिक्षा देते है इसलिए वे भिक्षा करना छोड़ दिये। अन्त में घोड़े की लीद से जो दाना पाते, केवल वही खाकर किसी प्रकार जीवन यापन करते थे। एक दिन इसी प्रकार घोड़े की लीद से दाना चुन रहे थे, अचानक घोड़े ने एक भयंकर दुलत्ती मारी, उससे ही लाला बाबू की मृत्यु हो गई। इस प्रकार अद्‌भुत वैराग्यपूर्ण जीवन अब और देखा नहीं जाता।"

परिक्रमा के समय व्रजमाइयों का व्यवहार

{बंगला सन् 1297, चैत्र 17, सोमवार। **(30 मार्च, सन् 1891 ई०)**}

ठाकुर को श्रीवृन्दावन की बात करने में बड़ा ही आनन्द मिलता है। इतने

समय तक ठाकुर श्रीवृन्दावन में थे इसलिए दर्शकगण भी आकर ठाकुर से श्रीवृन्दावन की ही बातें पूछा करते हैं। आज एक सभ्य व्यक्ति ने ठाकुर से पूछा, 'व्रज परिक्रमा के समय असंख्य यात्रियों का आहारादि किस प्रकार चलता है? साथ-साथ क्या बाजार भी जाता है? या यात्री लोग वस्तुएँ साथ में लेकर चलते हैं? रास्ते में क्या चोर-डाकुओं का उपद्रव नहीं होता है? ठाकुर ने कहा— **"चोर-डाकुओं का उपद्रव तो सभी जगह है। परिक्रमा के समय वस्तुएँ साथ में ले जाना सम्भव नहीं होता है। साथ-साथ बाजार चलता है, फिर पथ में जगह-जगह अड्डे भी हैं। वहाँ सभी वस्तुएँ मिल जाती है। जो लोग गृहस्थ हैं, वे लोग अड्डे में जाकर प्रयोजन के अनुसार वस्तुएँ खरीदकर भोजनादि करते हैं और साधु लोग लूट-पाट करके भोजन संग्रह कर लेते हैं। परिक्रमा के समय गाँव-गाँव में व्रजमाई लोग दही, दूध आदि भर-भरकर एक कमरे में सजाकर रखते हैं। फिर अन्य कमरे में जाकर चुपचाप बैठे रहते हैं। साधु लोग जाकर इधर-उधर के कमरे में दूध-दही खोजकर बाहर कर लेते हैं। उसी समय व्रजमाई लोग, कृत्रिम क्रोध प्रकट करके हाथ में डण्डा लेकर भगाते रहते हैं। साधु लोग दूध, दही आदि लूट-पाटकर हाँडी तोड़कर भाग जाते। इससे व्रजमाइयों को बड़ा आनन्द होता है। वे लोग इस समय राखाल बालकों के साथ श्रीकृष्ण के दूध-दही चोरी की कथा का स्मरण करके उसी भाव में ही मुग्ध रहती हैं। चोरी करके या बलपूर्वक इस प्रकार लूट-पाट करके किसी के कुछ लेने से, व्रजमाइयों को जो आनन्द होता है, उसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। यह आनन्द अनुभव करने के लिए ही वे लोग प्रतिदिन कितना प्रयास करके दूध, दही, मख्खन आदि विविध खाने की अच्छी-अच्छी वस्तुएँ कमरे में जगह-जगह सजाकर रखती हैं। जो सब साधु लोग लूट-पाट नहीं करते, आसन पर ही बैठे रहते हैं, व्रजमाई लोग उनके पास जाकर वात्सल्य-भाव से कितनी गालियाँ देती हैं; हाथ पकड़कर खींचते हुए घर ले जाती हैं। साधु लोगों का गला पकड़कर कितने आदरपूर्वक घर में जो रहता है अपने हाथ से उनके मुख में डालकर खिलाती हैं। व्रजमाइयों के ये सब भाव देखने से विस्मित होना पड़ता है।**

व्रज के ग्रामों में जाने से देखा जाता है, अभी भी वही भाव ही विद्यमान है। संध्या होने पर व्रजमाई लोग व्याकुल मन से, रास्ते की ओर देखती हुई खड़ी रहती हैं। कब राखाल बालक लोग गायों को लेकर लौटेंगे, यही देखती हैं। जान-पहचान का ज्ञान नहीं है। घर की

अच्छी-अच्छी वस्तुएँ लाकर, कितने आदरपूर्वक राखाल बालकों को खिताती हैं। राखाल बालकों को आने में थोड़ा विलम्ब होने से, स्नेह में भरकर उन्हें कितना डाँट-डपट लगाती हैं। व्रज के ग्रामों में जाने से देखा जाता है, व्रजमाइयों के भीतर अभी भी पहले की तरह वही भाव, वही अवस्था सभी विद्यमान है।

ठाकुर के साथ इस बार माता ठाकुरानी, सतीश, श्रीधर आदि अनेक लोग ही व्रज की परिक्रमा किये हैं। ये लोग ही धन्य हैं। कुछ ही दिन वहाँ रहने के कारण वह मेरे भाग्य में नहीं था। ठाकुर ने सतीश को चौरासी कोस श्रीवृन्दावन परिक्रमा का विवरण विस्तारित रूप से लिखने के लिए कहा था। सतीश भी उसे लिखकर बीच-बीच में ठाकुर को वह पढ़कर सुनाते थे। ठाकुर की श्रीवृन्दावन परिक्रमा की समस्त घटनाएँ, इस पुस्तक में रहेगी ऐसी आशा करता हूँ। सतीश इस समय इस आश्रम में ही हैं।

जीवप्रकृति के साथ समप्राणता

{बंगला सन् 1297, चैत्र 18, मंगलवार। **(31 मार्च, सन् 1891 ई॰)**}

आहार के बाद साढ़े बारह बजे ठाकुर आम के पेड़ के नीचे जाकर अपने आसन पर बैठते हैं। प्रायः संध्या तक एक ही भाव में, आसन पर स्थिर होकर बैठे रहते हैं। मध्याह्न के समय, चैत्र की भीषण गर्मी में घर से कोई बाहर नहीं निकलता। ठाकुर भी इस समय गर्मी के कारण कभी-कभी पसीने से तर हो जाते हैं। ठाकुर के साथ-साथ मैं भी हाथ में पंखा लेकर आम के पेड़ के नीचे बैठता हूँ। ठाकुर के बायीं ओर, दो हाथ के अन्तर में रहकर उन्हें पंखे से हवा करने लगता हूँ। ठाकुर लगभग तीन घण्टे तक स्पंदनरहित अवस्था में, पूर्व दिशा में वृक्ष की ओर स्थिर दृष्टि से देखते रहते हैं; या कभी-कभी आँखें बन्द करके एक ही अवस्था में तीन घण्टे तक समाधिस्थ रहते हैं। प्रायः पाँच बजे वहाँ लोग आ जाते हैं। तब ठाकुर उन लोगों के साथ विभिन्न विषय में बातचीत करने लगते हैं। विभिन्न श्रेणी के लोगों के समागम से वह स्थान परिपूर्ण देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। आज मध्याह्न में, आम के पेड़ के नीचे अपने आसन पर बैठते ही, ठाकुर आँख बन्द करके ध्यान-मग्न हो गए। मैं पास में बैठकर हवा करने लगा। कुछ देर समाधिस्थ रहकर, लगभग तीन बजे ठाकुर अचानक चौंक उठे एवं व्यग्रतापूर्वक मुझसे कहा– **"देख तो! देख तो! उन लोगों को भगा दे, पक्षी लोग भय से चिल्ला रहे हैं।"** मैंने पूछा– पक्षी लोग कहाँ पर चिल्ला रहे हैं? किसको भगा दूँ? ठाकुर ने कहा– **"कुंज घोष के घर जाकर बड़े आम के पेड़ पर देख।"** केवल इतना कहकर ठाकुर ने आँखें बन्द कर लीं। मैं भी तुरन्त घोष महाशय के घर की

ओर दौड़ा। बड़े आम के पेड़ के पास जाकर देखा, कुछ दुष्ट बालक मैना के घोंसले को लक्ष्य करके पत्थर मार रहे हैं। तीन-चार मैना पेड़ की इस डाल से उस डाल पर उड़ रही हैं और चिल्ला रही हैं। मेरे धमकाने पर सब बालक भाग गए। पक्षी लोग स्थिर हो गए। मैं भी ठाकुर के पास आकर बैठ गया एवं हाथ में पंखा लेकर ठाकुर को हवा करने लगा। ठाकुर ने तुरन्त सिर उठाते हुए आँखें खोलकर मुझसे पूछा– **'क्या देखा?'** मैंने दुष्ट लड़कों के द्वारा मैना के बच्चों को गिराने की दुश्चेष्टा और मैना को भगाने के लिए पत्थर मारने की बात कहने लगा। ठाकुर जैसे कुछ जानते ही नहीं, इस प्रकार के भाव से, बड़े ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनने लगे। संध्या होने के बाद मैंने पूछा– 'मैं तो यहीं बैठा था, पक्षियों के शब्द तो कुछ भी सुन नहीं पाया। आप मग्न अवस्था में रहकर इतने दूर से पक्षियों का चिल्लाना कैसे सुन लिए?'

ठाकुर ने कहा– **'निकट और दूर क्या करेगा? जहाँ भी, जिस अवस्था में रहा जाए, किसी विपत्ति में पड़कर कोई पुकारे तो मन में आकर वह पुकार आघात करती है।'**

इस समय ठाकुर के आसन के पास से होकर एक पंक्ति में चींटे तीव्र गति से आवागमन कर रहे थे। ठाकुर थोड़ा उनकी ओर देखकर, सिर झुकाते हुए कान लगाकर मुस्कुराते-मुस्कुराते मानो उनकी बातें सुनने लगे एवं उनकी बातें जैसे समझ रहे हैं इस प्रकार के भाव से बीच-बीच में सिर हिलाना आरम्भ कर दिये। तब मैंने पूछा– 'क्या चींटे लोग भी बात करते हैं? क्या उनकी बातें सुनी जा सकती है?'

ठाकुर ने कहा– **'चींटे ही क्यों, वृक्ष-लता भी बात करते हैं। मन थोड़ा स्थिर होने से, कीट-पतंग, वृक्ष-लता सभी की ही बातें सुनी जा सकती है।'**

ठाकुर मुझे और कोई प्रश्न न करने देकर तुरन्त बोले– **'उसे छोड़ो, तुम चींटों के लिए कुछ खाना लाओ ना। आटा और चीनी मिलाकर देने से चींटे लोग खाकर बहुत प्रसन्न होते हैं।'** आटा न मिलने से मैं केवल चीनी लाकर ठाकुर के कथन के अनुसार उनके दाहिनी ओर डाल दिया। ठाकुर तभी आँख बन्द करके ध्यानस्थ हो गए। बीच-बीच में बार आँख खोलकर चींटों की ओर देखने लगे। कुछ क्षण बाद बोले– **'इन लोगों के भीतर भी कुछ अव्यवस्थित नहीं होता। समस्त कार्यों की ही सुन्दर श्रृंखला है। इनके बीच भी चालक हैं, शासन है, विचार और दण्ड की व्यवस्था है। मनुष्य बड़ा समझकर किसका अभिमान करता है? चींटों की तरह बालू में से इस प्रकार चीनी अलग कर ले तो देखूँ?'**

श्रीवृन्दावन में 'राधाश्याम' पक्षी

मध्याह्न की गर्मी में सभी अपने-अपने कमरे में विश्राम करते हैं; चारों ओर सन्नाटा रहता है। गेण्डारिया के सब पक्षी छाँव में वृक्ष की डाल पर बैठकर तरह-तरह से चहकते हैं, सुनकर बड़ा ही आनन्द मिलता है। आज अपराह्न में ठाकुर ने श्रीवृन्दावन के एक तरह के अद्‌भुत पक्षी की बात कही। सुनकर अवाक् हो गया। श्रीवृन्दावन में इतने दिन था, किन्तु किसी विषय में भी कुछ अनुसन्धान करके देखा नहीं। इसलिए अब पश्चात्ताप होता है। ठाकुर आज श्यामा-पक्षी की बात कहने लगे– **"किसी एक ऋतु में उत्तरी देश की ओर से एक विशेष प्रकार के पक्षी दल के दल श्रीवृन्दावन में आते हैं। इन पक्षियों के चहकने से 'राधाश्याम', 'राधाश्याम' शब्द निकलता है। इतने स्पष्ट स्वर में 'राधाश्याम', 'राधाश्याम' कहकर चहकते हैं कि सुनकर मन में अन्य कुछ विकल्प नहीं आता। श्रीवृन्दावन में इन पक्षियों को 'राधाश्याम' पक्षी कहते हैं। एक बार एक ब्रजवासी ने कौशल से दो पक्षियों को पकड़ा। उनमें से एक तो उड़ गया और दूसरे को उसने एक पिंजरे में बन्द करके रख लिया। उसको दाना दिया, किन्तु पक्षी पिंजरे में बन्द होने से खाना त्याग दिया। फिर वह चहकना भी बन्द कर दिया, उसकी प्रफुल्लता भी नहीं रही। अगले दिन प्रातःकाल दल के दल 'राधाश्याम' पक्षी ब्रजवासी के कुंज में आकर 'राधाश्याम', 'राधाश्याम' कहकर चहकने लगे। तब पाड़े के सब ब्रजवासी लोग आकर उस ब्रजवासी को धमकाकर कहा, शीघ्र तुम उस पक्षी को छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जाएगा! देख, दल के सभी पक्षी आकर उसके लिए 'राधाश्याम', 'राधाश्याम' कहकर चहक रहे हैं। तब ब्रजवासी ने पक्षी को छोड़ दिया।"**

श्रीवृन्दावन में हिंसा

श्रीवृन्दावन में कौवा कहीं भी देखा नहीं। मांसाहारी लोग के नहीं रहने से ही वहाँ कौवे नहीं हैं। मांस खाना आरम्भ होने से ही कौवे आकर पहुँच जाएँगे। व्रज-भूमि की तरह हिंसारहित स्थान और कहीं देखा नहीं जाता। इसलिए वन के पशु-पक्षी को भी मनुष्य के शरीर को स्पर्श करते हुए चलने में कोई भय नहीं रहता। जिसके भीतर हिंसा हैं, उसके पास ही भय रहता है।

सुना हूँ, श्रीवृन्दावन में हिंसा नहीं है इसलिए समस्त व्रजभूमि में पशु-पक्षी का शिकार करना सरकार की ओर ही से निषिद्ध है। कुछ समय हुए, एक पुलिस

अधिकारी सरकार के हुकुम की अवेहलना करके, शिकार करने गए थे। शिकार की चेष्टा करते ही वे मारे गए। ठाकुर ने घटना को इस प्रकार से बतलाया—

"पुलिस साहब घोड़े में चढ़कर यमुना पार करके 'बेलबाग' की ओर एक जंगल में पहुँचे। बहुतों ने मना किया था, किसी की बात ही नहीं माने। वन में एक सुअर को देखकर बन्दूक चलाए; सुअर तुरन्त दो उछाल में साहब के निकट आ गया। घोड़ा साहब को पटकते हुए तुरन्त भाग गया। सुअर ने उसी समय साहब को चीरकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया।"

होम की व्यवस्था

{बंगला सन् 1297, चैत्र 19, बुधवार। **(1 अप्रेल, सन् 1891 ई॰)**}

मध्याह्न में, आम के पेड़ के नीचे ठाकुर के पास बैठा हूँ। ठाकुर ध्यानस्थ थे, अचानक सिर ऊपर करके मेरी ओर देखकर कहा—

"वैशाख महीने के प्रथम दिन से तीन महीने के लिए तुम्हें होम करना होगा।"

मैंने कहा— 'होम किस प्रकार से करूँगा, मैं तो कुछ जानता नहीं।'

ठाकुर ने कहा— **"बेल, वट, पीपल या गूलर की लकड़ी के द्वारा होम करना। एक सौ आठ बेल के त्रिदल पत्ते लेकर, घी में मिलाकर यह ••• मन्त्र पढ़कर एक सौ आठ बार आहुति देना। प्रतिदिन प्रातः स्नान के बाद गायत्री जप करके, तीन महीने इस प्रकार होम करना। चार बजे के बाद स्वपाक आहार करना ही तुम्हारे लिए अच्छा है।"**

मैंने कहा— 'देश में देखा हूँ, होम करने के पहले ब्राह्मण लोग यन्त्रादि आँककर कुण्ड बना लेते हैं और होम के स्थान में बालू फैला देते हैं, क्या मुझे भी ऐसा ही करना होगा?'

ठाकुर ने कहा— **"नहीं, नहीं, कुछ नहीं। आसन के सामने इस प्रकार एक कुण्ड बनाकर, प्रतिदिन उसी में होम करना।"**

यह कहकर ठाकुर ने हाथ से संकेत द्वारा गोलाकार कुण्ड दिखला दिये। वैशाख महीना आरम्भ होने में अधिक दिन बाकी नहीं हैं। होम के लिए गाय का शुद्ध घी और लकड़ी के संग्रह में यहाँ पर विशेष असुविधा देखकर, कल ही घर जाने का निश्चय किया।

फकीर अलीजान, प्राणायाम का प्रकार-भेद

{बंगला सन् 1297, चैत्र 23, रविवार। **(5 मार्च, सन् 1891 ई॰)**}

केवल एक दिन घर में रुककर, होम के लिए गूलर की लकड़ी और गाय का घी लेकर गेण्डारिया आ गया। देखा, विभिन्न ओर से बहुत-से स्त्री-पुरुष, गुरुभाई-बहिन लोग आकर आश्रम को परिपूर्ण कर दिये हैं। ठाकुर के गेण्डारिया आने के बाद से, विभिन्न श्रेणी के साधु-संन्यासी, ईसाई एवं मुसलमान फकीर लोग भी आश्रम में आना आरम्भ कर दिये हैं। सेना के पेंशनधारी कप्तान काम्बेल साहब, बहुत समय से उदासीन भाव से साधन-भजन में जीवन यापन कर रहे हैं। मध्याह्न में निर्जन पाते ही वे ठाकुर के पास आकर कुछ समय बिताकर जाते हैं। लोगों को देखते ही तुरन्त चले जाते हैं। समुद्र बाबा नामक एक साधु कुछ-एक दिन से आश्रम में आकर ठहरे हैं। पण्डित महाशय के कमरे के बरामदे में वे रहते हैं। बाबाजी को कुछ साधन-भजन करते देखा नहीं। क्या करते हैं, वह भी पता नहीं; किन्तु उनकी बातचीत, आचार-व्यवहार बहुत ही मधुर लगता है। ठाकुर के प्रति वे बड़ी श्रद्धा रखते हैं। वे ठाकुर का जो दर्शन पाए हैं, इसी से ही अपने को कृतार्थ समझते हैं।

एक मुसलमान फकीर प्रायः ही ठाकुर के पास आते हैं। यहाँ पर ठाकुर के आने के पहले, वे गेण्डारिया के घने जंगल में रहते थे। फकीर साहब का नाम अलीजान है। वे जो बातें कहते हैं, एक का भी अर्थ मेरी समझ में नहीं आता। कई बार चाल-चलन भी प्रायः पागलों की तरह लगता है; किन्तु वे किसी को भी कोई हानि पहुँचाने वाला कार्य नहीं करते। लड़के-बूढ़े सभी अलीजान को लेकर बहुत आनन्द करते हैं। अलीजान भी सबके साथ खूब हिल-मिलकर रहते हैं। ठाकुर के पास बैठा हूँ, दिन के दो बजे वृद्ध अलीजान गन्ने के तीन-चार टुकड़े लेकर आ गए। ठाकुर के सामने आसन जमाकर बड़े स्थिर होकर बैठ गए। फिर गन्ने का एक बड़ा टुकड़ा लेकर जैसे ही खाने के लिए उसे दाँत से लगाए, अचानक ऊँचा उछलकर तुरन्त खड़े हो गए एवं चारों ओर चंचल दृष्टि से देखकर, गन्ने के टुकड़े को दायें-बायें प्रबल वेग से धुमाने लगे और चीत्कार करके कहने लगे– "हाय, अल्लाह! साले लोग कड़वा कर दिये। खाने नहीं दिये। अरे सालों, लाट साहब तो आया है। लाट साहब का बड़ा अच्छा जहाज भी आया है, इससे क्या हुआ? लाट के पास काम का हिसाब देगा नहीं? साले लोग ऐसे ही चले जाओगे? वह नहीं कर सकता, परखने आया है! निकल! निकल! निकल!" यह कहकर फकीर साहब गोसाँईजी के सामने कई बार गन्ने का टुकड़ा घुमाकर उछल-कूद करते-करते दौड़कर दक्षिण की ओर गेण्डारिया के जंगल में चले गए।

ठाकुर इस समय धीरे-धीरे मुस्कुराते हुए फकीर साहब की ओर देखते रहे।

फकीर साहब चले गए। बाद में ठाकुर से पूछा– 'अलीजान ने इस प्रकार क्यों किया? गन्ने को हवा में घूमाकर किसे मारा? अलीजान के गन्ने को किसने कड़वा कर दिया? ये सब क्या अलीजान का केवल पागलपन है?'

ठाकुर ने मेरी बात सुनकर कहा– **'अलीजान को तुम लोग पागल समझते हो? वे पागल नहीं हैं, वे बहुत अच्छे फकीर हैं। सिद्ध पुरुष हैं। लोगों के सामने पालग का ढोंग न करने से आजकल अपनी रक्षा कर पाना बड़ा कठिन है। अलीजान जो कहते हैं, जो कुछ करते हैं, उसके साथ अपनी क्रिया का योग बनाए रखते हैं। वे निरर्थक कुछ नहीं करते। भूत-प्रेतादि की दृष्टि से भी खाद्य वस्तु नष्ट होती है, जूठी होती है। अलीजान वह सब स्पष्ट देख पाते हैं। गन्ने को हवा में घूमाकर जो उछल-कूद किये, वह एक प्रकार का प्राणायाम है। अलीजान बहुत प्रकार के प्राणायाम जानते हैं। फकीर साहब को साधारण मत समझो।'**

मैंने कहा– 'उछल-कूद करके, हाथ-पैर हिलाकर विभिन्न प्रकार के शब्द से, मुँह बनाकर भयानक चीत्कार करके भी क्या प्राणायाम होता है? उनको श्वास-प्रश्वास की कोई क्रिया करते भी तो देखा नहीं। प्राणायाम कितने प्रकार के हैं?'

ठाकुर ने कहा– **"मनुष्य के शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं। इन सब नाड़ियों में प्राण-वायु चलाने के लिए जो सब प्रक्रिया है, उसको ही प्राणायाम कहते हैं। प्रत्येक नाड़ी में एक-एक प्रकार की प्रक्रिया से प्राण-वायु संचारित होती है। इसलिए प्राणायाम भी बहत्तर हजार प्रकार के हैं। तरह-तरह की शारीरिक मुद्राओं से एवं विभिन्न प्रकार के शब्द करने से भी प्राणायाम होता है। किस प्रकार की चेष्टा से, कौन-सी नाड़ी में, किस प्रकार के प्राणायाम की क्रिया होती है, लोग इसे नहीं जानते। आजकल ये सब प्राणायाम देखे नहीं जाते; प्रायः सभी लुप्त हो गए हैं। फकीरों के मध्य अभी भी ये सब प्राणायाम कुछ-कुछ हैं, यह देखा जाता है।"**

इन सब बातों के चलते-चलते अनेक लोग उपस्थित हो गए। ठाकुर भी उन लोगों के साथ बातचीत करने लगे। मैं भोजन बनाने के लिए चला आया। प्रतिदिन ही संध्या-कीर्तन में बड़ा आनन्द उत्सव चल रहा है।

प्रतिष्ठा से बचने हेतु सिद्ध महात्माओं का लोक-विरुद्ध व्यवहार

{बंगला सन् 1297, चैत्र 24, सोमवार। **(6 मार्च, सन् 1891 ई०)**}

आज ठाकुर ने कहा– **"धर्मार्थियों का प्रतिष्ठा और प्रशंसा से जितना**

अनिष्ट होता है उतना और किसी से नहीं होता। इसलिए कितने अच्छे-अच्छे साधु-महात्मा लोग कितने प्रकार के उपाय का अवलम्बन करते हैं, लोगों की दृष्टि से बचने के लिए अपने को गुप्त रखते हैं, कह नहीं सकते। एक बार श्रीवृन्दावन के एक सभ्य व्यक्ति ने एक दिन साधु-वैष्णव लोगों का भण्डारा करवाया; मैं भी दर्शन करने गया था। जाकर देखा, टिकिट दिखाकर वैष्णव बाबाजी लोग कुंज के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। एक कंगाल भीतर जाना चाह रहा था, किन्तु टिकिट नहीं था, इसलिए द्वारपाल ने उनको गाली देकर हटा दिया। पुनः भीतर जाने के लिए उस व्यक्ति के प्रयास करते ही द्वारपाल ने उनको बार-बार खूब धक्का मारा। वे प्रहार से किसी प्रकार का क्लेश प्रकट किये बिना, प्रसन्नतापूर्वक उस स्थान से चले गए। देखकर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। मैं उनके लिए कुछ भोजन माँगकर उनके पीछे-पीछे गया। वे यमुना के किनारे-किनारे बहुत दूर जाकर वन के भीतर एक निर्जन स्थान में पहुँचे। वहाँ एक गुफा के भीतर प्रवेश किये। मैं उनके पास पहुँचकर, उन्हें प्रणाम करके खाना दिया। बाद में पूछा– 'लोकालय से इतनी दूर रहकर आपको भिक्षादि की किस प्रकार सुविधा होती है; शहर में भी तो किसी स्थान पर रह सकते हैं।' बाबाजी ने कहा, छिपकर रहना ही सुरक्षित है। केवल एक बार प्रातःकाल उठकर यमुना में स्नान करता हूँ और रात्रि में एक बार 'मधुकरी' (भिक्षा) करके रोटी का टुकड़ा लेकर आता हूँ। उसे ही यमुना के जल में भिगाकर खा लेता हूँ; इससे कोई परेशानी नहीं है। अच्छे से हूँ। बाबाजी परम वैष्णव हैं। इस प्रकार बहुत दिनों से निर्जन गुफा में रहकर दिन बिता रहे हैं। श्रीवृन्दावन में इस तरह गुप्त रूप से और भी कितने महात्मा हैं, उन सब की फिर कौन खबर लेता है?"

ठाकुर फिर कहने लगे– **"इस बार हरिद्वार में एक साधु को देखा। वे बहुत अच्छे साधु हैं, चारों ओर ऐसा प्रचार होने से, सर्वदा उनके पास लोगों की भीड़ होने लगी। लोगों से बचने के लिए उन्होंने साधु का वेश त्याग दिया। लोग तब भी उनका साथ छोड़े नहीं। तब साधु 'कोट-पैंट' पहनकर, छड़ी हाथ में लेकर बाबू के वेश में रास्ते-रास्ते घूमने लगे। इससे भी लोग भूले नहीं। सर्वदा उनके साथ-साथ लोगों की भीड़ चलने लगी। तब साधु अस्थिर हो गए। लोगों का साथ त्याग करने हेतु थोड़ा बदनाम होने के लिए, एक व्यापारी की दुकान में जाकर वे चावल चोरी किये। पुलिस ने उनको पकड़कर चोरी का चालान दिया। अदालत के निर्णय से उनको तीन रुपया जुर्माना हुआ। तब व्यापारी ने**

उनको पहचान लिया; उन्होंने स्वयं तीन रुपये जुर्माना देकर, उनको छुड़वाया और हाथ जोड़कर, पैर पड़कर उनसे क्षमा माँगी। कई बार महात्मा लोग प्रतिष्ठा, प्रशंसा से बचने के लिए इस प्रकार के कार्य करते हैं, जिससे चारों ओर उनकी अपकीर्ति का प्रचार हो।"

अयोध्या के हरिदास बाबाजी एक सिद्ध महात्मा हैं। वे लोकालय त्याग कर बहुत दूर जंगल के भीतर एक पुरानी कुटिया में रहते थे और अपने मन के अनुसार आनन्दपूर्वक भजन करते थे। वहाँ पर भी अनेक लोग जाकर उनके दर्शन करते थे एवं वर्तमान समस्याओं की बातें बताकर उसके प्रतिकार के लिए बाबाजी से प्रार्थना करते। बाबाजी उनको अनेक प्रकार से समझाकर कहते कि वे यह सब कुछ भी नहीं जानते। बाबाजी ने तब उनको अश्लील गालियाँ देकर भगाना आरम्भ किया। कोई उनके पास न आए, इसलिए वे लोगों को डर दिखाने के लिए समय-समय पर पत्थर फेंककर भी मारते थे।"

"श्रीवृन्दावन जाते समय कुछ दिन काशी में रुका था। उस समय पूर्णानन्द स्वामी के साथ भेंट करने की बहुत इच्छा हुई। तीन दिन उनके दर्शन करने के लिए जाने का प्रयास किया। तीनों दिन लोगों ने बाधा देते हुए कहा– 'महाशय, आप वहाँ जाएँगे, उस शराबी के पास! नहीं वो नहीं होगा। काशी में सभी उनको शराबी और बदमाश के नाम से जानते हैं।' किन्तु ये सब बातें सुनकर भी मुझ पर उसका प्रभाव नहीं पड़ा। जाने के लिए मन अस्थिर हो उठा। मैं किसी की बात न सुनकर, स्वामीजी के आश्रम में गया। स्वामीजी को प्रणाम करते ही वे थोड़ा हँसकर बोले– 'क्यों शराबी के पास आया है, बैठ।' तब वे एक महिला को अभद्र भाषा में, गाली देते हुए कहने लगे– 'अरे तेरे को शिष्या बनाने से क्या होगा, तेरी तो उमर अधिक हो गई है। मैं सुन्दर युवती मिलने से शिष्या बनाता हूँ। तेरे को दीक्षा नहीं दूँगा, तू चली जा। दूसरे के पास जाकर दीक्षा ले।' महिला बहुत आग्रह करने लगी। तब स्वामीजी बोले, 'अच्छा, मेरे कहे अनुसार चल सकेगी? शपथ ले, तो फिर शिष्या बना लूँगा।' महिला ने कहा– 'आपकी दया होने से क्यों नहीं कर सकूँगी बाबा?' तब स्वामीजी बोले– 'अच्छा, तब फिर थोड़ी प्रतीक्षा कर, मैं पी लेता हूँ। फिर तेरे को इस बड़े रास्ते में ले जाकर बेइज्जत करूँगा। उसके बाद तेरी दीक्षा होगी।' तब स्वामीजी ने तेज स्वर में अपनी भैरवी से कहा– 'अरी, एक बोतल कारण ले आ, देखूँ। और देख, हरामजादी भाग न पाए, बाहर दरवाजे में सिटकिनी लगा दे।"

“तब महिला डरकर भाग खड़ी हुई। स्वामीजी ने मन्त्र से शुद्ध करके कारण-पान किया। बाद में मुझसे कहा– ‘अरे देख, इस शराबी के पास क्यों आया है? मैं तो शराबी हूँ, शराब पीता हूँ, कितनी बदमाशी करता हूँ, वह तू जानता है? मेरा घर भी शान्तिपुर में था, बचपन में नाटक-मण्डली में मेहतरानी बनता था, किस प्रकार नाच-नाचकर गाना गाता था सुनेगा?’ यह कहकर वे नाच-नाचकर गाने लगे– ‘रात में देखा था एक सपना, काले एक पुरुष रतन का।’ यह गाना गाते-गाते स्वामीजी का बाह्य-ज्ञान लुप्त हो गया। देखते-देखते महादेव के रूप में आ गए। स्वामीजी काले थे, किन्तु वे बिल्कुल गोरे हो गए। मस्तक पर अद्भुत ज्योतिर्मय अर्धचन्द्र प्रकाशित हो गया। जो लोग वहाँ पर थे, देखकर सभी अवाक् हो गए। चेतना लौटने के बाद स्वामीजी ने कहा– ‘देख, शराब पीकर, शराब की बोतल बगल में लेकर, रास्ते में पड़े रहता हूँ, इतना पागलपन करता हूँ, जो लोग पास आते हैं उन्हें कितने अश्लील भाव से गालियाँ देता हूँ, कभी-कभी खड्ग लेकर उनको काटने के लिए जाता हूँ, किन्तु लोग तब भी यहाँ पर आते हैं, मुझे विरक्त करते हैं, सिद्ध पुरुष कहते हैं, कितनी बातें मुझसे पूछने आते हैं। मैं थोड़ा स्थिर होकर रह नहीं पाता हूँ। इन लोगों के उत्पात से बचने के लिए मैं अब क्या करूँ बोलो, देखूँ?”

“योगजीवन को देखकर उन्होंने कहा– ‘इसकी इतनी उमर हो गई है, अभी भी जनेऊ हुआ नहीं, अच्छा मैं इसको जनेऊ देता हूँ।’ बाद में स्वामीजी ने ही यथारीति योगजीवन को एक दिन जनेऊ दे दिये। स्वामीजी के यहाँ हम सभी को बहुत आनन्द मिला।”

अयाचित दान अग्राह्य करने से दुर्दशा

इस बार श्रीवृन्दावन में अर्धकुम्भ मेले के समय, प्रायः छह-सात हजार वैष्णव साधु, यमुना-तट के मैदान में सम्मिलित हुए थे। ठाकुर प्रतिदिन प्रातः उन सब लोगों की परिक्रमा करते और दर्शन करके आते थे। एक दिन वे साधु दर्शन के लिए निकले, जमात के बीच एक साधु को खुले बदन में ठण्ड से कष्ट पाते देखकर, उनको एक कम्बल देते हुए प्रणाम करके बोले– ‘आपके पास कुछ भी गरम कपड़े नहीं हैं, दया करके यह कम्बल ग्रहण कीजिए।’ कम्बल साधारण प्रकार का था। साधु को पसन्द नहीं आया। उन्होंने उसकी ओर देखकर, हाथ में लेकर विरक्ति के साथ फेंक दिया एवं खूब क्रोध प्रकट करते हुए कहा– ‘अरे, ऐसा कम्बल मैं नहीं लेता, इसको फेंक दो।’ ठाकुर ने हाथ जोड़कर अनुनय-विनय करके साधु

से बहुत कहा, किन्तु साधु ने उसे किसी भी प्रकार से ग्रहण नहीं किया। अन्त में ठाकुर उसे अन्य एक साधु को देकर आ गए। कुछ दिन बाद बहुत वर्षा आरम्भ हो गई। मैदान में सब साधु लोग विषम ठण्ड से जब व्याकुल हो गए, तब वह साधु ठण्ड से अस्थिर होकर दौड़-भाग आरम्भ कर दिये। कहीं कुछ न पाकर, ठण्ड से छुटकारा पाने के लिए धूनी जलाने के अभिप्राय से लकड़ी संग्रह करने में व्यस्त हो गए। अन्य कहीं भी लकड़ी न पाकर लकड़ी-टाल से कुछ कुन्दे चोरी किये। लकड़ीवाला उनको चोर कहकर पुलिस के हाथ में दे दिया। साधु को जेल हो गई। ठाकुर ने इस विषय में उल्लेख करके कहा–

"अभाव होने पर अयाचित रूप से जो आए, उसे ही भगवान का दान समझकर श्रद्धा के साथ ग्रहण करना होता है। भगवान का दान अग्राह्य करने से बहुत अनर्थ होता है। वे साधु जब कम्बल फेंक दिये तभी मैं समझ गया था, ये बहुत झंझट में पड़ गए। अभिमान करके श्रद्धा का दान अग्राह्य करने से अपराध होता है।"

अनाहारी साधु के प्रति ठाकुर का आकस्मिक खिंचाव

एक दिन अपराह्न में, ठाकुर अचानक आसन से उठकर शीघ्रता से यमुना के किनारे मैदान पर जा पहुँचे। साधुओं के बीच से होकर निरन्तर द्रुत गति से चलने लगे। प्रतिदिन रास्ते के दोनों ओर जिन सब साधु वैष्णव लोगों का आग्रहपूर्वक दर्शन करके प्रणाम करते थे, फिर इस दिन उन सब साधुओं के स्थान में थोड़ी देर भी नहीं ठहरे। उन लोगों की ओर देखने का भी अवसर नहीं मिला। दायें-बायें में साधुओं को छोड़कर, जमात के बीच से होकर दूसरे क्षेत्र में एक कंगाल साधु के पास पहुँचे। तब साधु प्रसन्नतापूर्वक प्रफुल्ल मन से कुछ लोगों के साथ धर्म-प्रसंग कर रहे थे। ठाकुर थोड़ी देर उनके पास बैठकर, अवसर देखकर साधु से पूछे– **"महाराज, आज आप प्रसाद पाए हैं?"** साधु ने कहा 'नहीं'। ठाकुर ने पूछा, **"कल पाए थे?"** साधु ने कहा 'नहीं'। क्रमशः पूछने पर पता चला, सात दिन से वे कुछ ग्रहण नहीं किये हैं। लगातार सात दिन आहार किये बिना, अक्लान्त शरीर से प्रसन्नतापूर्वक बातचीत करते देखकर, ठाकुर अवाक् हो गए। सुना हूँ, प्राण जाने पर भी वे किसी के पास से कुछ नहीं माँगते। ऐसे साधु बहुत ही विरल हैं। ठाकुर कुंज में आकर तुरन्त उनके लिए भोजन भिजवा दिये।

जमात के साधु की आय और विपत्ति की कथा

ठाकुर की बात पूरी होने के बाद पूछा– 'हजार-हजार साधु कुम्भ-मेले में एकत्र होते हैं, उनका भोजन आदि प्रतिदिन किस प्रकार चलता है?'

उन्होंने फिर कहा– **"सब सम्प्रदाय के साधुओं के भी महन्त हैं। साधु लोग अपने-अपने सम्प्रदाय के महन्तों का आश्रय लेते हैं। प्रत्येक महन्त के जमात में तीन-चार हजार साधु रहते हैं। राजा, महाराजा और बड़े-बड़े धनी लोग उन सब महन्तों की आर्थिक रूप से बहुत सहायता करते हैं। ऊँट, घोड़ा और हाथी के ऊपर बोझा लादकर महन्त लोग उन लोगों का भण्डार लेकर चलते हैं। साधु लोगों को आहारादि का कोई कष्ट ही नहीं होता। जो लोग किसी महन्त का आश्रय नहीं लेते, स्वतन्त्र रूप से रहते हैं, वे लोग भी भिक्षा करके काम चला लेते हैं।"**

पूछा– 'महन्त लोगों के साथ जब इतना अधिक माल एवं अर्थादि रहता है, तो जमात के भीतर चोर-डकैतों का उपद्रव नहीं रहता?'

ठाकुर ने कहा– **"वह बहुत रहता है। इस बार श्रीवृन्दावन के अर्ध कुम्भ-मेले में एक महन्त के ऊपर बहुत अत्याचार हुआ। उनके पास तीन-चार सौ रुपये थे। हरिद्वार जाने पर इन रुपयों का प्रयोजन होगा, इसलिए वे संग्रह करके रखे थे। साधु के साथ दश-बारह लोग थे। एक साधु, जो महन्त की सेवा करते थे, केवल वे ही इन रुपयों की बात जानते थे। एक दिन वे रोटी के साथ अधिक मात्रा में भांग, धतूरा मिलाकर महन्त को खिला दिये; महन्त खाकर नशे से अचेत हो गए। तब वे साधु रुपये लेकर भाग गए। महन्त दो दिन तक नशे से अचेत थे। फिर अन्य साधु लोग यह जानकारी पाकर उनको घी गरम करके खिलाए। उससे महन्त का नशा दूर हुआ। बाद में पता चला, महन्त के सेवक ने ही अर्थ के लोभ में यह काण्ड किया था।"**

सोना बनाने वाला साधु

मैंने फिर पूछा– 'साधु लोगों के बीच क्या ऐसे लोग भी हैं जो इच्छा होने से ही, सहज में सोना बना सकते है? ऐसा सुना हूँ।

ठाकुर ने कहा– **हाँ! इस बार श्रीवृन्दावन में एक संन्यासी आए थे, वे सोना बनाते थे। उनके लिए उनके गुरु का हुक्म था, प्रतिदिन कम-से-कम बारह साधुओं की सेवा करनी होगी। अर्थ का अभाव होने पर, बारह जनों की सेवा के लिए जो प्रयोजन होगा, उसी परिमाण में वे सोना प्रस्तुत कर सकते हैं। अन्य किसी प्रयोजन के या स्वयं के लिए उनके गुरु ने इसे निषिद्ध किया था। श्रीवृन्दावन में आकर, वे आवश्यकतानुसार सोना बनाना आरम्भ किये। क्रमशः उसका प्रचार होने**

से, पुलिस के लोगों को सन्देह होने पर एक दिन मथुरा से पुलिस साहेब ने आकर साधु को पकड़ लिया। साधु ने सोना बनाकर साहेब को दिखलाया। साहेब ने उस सोने को परखकर देखा, पता चला बहुत उत्कृष्ट सोना है। फिर साहेब ने सोना बनाने की प्रणाली सिखाने के लिए साधु को बहुत रुपयों को लोभ दिया। दस हजार रुपये देना चाहा। साधु ने कहा– 'मैं दस मिनट के भीतर दस हजार रुपये का सोना सहज में बना सकता हूँ। मुझे अर्थ का लोभ क्यों दिखा रहे हो? अपनी यह विद्या मैं किसी को नहीं सिखाऊँगा।' फिर साहेब उनको बहुत डराने लगे। साधु ने कहा– 'मैं कृत्रिम माल देकर ठगकर रुपये लेता हूँ कि नहीं, आप केवल यही जाँच कर सकते हैं। अपनी विद्या मैं दूसरे को सिखाऊँगा नहीं। इस विषय में मैं किसी के जिद करने पर बाध्य नहीं होऊँगा।'

एक दिन वे साधु दाऊजी के मन्दिर में आकर मुझसे भेंट करके बोले– 'मेरे गुरुजी ने मुझे हुक्म किया हैं कि मेरे आदेश का पालन करके चल सके– ऐसे एक साधु को यह विद्या सिखा देना; किन्तु मुझे ऐसा साधु मिल नहीं रहा है। फिर किसी एक व्यक्ति को यह सिखलाना ही होगा। आपकी यदि इच्छा हो तो आपको यह विद्या सिखा देता हूँ।' यह कहकर उन्होंने मेरे सामने ही थोड़ा ताँबा लेकर उसमें एक पत्ते का रस मिलाकर आग में डाल दिया। पाँच-सात मिनट बाद उसे आग से निकाल लिया। देखा, बहुत अच्छा सोना हो गया। मैंने साधु से कहा– 'ये सब सीखने का मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। यह विद्या आप जानते है इसलिए देखिए कितने लोग सब समय आपके पीछे लगे रहते हैं। ये सब उत्पात लेने का क्या प्रयोजन है? एक मुट्ठी अन्न जब भगवान देंगे ही, तब और सबकी क्या आवश्यकता है?' सोना बनाने की अनेक प्रणाली है; किन्तु ये साधु जिस प्रणाली से बनाए हैं, वह बहुत सहज है। इस प्रकार सहज में सोना बनाना और कहीं देखा नहीं। ये सब सीखना नहीं चाहिए। ये सब सीखने से मनुष्य को विभिन्न प्रकार के उत्पात में, आपद-विपद् में पड़ना होता है। धर्म-कर्म सब चूल्हे में जाता है। भगवान की कृपा जो लोग प्राप्त करना चाहते हैं, ये सब उनके लिए भयंकर प्रलोभन है।

सुखमय वृन्दावन

{बंगला सन् 1297, चैत्र 25, मंगलवार। **(7 अप्रेल, सन् 1891 ई॰)**}

श्रीवृन्दावन के वैष्णव महात्माओं की बात ठाकुर अनेक समय कहा करते हैं। ठाकुर के श्रीवृन्दावन त्याग के कुछ समय पूर्व, एक वैष्णव ने अद्भुत रूप से देह

त्याग किया था। ठाकुर ने आज उनकी बात कही– **"एक दिन एक महोत्सव के उपलक्ष्य में, वृन्दावन परिक्रमा करते हुए हजारों-हजारों वैष्णव संकीर्तन करने लगे। गाने का पद था– 'सुखमय वृन्दावन यमुनापुलिन'। एक वैष्णव महात्मा, संकीर्तन में महाभाव के आवेश में अचेत हो गए। तीन दिन, तीन रात्रि वे एक ही अवस्था में रहे। बाबाजी की मग्न अवस्था के समय मैं बार-बार उनकी छाती पर कान लगाकर सुना, भीतर से 'सुखमय वृन्दावन' का स्पष्ट शब्द उठ रहा है। बाबाजी इसी अवस्था में देह-त्याग दिये।**

अज्ञात साधु के पास आश्रय ग्रहण करने से विपत्ति

इस बार हरिद्वार पूर्ण कुम्भ-मेले में, पहाड़ों से अनेक महात्मा और महापुरुष लोग आएँगे। भारतवर्ष के सभी स्थानों से साधु-संन्यासी लोग इस महामेले में आएँगे, इस प्रकार की बात पहले से ही सर्वत्र प्रचारित हो गई थी। बंगाल के भी शिष्ट लोग, स्कूल के लड़के लोग भी हरिद्वार के इस मेले में पहुँचे। सिद्ध महात्माओं से दीक्षा लेना ही उन लोगों का उद्देश्य था। स्कूल के तीन-चार लड़के, किसी संन्यासी के बाहरी वेश एवं साधुता के आडम्बर से धोखे में आकर, उनको महापुरुष समझकर, उनसे दीक्षा ले लिए। संन्यासी ने उन लोगों को दीक्षा देते ही वस्त्रादि त्याग करवाकर कौपीन पहनने को दिया एवं सेवा कार्य में लगा लिया। सभ्य घर के लड़के नियमित बर्तन माँजना, लकड़ी काटना, पानी भरना इत्यादि परिश्रम के कार्य में नियुक्त रहकर, अस्वस्थ हो गए। संन्यासी उन लोगों को पीड़ित अवस्था में देखकर भी अतिरिक्त परिश्रम से छुट्टी नहीं दिये, बल्कि और भी यातना देने लगे। उनका निर्दिष्ट कार्य ठीक तरह से न करने पर, निर्दय रूप से पीटने का डर दिखाना आरम्भ कर दिये। ये लड़के जिससे भाग न जाए, इसलिए अपने अन्य संन्यासी शिष्यों को उनके ऊपर दृष्टि रखने के लिए कहा। उन लोगों के कामकाज में किसी प्रकार की शिथिलता देखने से वे लोग भी उन पर अत्याचार करते थे। अस्वस्थ शरीर से दिन-रात लगातार परिश्रम का कार्य करने का सामर्थ्य नहीं है, भागने का भी उपाय नहीं है। इसलिए वे लड़के भयंकर विपत्ति में पड़ गए। एक दिन ठाकुर अचानक उस संन्यासी के पास पहुँच गए। उन लड़कों ने ठाकुर को देखकर, रोते-रोते अपनी समस्त अवस्था उनसे कही। ठाकुर ने उन लोगों को छोड़ देने के लिए संन्यासी से अनुरोध किया। संन्यासी ने ठाकुर का अनुरोध स्वीकार नहीं किया। विभिन्न प्रकार से गाली-गलौज करके बड़ा साहस दिखाते हुए कहा– 'ये लोग हमारे चेले हैं, मन्त्र लिए हैं, हम कभी इन लोगों को नहीं छोड़ेंगे।' ठाकुर चले आए एवं अविलम्ब पुलिस की सहायता से उन लोगों को छुटकारा

दिलवाए। स्कूल के और भी कुछ लड़के इस प्रकार धर्म-धर्म करके अज्ञात कुलशील संन्यासी के पास दीक्षा लेने के लिए पहुँचे थे। ठाकुर ने विपत्ति में पड़े लड़कों की बात बतलाकर, उन लोगों का संकल्प सुरक्षित नहीं है कहा एवं शीघ्र ही उन्हें घर वापस भेज दिया।

अनधिकारी के गेरुआ धारण करने से अपराध

और एक दिन कुछ बंगाली सभ्य लोग, गेरुआ वस्त्र धारण करके संन्यासी के वेश में ठाकुर के पास पहुँचे। ठाकुर को उन लोगों का परिचय मिलने से पता चला, वे लोग संन्यास या अन्य कोई आश्रम ग्रहण नहीं किये हैं। अभी तक उन लोगों की दीक्षा भी नहीं हुई है। तब ठाकुर ने उन लोगों से पूछा– **'आप लोग गेरुआ वस्त्र क्यों पहने है? गेरुआ धारण करने की एक उपयोगिता है। बिना अधिकार के अपनी इच्छा से गेरुआ वस्त्र ग्रहण किये है, ऐसे अनेक साधु हैं जो लोग इस बात का पता चलने पर उसे सहन नहीं कर पाएँगे। चिमटा लेकर भयानक रूप से प्रहार करके यह वस्त्र छीन लेंगे।'**

उन शिष्ट लोगों ने कहा– 'महाशय, सादा कपड़ा दो-चार दिन में मैला हो जाता है। हाथ में पैसे नहीं हैं कि धुलवा लें, इसलिए यह रंग कर लिए हैं।

ठाकुर उन लोगों की बात सुनकर बारह आना पैसे उनके हाथ में देकर कहा– **'कपड़े धुलवाने के लिए ये कुछ पैसे लीजिए। आज ही जाकर गेरुआ त्याग दीजिए।'**

उन सज्जनों ने वही किया। शीघ्र गेरुआ त्यागकर सादे वस्त्र पहन लिए।

कुम्भ-मेले का प्रसंग

कुम्भ-मेले में असंख्य साधु-संन्यासी लोगों के सम्मिलन की बात सुनकर ठाकुर से पूछा– 'गंगा-स्नान करने के लिए ही क्या साधु-महात्मा लोग कुम्भ-मेले में आते हैं?'

ठाकुर ने कहा– **"कुम्भ-योग में तीर्थ-स्थान में गंगा-स्नान का विशेष महात्म्य है, वह तो है ही; किन्तु, कुम्भ-मेले का उद्देश्य केवल स्नान नहीं है। यह मेला तीन वर्ष के अन्तर में एक-एक स्थान पर होता रहता है। हरिद्वार, प्रयाग, नासिक एवं उज्जैन में कुम्भ-मेला होता है। कुम्भ-योग का अवलम्बन करके विभिन्न स्थानों के, यहाँ तक कि पर्वतवासी महापुरुष लोग भी निर्दिष्ट स्थान पर एकत्र होते हैं। कुम्भ-योग, साधु-महात्माओं के एक निर्दिष्ट स्थान पर सम्मिलित होने का समय मात्र है। सभी**

साधु-संन्यासी यह जानते हैं। साधु लोगों के साधन-भजन में जो सब संकट, संशय आते हैं, इस समय महात्मा-महापुरुषों के समक्ष उसे व्यक्त करके उसकी मीमांसा कर लेते हैं।"

"साधन-भजन के विषय में जिसका जो प्रयोजन है, उस विषय में शिक्षा प्राप्त करना ही इस मेले का मुख्य उद्देश्य है। इस समय में महापुरुष लोग एकत्र होकर साधु-संन्यासियों का एवं देश के साधारण लोगों का धर्म-भाव कैसा है, उसकी खबर लेते हैं। जिस प्रकार की व्यवस्था करने से, जिस देश के लोगों का कल्याण होता है, वही स्थिर करके एक-एक देश का भार एक-एक महात्मा के ऊपर अर्पण करके प्रस्थान करते हैं। इस बार चौरासी कोस व्रजमण्डल का भार महापुरुष लोग रामदास काठियाबाबा को दिये हैं। महापुरुषों ने उनको 'व्रजविदेही महन्त' की उपाधि दी है। इस प्रकार भारतवर्ष के सब देशों के लिए ही इसी प्रकार एक-एक महात्मा निर्दिष्ट हैं। देश में धर्म की संस्थापना के लिए उन लोगों को समस्त भार ग्रहण करना होता है। सर्वदा कठोर परिश्रम करना होता है।"

फिर मैंने तुरन्त पूछा, 'समस्त बंगाल देश के धर्म संस्थापन का भार किसके ऊपर है?' ठाकुर से यह प्रश्न करने के साथ-ही-साथ वे आँख बन्द करके ध्यानस्थ हो गए। इसलिए मुझे चुप रहना पड़ा।

शान्तिसुधा के मातृ-शोक में ठाकुर की सान्त्वना

{बंगला सन् 1297, चैत्र 26, बुधवार। **(8 अप्रेल, सन् 1891 ई॰)**}

श्रीवृन्दावन में माता ठाकुरानी के देहत्याग के विषय में विस्तारित रूप से जानने का एक विशेष आग्रह उत्पन्न हुआ; किन्तु ठाकुर से पूछने का सुयोग नहीं मिल रहा है, साहस भी नहीं हो रहा है। माता ठाकुरानी के देहत्याग के बाद, ठाकुर गेण्डारिया आश्रम में शान्तिसुधा आदि को जानकारी देने के लिए अपने हाथ से जो पत्र लिखे थे उसमें विस्तारित रूप से कुछ नहीं लिखा है। वह पत्र पाकर आश्रम में रहने वाले गुरुभाई-बहिन लोग तब यह घटना शान्तिसुधा को बतलाने का साहस नहीं कर पाए। पत्र को गुप्त ही रख लिए। ठाकुर स्वयं आकर शान्तिसुधा को यह खबर देंगे, उसी समय वे सान्त्वना भी दे सकेंगे, यही सोचकर गुरुभाई-बहिन लोग सब चुप रह गए थे। ठाकुर ने इस प्रकार लिखा है—

"ॐहरिः"

कल्याणवरेषु,

गत 10 फाल्गुन (शनिवार, 21 फरवरी, सन्

1891 ई॰) को संध्या के समय श्रीश्रीमती योगमाया देवी ने अपनी चिरप्रार्थनीय सिद्ध देह प्राप्त की हैं। अविश्वासी लोग इसको मृत्यु कहते हैं; किन्तु एक बार विश्वास की दृष्टि से देखो, योगमाया आज सखीवृन्द के मध्य कितनी अपूर्व शोभा, सौन्दर्य प्राप्त की हैं। श्रीमती शान्तिसुधा से कहना जिससे वह शोक न करे। यह शोक की घटना नहीं है, अत्यन्त आनन्द की बात है। बहुत भाग्य से मनुष्य को यह प्राप्त होता है।

आगामी 21 फाल्गुन (बुधवार, 4 मार्च, सन् 1891 ई॰) को यहाँ पर उनके नाम से उत्सव होगा। उसके बाद हम लोग ढाका के लिए रवाना होंगे। श्रीमती शान्तिसुधा यदि श्राद्ध करना चाहे, तो फिर आनन्दपूर्वक उत्सव करके, दुःखी-कंगाल लोगों को भोजन करा दे।

माँ शान्तिसुधा, शोक मत करना, आनन्द करना। जितना शीघ्र हो सकता है, हम लोग आ रहे हैं।

आशीर्वादक
श्री विजयकृष्ण गोस्वामी

इस घटना के कुछ समय पहले शान्तिसुधा को गर्भ के आठवें महीने में सुलक्षणयुक्त एक पुत्र सन्तान की प्राप्ति हुई। लड़के को लेकर शान्तिसुधा परमानन्द से दिन काट रही थीं एवं शीघ्र ही माता-पिता आएँगे सोचकर, प्रसन्नचित्त से उन लोगों के आने के दिन की प्रतीक्षा कर रही थीं। उस समय ठाकुर हरिद्वार से कोलकाता होकर शीघ्र ढाका आकर गेण्डारिया-आश्रम में पहुँचे। आश्रम में योगजीवन, कुतुबुड़ी, शान्तिसुधा आदि सभी ठाकुर के पास पहुँचकर हँसते-हँसते बोले– 'पिताजी! माँ कहाँ है?' ठाकुर ने कहा– **'शान्तिसुधा! मैं तुम्हारी माँ को श्रीवृन्दावन में रखकर आया हूँ। वे आई नहीं, वहीं रह गईं। हम लोग भी कुछ समय के बाद वहीं जाएँगे।'**

सुना हूँ, इन सब बातों को सुनकर शान्तिसुधा स्पष्ट रूप से कुछ भी समझ नहीं पाईं। ठाकुर ने भी शान्तिसुधा को सामने बैठाकर महाभारत और पुराणादि की कथा सुनाते-सुनाते माता ठाकुरानी के देहत्याग के विषय में भी कह दिया। शान्तिसुधा सुनते ही मूर्च्छित जैसी हो गईं। ठाकुर ने उनके शरीर पर हाथ फेरकर सचेत किया। शान्तिसुधा बहुत अस्वस्थ थीं; इसलिए मातृशोक से मस्तिष्क की अवस्था विकृत होगी, सभी को ऐसी आशंका थी; किन्तु वैसा कुछ हुआ नहीं। ठाकुर के शीतल स्पर्श से शान्तिसुधा का हृदय इतना शीतल हो गया कि माता के देहत्याग का भीषण यन्त्रणादायक शोक भी उनको वैसा स्पर्श नहीं कर पाया।

माता ठाकुरानी के देहत्याग का विवरण

आज मध्याह्न में, भोजन के बाद ठाकुर आम के पेड़ के नीचे बैठ गए। तब मैंने माता ठाकुरानी के देहत्याग की बात पूछी। ठाकुर ने कहा– **"श्रीवृन्दावन में जाने से फिर वे लौटेंगी नहीं, जानकर ही उनको जाने के पहले ही कितनी बार पत्र लिखकर मना किया था; किन्तु उसे वे मानी ही नहीं। मेरी अस्वस्थता के विषय में जानकर शीघ्र वहाँ गईं। श्रीवृन्दावन में पहुँचने के बाद भी उनको ढाका भेजने के लिए कितना कौशल किया था; किन्तु किसी प्रकार से भी वे यहाँ आईं नहीं। किस दिन देहत्याग होगा, यह पहले से ही वे जान गईं थीं। दो बार दस्त होने से ही शरीर अवसन्न हो गया। उस समय परमहंसजी ने मुझसे कहा– 'तुम शीघ्र ही कुंज से कहीं और चले जाओ; यहाँ पर तुम्हारे रहने से उन्हें नहीं ले जा सकेंगे। देहत्याग हो जाने पर कुंज में आना।' मैं परमहंसजी के आदेश से तुरन्त आसन से उठ गया। वे पास के कमरे में थीं। एक बार देखकर जाऊँ सोचकर, उस कमरे में गया। वे समझ गईं थी। इस समय मुझे अपने पास में रोकने की इच्छा से, हाथ पकड़कर खींचते हुए संकेत द्वारा पास में बैठने को कहा; किन्तु परमहंसजी के आदेश के अनुसार मैं फिर अपेक्षा किये बिना कुंज से चला गया। बाद में उनका देहत्याग हो गया हैं जानकर, कुंज में आ गया।"**

सुना हूँ, ठाकुर माता ठाकुरानी के देहत्याग के कुछ क्षण बाद कुंज में आए। तब वहाँ गुरुभाई-बहिन लोग माता ठाकुरानी की देह को बरामदे में रखकर चीत्कार करके रो रहे थे। ठाकुर ने उस स्थान पर जाते ही योगजीवन से कहा– **'योगजीवन! मृत देह को इतनी देर तक रखे क्यों हो? यमुना के किनारे ले जाकर संस्कार कर आओ।'** यह कहकर ठाकुर उस ओर देखे बिना अपना आसन बिछाकर बैठ गए। अन्य दिन जिस प्रकार रहते हैं, ठाकुर उसी प्रकार आसन पर एक भाव में बैठे रहे। किसी प्रकार का विलक्षण देखा नहीं गया। योगजीवन, श्यामाकान्त पण्डितजी, श्रीधर, अश्वनी, सतीश आदि गुरुभाइयों ने माँ के परम पवित्र देह का शीघ्र यमुना के किनारे ले जाकर, केशीघाट में दाह-संस्कार किया। ठाकुर की इच्छानुसार, चिता निर्वाण के बाद योगजीवन माता ठाकुरानी की तीन अस्थियाँ संग्रह करके ले आए। उनमें से एक श्रीवृन्दावन में समाहित किये। अन्य दोनों हरिद्वार और गेण्डारिया में प्रतिष्ठित करने के लिए रख लिए।

भक्त के विरह से महात्मा लोगों को असाधारण ज्वाला

माता ठाकुरानी के शोक से नानीमाँ दिन-रात दग्ध हो रही हैं। समय-समय

में ठाकुर की कृपा से वे माता ठाकुरानी का दर्शन पाती रहती हैं। तभी ठीक हैं, नहीं तो इतने दिन में वे पागल हो जातीं। नानीमाँ जब 'योगमाया' 'योगमाया' कहते हुए चीत्कार करके रोती रहती हैं तब सारा आश्रम विषाद से परिपूर्ण हो जाता है। सुनकर हम लोगों का शरीर भी अवसन्न होने लगता है। नानीमाँ का चीत्कार सुनकर, उनको सान्त्वना देने की चेष्टा करने पर ठाकुर हमें मना करते हुए कहते हैं– **'शोक के समय चीत्कार करके रो लेने देना चाहिए, उससे शोक कम हो जाता है। शोक होने पर रो नहीं पाने से कई लोग पागल हो जाते हैं। यहाँ तक कि कई लोगों को भयंकर रोग होने से वे मर भी जाते हैं!'**

माता ठाकुरानी का नाम लेकर नानीमाँ जब हृदय-विदारक शब्द से उच्च स्वर में रोती रहती हैं उस समय ठाकुर के मुख पर किसी प्रकार का भावान्तर होता हैं कि नहीं, मैं उसको विशेष रूप से लक्ष्य किये रहता था। एक दिन भी ठाकुर में किसी प्रकार का परिवर्तन न देखकर मैंने पूछा– 'जो लोग जीवन्मुक्त महापुरुष हैं, उन लोगों को किसी के लिए भी क्या शोक की यन्त्रणा नहीं होती?'

ठाकुर ने कहा– **'हाँ बहुत होती है। भक्त के विरह से वे जो ज्वाला भोग करते हैं, उसकी और कोई भी तुलना नहीं होती। आत्मा के साथ जिन लोगों का सम्बन्ध उत्पन्न हो जाता है, उनके विरह से जो यन्त्रणा होती है, साधारण लोगों का साध्य ही क्या है जो उसकी कल्पना करे। उस ज्वाला की आँच भी सहन करने का सामर्थ्य साधारण लोगों में नहीं है। वह बहुत भयंकर है।'**

मैंने कहा– 'जो लोग भक्त या महापुरुष हैं, उन लोगों के शोक का कोई लक्षण क्या बाहर प्रकाशित नहीं होता?

ठाकुर ने कहा– **'कभी होता है या कभी बिल्कुल भी नहीं होता। महाप्रभु के अन्तर्धान के बाद रूप, सनातन आदि महाप्रभु के भक्तों में बाहर से किसी प्रकार के शोक का चिह्न न देखकर, अनेक लोगों के मन में सन्देह हुआ था कि, ये लोग फिर कैसे भक्त हैं? एक दिन एक वृक्ष के नीचे भागवत् पाठ हो रहा था। सभी पाठ सुन रहे थे। हठात् उस वृक्ष का एक सूखा पत्ता रूप गोस्वामी के शरीर में पड़ा। पत्ता शरीर पर पड़ते ही धप् करके जल उठा। तब उसे देखकर सभी समझ पाए, महाप्रभु की विरह-अग्नि में उनके भक्तगण किस प्रकार दग्ध हो रहे हैं।'**

मैंने फिर पूछा– 'कितनी ही बातें तो इस प्रकार सुनने को मिलती है, किन्तु वास्तव में क्या वैसा होता है? शोक से मनुष्य के शरीर में वास्तव में क्या उत्ताप उठता है?'

ठाकुर ने कहा– **"हाँ उठता है। श्रीवृन्दावन में उनके (माता ठाकुरानी के) देहत्याग के बाद कुतु अत्यन्त अस्थिर हो गई थी। उसको सान्त्वना देने के लिए जैसे ही उसकी पीठ पर हाथ फेरा, कुतु तुरन्त 'उह, उह' करके चमककर उछल पड़ी। मैं तभी समझ गया। थोड़ी देर बाद ही देखा गया, कुतु के पीठ में फफोले की तरह पाँच अँगुलियों के दाग पड़ गए हैं।**

ठाकुर के साथ इन सब वार्त्तालाप के समय अन्य लोगों के आ जाने से फिर इस विषय में कुछ पूछने की सुविधा नहीं हुई।

गोसाँईजी के दर्शन हेतु पर्वतवासी अज्ञात महापुरुष

{बंगला सन् 1297, चैत्र 28, शुक्रवार। **(10 अप्रेल, सन् 1891 ई॰)**}

श्रीवृन्दावन में माता ठाकुरानी का श्राद्ध-कार्य योगजीवन द्वारा समापन करवाकर, कुछ दिन बाद, चैत्र के आरम्भ में ठाकुर हरिद्वार पूर्ण कुम्भ-मेले में पहुँचे। कुछ-एक महापुरुषों के साथ भेंट करना एवं माता ठाकुरानी की अस्थि को गंगा-गर्भ में स्थापित करना ही ठाकुर का वहाँ पर जाने का उद्देश्य था। इसलिए वे चार-पाँच दिन से और अधिक वहाँ पर रुके नहीं। हरिद्वार में पहुँचते ही ठाकुर गुरुभाई-बहिनों को लेकर ब्रह्मकुण्ड के घाट पर पहुँचे। वहाँ पर स्नान के बाद योगजीवन से माता ठाकुरानी की एक अस्थि गंगा के मध्य समाहित करवा दिये।

कनखल में नानकशाही महन्त श्रीयुत् रामप्रकाशजी के आश्रम में ठाकुर के रहने की बात थी; किन्तु वहाँ पर सुविधा नहीं होगी, सोचकर ब्रह्मकुण्ड के पास गंगा के किनारे एक पण्डे के घर में निवास किये।

एक दिन ठाकुर साधु-दर्शन करने के अभिप्राय से, साथियों को लेकर मेले के भीतर प्रवेश किये। तब केवल कौपीन पहने हुए एक पर्वतवासी संन्यासी दूर से ठाकुर का दर्शन करके, बहुत लोगों के बीच से होकर अबाध्य गति से अत्यन्त उल्लसित भाव से नृत्य करते-करते ठाकुर के सामने आए एवं बारम्बार उच्च स्वर में कहने लगे– 'आज मुझे मिला रे मिला' 'आज मुझे मिला रे मिला'। अश्रुपूर्ण नयन से, उच्च स्वर में इस प्रकार कहते-कहते हाथ उठाकर नाचते हुए कुछ-एक बार ठाकुर की परिक्रमा करके अचानक वे अन्तर्धान हो गए। किस तरह से कहाँ चले गए, फिर कोई भी अनुसन्धान नहीं कर पाया।

और एक लगभग उलंग अवस्था में जटाधारी उदासी महापुरुष, थोड़े अन्तर में रहकर ठाकुर का दर्शन करते ही लड़खड़ाते हुए दो-चार कदम अग्रसर होकर, स्तम्भ की तरह खड़े रह गए। लगातार अश्रु विसर्जन से उनका वक्षःस्थल भीगने

लगा। बारम्बार वे सिहर उठते थे। हाथ जोड़कर, काँपते हुए वे ठाकुर की ओर एकटक देखते रहे। गद्‌गद भाव से अस्फुट स्वर में बार-बार कहने लगे– 'मेरा सब पूरण हो गया, आज हम धन्य हो गए। धन्य हो गए।' थोड़ी देर बाद, श्रीधर उन महात्मा के पास पहुँचकर उनको प्रणाम करके बोले– 'आशीर्वाद दीजिए महाराज, आशीर्वाद दीजिए।' महापुरुष ने श्रीधर से कहा– 'अहोभाग्य तुम लोगों का, अहोभाग्य तुम लोगों का! भगवान का संग पाए हो। दर्शन ही बहुत दुर्लभ है। हमेशा पीछे-पीछे रहना। संग कभी नहीं छोड़ना। धन्य हो गया! धन्य हो गया!'

इन सब महात्माओं के विषय में ठाकुर से पूछने पर उन्होंने कहा– **'ये सब महापुरुष लोग लोकालय में कभी नहीं आते। पहाड़ पर ही रहते हैं। उन लोगों के केवल दर्शन से ही लगा मानो उनका हमारे साथ कितना पुराना परिचय है। जिनके साथ प्राणों का योग होता है, बहुत समय बाद भी भेंट होने पर उन लोगों को पहचान लिया जाता है। बड़े ही आत्मीय लगते हैं।'**

समाप्त

—: 0 :—